इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को डी० फ़िल० उपाधि के लिए

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के निर्देशन मे

प्रस्तुत प्रबन्ध

छायावादयुगीन काव्यभाषा का निराला के विशेष सन्दर्भ में अध्ययन

कु० रेखा खरे

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

१९७३

विषय - सूची

पृष्ठ

भूमिका

काव्यभाषा साहित्य-चिन्तन की नई दिशा है, जिसमें भाषावैज्ञानिक और परंपरित काव्यशास्त्रीय पद्धति से अलग कविता के आंतरिक संघटन को समझने का उपक्रम होता है ।

हिंदी में काव्यभाषा संबंधी चिन्तन की प्रशस्त परंपरा नहीं है । आधुनिक युग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अवश्य कविता की भाषा पर कुछ टिप्पणियाँ कीं । इस विषय से संबद्ध अपने सैद्धांतिक और व्यावहारिक चिन्तन में ' संश्लिष्ट ' शब्द का प्रयोग उन्होंने किया, लेकिन इसके अतिरिक्त कोई अन्य महत्त्वपूर्ण उपपत्ति वे प्रस्तुत नहीं कर सके । ' संश्लिष्ट ' से जुड़ी ' जटिलता ' की प्रक्रिया को उन्होंने नहीं खोला । अधिकतर उनकी दृष्टि बाह्य संवेदन पर रही । नयी कविता के युग में कुछ समीक्षकों का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण किन्तु प्राय: उपेक्षित पक्ष की ओर गया और काव्यभाषा-संबंधी मौलिक, विचारोत्तेजक चिंतन का आरंभ संभव हो सका ।

इस संदर्भ में ' भाषा और संवेदना ' (१९६४ ई०) पुस्तक उल्लेखनीय है, जिसमें काव्यभाषा के पक्ष पर सोचने-विचारने में पहल करनेवाले डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने तीव्र - संपृक्त दृष्टि का परिचय दिया है और कई एक मौलिक स्थापनाएँ रखी हैं । भाषा को भावों की अनुगामिनी माननेवाली परंपरित बैंधी-बँधाई दृष्टि का रचना के स्तर पर प्रत्याख्यान कर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की आत्म-विश्वासपूर्ण उद्घोषणा उनकी एक और सब से प्रमुख स्थापना है ।

काव्यभाषा को लेकर प्रखर टिप्पणियाँ आधुनिक युग के प्रमुख समीक्षक डॉ० नामवर सिंह ने ' कविता के नये प्रतिमान ' (१९६८ ई०) में की है । रचनाकार- समीक्षकों में अज्ञेय ने भाषा के ' काव्यभाषा ' के पक्ष पर

मौलिक -सर्जनात्मक ढंग से विचार प्रस्तुत किये हैं (द्र० 'आत्मनेपद', 'तारसप्तक') काव्यभाषा के प्रति इस उत्साही -स्वस्थ दृष्टि का हिन्दी शोध-क्षेत्र में प्रभाव पड़ा हो, ऐसा नहीं लगता । कविता में भाषिक सृजन की समस्या पर सोचने-विचारने की शोध-क्षेत्र में शायद आवश्यकता नहीं समझी गई । एक बात और । शोध का वैशिष्ट्य साधारणत: तथ्यात्मकता के इर्द-गिर्द आँका गया है । आधुनिक साहित्य और चिंतन के प्रसंग में शोधकर्त्ता भी , स्वतंत्र आलोचक की तरह रचनात्मक धरातल पर विचार कर सकता है, इस मान्यता को हिन्दी में प्रोत्साहन नहीं मिला है । यह हिन्दी शोध के सर्जनात्मक संचरण के लिए एक बड़ा अवरोध है ।

इस दृष्टि से ' छायावादी काव्यभाषा' विषयक प्रस्तुत प्रबंध में रचना के सर्जनात्मक पक्ष पर विचार किया गया है । काव्यभाषा के दृष्टि - बिन्दु से रचना-प्रक्रिया के जटिल और संश्लिष्ट स्वरूप के परीक्षण का प्रयत्न है । समसामयिक युग में काव्यभाषा संबंधी पुष्ट सैद्धांतिक चिन्तन हुआ है, किन्तु कविताओं के व्यावहारिक विश्लेषण द्वारा भाषिक सृजन के अपेक्षाकृत अधिक गहरे धरातल का संस्पर्श करने की प्रवृत्ति कम रही है । (यहाँ यह नहीं अदेखा किया जा रहा है कि सिद्धांत व्यवहार से ही बनता है, पहले से बना-बनाया नहीं होता, तभी वह अनुभव के स्तर पर विश्वसनीय बन पाता है । इस रूप में सिद्धांत और व्यवहार अलग-अलग तत्व नहीं है)

इस साहसिक और रचनात्मक चुनौती से उत्प्रेरित होकर अंतिम अध्याय में निराला की कुछ विशिष्ट कविताओं की आंतरिक संघटना को समझने की चेष्टा की गई है, यों व्यापक रूप में तो पूरे प्रबंध में ही भाषिक सृजन के पहलू को विवृत्त करने की प्रवृत्ति रही है । काव्यभाषा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों धरातलों का रचना के स्तर पर संस्पर्श करने की कोशिश है, क्योंकि तभी रचना और उसकी प्रक्रिया का वैशिष्ट्य उसकी समग्रता में समझा जा सकता है ।

निराला की स्थिति सभी छायावादी कवियों में विशिष्ट रही है । उनका काव्य-व्यक्तित्व सब से अधिक गत्यात्मक, प्रखर और अन्वेषी रहा

है, जिसका जीवंत साक्ष्य प्रस्तुत करती है उनकी काव्यभाषा। काव्यभाषा को लेकर निराला के मानस में रचनात्मक बेचैनी उनके विविध भाषा-स्तरों में देखी जा सकती है। व्यक्ति के रूप में तो एक लंबे अरसे तक वे उपेक्षित रहे, कवि के रूप में भी उनकी प्रतिभा को बहुत समय तक नहीं पहचाना गया। " बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ " में कवि के मानसिक द्वन्द्व की ध्वनि सुनी जा सकती है।

निराला के समृद्ध- संश्लिष्ट सृजन की ओर कुछ ही समीक्षकों का ध्यान गया। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक " निराला " (१९४८ ई०) में कवि की रचनात्मक क्षमता को उजागर करने की पहल की। निराला पर अपनी नई पुस्तक " निराला की साहित्य-साधना " (खण्ड १) में वे मुख्यतया जीवनी-लेखक की भावभूमि से अनुप्राणित रहे हैं, वैसे निराला के कवि रूप को प्रतिष्ठित करने की उनकी प्रवृत्ति देखी जा सकती है। " क्रांतिकारी कवि निराला " (सं०२००४) में डॉ० बच्चनसिंह ने निराला के उन्मुक्त काव्य-व्यक्तित्व को विवृत करने की कोशिश की है। निराला पर उल्लेखनीय पुस्तक " निराला और विजागरण " (१९६५ ई०) में डॉ० राम बहन भटनागर ने निराला की काव्यभाषा -विषयक पैनी समझ की ओर कई स्थलों पर संकेत दिये हैं - " एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिशा निराला की काव्यभाषा से संबंधित है। काव्यभाषा के क्षेत्र में उनके प्रयोग सिद्धता तक पहुँचे हैं और अकेले उनके काव्य में खड़ीबोली की काव्यभाषा के विकास का सारा इतिहास समाहित हो गया है " - (पृ० ४१७)। नये समीक्षकों में रमेशचन्द्र शाह ने अपने छिटपुट लेखों में ही सही, निराला की भाषा-चेतना पर बढ़िया टिप्पणी की है, " भाषा की काव्यमुक्ति क्यों होती है और कैसे होती है, यह हम निराला से सीख सकते हैं - " (आलोचना, अक्टूबर-दिसंबर, १९७० ई० " भाषा की काव्यमुक्ति " शीर्षक लेख)। दूधनाथ सिंह की पुस्तक " निराला : आत्महंता आस्था " में निराला की कविताओं के आंतरिक संघटन को समझने की आकुलता है, लेकिन वह मुख्यतया कवि की अपनी भावभूमि से परिचालित है।

इस दृष्टि से निराला के काव्य-सृजन के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को प्रस्तुत अध्ययन में लिया गया है। निराला की काव्यभाषा, अपनी विविध स्तरीयता और अर्थ-समृद्धि में स्वतंत्र अध्ययन का विषय बन सकती है और बननी भी चाहिए। इस दिशा में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने संकेत किया था - "वास्तव में निराला की काव्यभाषा एक स्वतंत्र शोध का विषय है।" - (" कवि निराला , पृ० ११२")

किन्तु इस अध्ययन में समग्र छायावादी काव्यभाषा को समाविष्ट किया गया है, इस आशा से कि तब विषय अधिक संश्लिष्ट ,व्यापक और समग्रतर हो सके। छायावाद खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा की वयस्कता का काल है, और इस माने में अध्ययन के इस कोण का एक ऐतिहासिक संदर्भ है।

अध्याय सं० ३,४,५,६ में इस दृष्टि से प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी - छायावाद के "कवि- चतुष्टय" - की काव्यभाषा का अलग-अलग विवेचन किया गया है। अंत में निराला की कुछ चुनी हुई कविताओं का काव्यभाषा के संदर्भ में व्यवस्थित और अपेक्षया विस्तृत अध्ययन है। आरंभिक अध्याय काव्यभाषा संबंधी प्रमुख मान्यताओं की ओर संकेत करता है।

अध्याय २ और ७ के विषय में कुछ कहना शेष रह जाता है। अध्याय २ में आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी काव्यभाषा के विकास की चर्चा हुई है। इस अपेक्षाकृत वर्णनात्मक पक्ष पर भी काव्यभाषा-विषयक शोध-प्रबंध होने के कारण अधिकतर सर्जनात्मक दृष्टि से ही विचार किया गया है। इसीलिए यहाँ ऐतिहासिक और तथ्यपरक दृष्टि उतनी नहीं मिलेगी जितनी कि रचनात्मक। वर्णनात्मक पद्धति पर विशद विवेचन डॉ० शितिकंठ मिश्र अपने शोध-प्रबंध " खड़ीबोली का आंदोलन " में कर चुके हैं।

अध्याय ७ में छायावादी काव्यभाषा के स्वरूप की चर्चा हुई है। छायावाद के प्रमुख कवि चार हैं - प्रसाद, निराला , पंत और महादेवी। उनकी काव्यभाषा पर अलग-अलग विचार किया गया है। निराला क्योंकि विशेष

संदर्भ में है, इसलिए उनकी काव्यभाषा की तथा अंतिम अध्याय में उनकी कविताओं की विशद रूप में चर्चा हुई है। छायावाद विषयक सामान्य अध्याय (७) में पुनरुक्ति से बचने के लिए छायावादी काव्यभाषा की प्रमुख विशेषताओं का ही विश्लेषण किया गया है, बहुत से अन्य तत्त्व तो कवियों की काव्यभाषा विषयक अध्यायों (३,४,५,६) में विवेचित हो चुके हैं। रामकुमार वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति कवि छायावाद के प्रभाव-क्षेत्र में आते हैं पर छायावादी परिवेश से निकट रूप में वे संबद्ध नहीं रहे और छायावादी काव्यभाषा में गुणात्मक उन्मेष भरने की कोशिश भी उनमें नहीं देखी जाती। फलतः इन कवियों की काव्यभाषा पर सांकेतिक रूप में ही विचार किया गया है।

मेरे निर्देशक आदरणीय डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने प्रबंध की देख-रेख जिस आत्मीयता के साथ की है, उसे सिर्फ समझा जा सकता है, उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। अपने विशिष्ट स्नेह और सौजन्य से उन्होंने मुझे तो इस स्थिति में ही नहीं रखा है कि मैं उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के औपचारिक ढंग का अवलंबन ले सकूँ।

रेखा खरे

अध्याय - १

काव्यभाषा : प्रकृति और प्रक्रिया

काव्यभाषा के आधार पर काव्य के मूल्यांकन की पद्धति जहाँ अधिकतम संभव रूप में वस्तुनिष्ठ है, वहीं अधिकतम संभवरूप में सर्जनात्मक है, क्योंकि जहाँ सामान्य व्यवहार में शब्द " शब्द मात्र " रहते हैं, वहीं काव्य में कवि के अनुभव-विशेष से संपृक्त होने के कारण वे विशिष्ट प्रयोग बन जाते हैं। काव्यभाषा में सामान्य और विशेष का रचनात्मक संपर्क होता है। इस रूप में वह कवि की अनुभावन-क्षमता की परिचायक और एक सीमा तक उसकी संवेदना की नियामक और अनुशासक भी है।

काव्यभाषा आधुनिक युग में साहित्य-चिन्तन की नयी दिशा है। यों तो व्याकरण, शैली-विज्ञान ,अलंकार-शास्त्र में भी भाषा का अध्ययन होता है, पर वहाँ दृष्टि अलग है। वैयाकरण को स्पष्टत: भाषा के सर्जनात्मक पक्ष से कुछ लेना-देना नहीं रहता, वह तो किसी भाषा के आधार-रूप को ही अपने अध्ययन का विषय बनाता है। इस तरह कविता में भाषिक सृजन की समस्या का अध्ययन उसके विषय-क्षेत्र से बाहर की चीज़ है। शैली-विज्ञान भाषाविज्ञान की नई दिशा है, जिसमें कविता का विश्लेषण एक विशिष्ट पद्धति के अनुसार होता है। कविता में प्रयुक्त एक-एक शब्द का संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, लिंग, वचन, काल आदि खण्डों में वर्गीकरण करके इस तरह व्याकरणिक संबंधों का विश्लेषण किया जाता है कि कविता की आंतरिक संघटना को समझना मुश्किल हो जाता है, अनुभव के वैशिष्ट्य की पकड़ छूट जाती है। अलंकार-शास्त्र में भी कविता का भाषिक विश्लेषण सृजन के धरातल पर नहीं होता, अलंकारों को केन्द्र में रखनेवाली दृष्टि कविता के रचनात्मक अनुभव को टटोल नहीं पाती, क्योंकि अलंकार साधारणत: काव्यभाषा में पर्यवसित नहीं हो पाते। खासतौर से आधुनिकयुगीन चमत्कार -विमुख काव्य की कविता का विश्लेषण अलंकार-शास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर यों भी नहीं हो सकता।

आधुनिक युग में अंग्रेजी और अमेरिकन समीक्षकों ने काव्यभाषा के सर्जनात्मक पक्ष को लेकर गंभीर विचार किया है। ओवेन बारफील्ड ने अपनी पुस्तक 'द पोएटिक डिक्शन' (१९२८ ई०) में काव्यभाषा को लेकर कुछ मौलिक मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं, यों पूरी पुस्तक की दृष्टि आधुनिक नहीं है। एम्पसन ने अपने क्लासिक ग्रन्थ "सेवेन टाइप्स ऑव एम्बीग्विटी" (१९३० ई०) में भाषा की अनेकार्थता ("एम्बीग्विटी") को केन्द्र में रखा है और सात प्रकारों में उसका विश्लेषण किया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि और समीक्षक आर्किबाल्ड मैक्लीश ने "पोएट्री एंड एक्सपीरिएन्स" (१९६०) नामक पुस्तक में मुख्यतया कवि की रचनात्मक भावभूमि पर कविता में भाषिक सृजन की समस्या पर विचार किया है। पहले दो अध्यायों में शब्दों की अर्थवत्ता पर व्यावहारिक धरातल से जुड़कर सधे ढंग से उन्होंने विचार व्यक्त किए हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - स्टीफेन मैलार्मे की सिर्फ ध्वनि के रूप में शब्दों को देखनेवाली धारणा का मैक्लीश द्वारा रचना के स्तर पर निषेध।[1] इस महत्त्वपूर्ण उपपत्ति के अतिरिक्त पुस्तक में जगह-जगह उन्होंने कविता की सार्थकता का, जीवन की सापेक्षता में, विशुद्ध रचनात्मक धरातल पर सूक्ष्म उद्घाटन किया है। विनिफ्रेड नोवोत्नी की पुस्तक है "द लैंग्वेज पोएट्स यूज़" (१९६२)। इसमें बहुत क्रमबद्ध रीति से आलोचिका ने काव्यभाषा के विभिन्न तत्वों पर गंभीर विचार प्रस्तुत किये हैं। काव्यभाषा के संदर्भ में प्रयोग-विधि और गठन (स्ट्रक्चर) जैसे तत्वों पर बल देना अपने में इस बात का सूचक है कि श्रीमती नोवोत्नी काव्यभाषा के प्रति आधुनिक, रचनात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। सिद्धांत और व्यवहार दोनों पक्षों का उन्होंने पूरी गंभीरता और विशदता के साथ विवेचन किया है। विम्सेट और ब्रुक्स का प्रसिद्ध आलोचनात्मक इतिहास ग्रंथ - "लिटरेरी क्रिटिसिज़्म : ए शार्ट हिस्ट्री" (१९५७) काव्यभाषा संबंधी पाश्चात्य चिन्तन पर अच्छी टिप्पणियाँ प्रस्तुत करता है। नये समीक्षकों में जॉर्ज स्टीनर की पुस्तक "लैंग्वेज एंड साइलेंस" (१९६७ ई०) काव्यभाषा संबंधी चिंतन को नये सिरे से देखने की बढ़िया

---

1. The sounds of words are obviously not the plastic material of the art of poetry, as stone is the plastic material of the art of sculpture . I To lose the meaning, you must lose the word. page 26.

कोशिश है । पुस्तक की - विशेषत: " द रिट्रीट फ्रॉम द वर्ड " शीर्षक निबंध की - विचारोत्तेजकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

परंपरागत भारतीय काव्यशास्त्र में कविता की परिभाषा के अंतर्गत शब्द-अर्थ के साथ-साथ उल्लेख के बावजूद काव्यभाषा का विभावन नहीं मिलता, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि से संबंधित मुख्य सिद्धांतों के स्वरूपों का विश्लेषण वहाँ जरूर है. इतना ही नहीं, एक-एक के भेदों-उपभेदों का विशद विवेचन है, लेकिन काव्यभाषा के आधार पर भाषिक सर्जनात्मकता को पहचानने की संश्लिष्ट प्रक्रिया नहीं है । अलंकारों के अंतर्गत सांगरूपक की जो ब्यौरेवार वर्णन - प्रणाली है, अप्रस्तुत-विधान के क्षेत्र में स्वरूप और संप्रेषण-प्रक्रिया के स्तर पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत के द्वैत का उल्लेख है, वह काव्यभाषा के समूचे अनुभव को किसी सीमा तक अनदेखा कर जाता है । इसी तरह ध्वनि-सिद्धांत, जो अपेक्षाया खुली दृष्टि का परिचायक है, मुख्यार्थ और व्यंग्यार्थ की नियोजना के द्वारा रचना को अर्थ के स्तर पर उन्मुक्तता के साथ देख -परख नहीं पाता । रचना की अखण्ड आंतरिक एकता- जो उसकी श्रेष्ठता का निदर्शन है - इस द्वैत प्रधान प्रक्रिया से नहीं समझी जा सकती । हिन्दी के अपने काव्यशास्त्र की शुरुआत रीतिकाल से होती है, जिसमें मुख्यत: संस्कृत आचार्यों की मान्यताओं का 'भाषा' में पुनर्स्थापन है । यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत का सूक्ष्म काव्य-चिंतन हिंदी के रीति ग्रंथों में नहीं उभर सका । उल्टे स्थूल वर्गीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई ।

पर एक बात ध्यान देने योग्य है। काव्यभाषा का विभावन भले ही परंपरागत भारतीय काव्यशास्त्र में न उभर पाया हो, लेकिन भारतीय रचनाकार के दृष्टि-पथ में वह रहा है । कालिदास ने " रघुवंशम् " के प्रारंभिक श्लोक में 'वागर्थ प्रतिपत्ति' का जो आदर्श रखा है, (वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये जगत: पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ ।)", उसका प्रतिनिधित्व उनका काव्य करता है । तुलसीदास ने "रामचरितमानस" में " गिरा- अरथ " की अभिन्नता का संकेत दिया है :

गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता-राम-पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।

घनानंद ने तो एक दूसरे और अधिक सूक्ष्म धरातल पर कविता की सर्जनात्मकता को लक्ष्य किया है :

लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत ।

रचनाकार का व्यक्तित्व कहीं पहले से निर्मित नहीं होता, उसे तो उसकी रचना ('कवित्त') ही सिरजती है । इस तरह रचना सिर्फ़ भावक के लिए न होकर ख़ुद रचनाकार के लिए भी होती है और घनानंद की पहिचान के आलोक में तो यह कहना पड़ेगा कि रचनाकार के लिए शायद अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि उसमें से उसका रचनात्मक उन्मोचन होता है, उसके मानस की मुक्ति संभव हो पाती है ।

आधुनिक युग में हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्यभाषा के पक्ष पर महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया है । यह एक विचित्र विरोधाभास है कि काव्यालोचन के सिलसिले में जगह-जगह 'संश्लिष्ट' शब्द का प्रयोग करने के बावजूद कविता की भाषा में उन्होंने चित्रात्मकता को केंद्रीय स्थान दिया है, अर्थ-संश्लेषण तक उनकी दृष्टि नहीं पहुँच पाई है । "कविता क्या है" निबंध (चिन्तामणि) में कविता की भाषा-संबंधी विवेचन इसी दृष्टि से किया गया है ।

समसामयिक युग में समीक्षा और रचना-दोनों स्तरों पर काव्यभाषा को लेकर काफ़ी और समृद्ध चर्चाएँ हुई हैं । इस बिंदु पर हिंदी चिंतन की तेजस्विता और मौलिकता खुलकर सामने आई है । पुस्तकों और आलोचनात्मक लेखों के प्रकाशन के अतिरिक्त काव्यभाषा संबंधी परिसंवाद-गोष्ठियों के आयोजन विषय के प्रति अतिरिक्त सचेष्टता और रचनात्मक दृष्टि के परिचायक हैं । अब यह समझ लिया गया है कि कवि का यथार्थ-बोध उसके भाषा-बोध का सूचक है, भाषा कवि-व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग है । भाषा की काव्यात्मक संभावनाओं के उपयोग की जितनी रचनात्मक आकुलता कवि को है, उतनी ही समीक्षक को, जो कविता में भाषिक सृजन की समस्या पर संश्लिष्ट ढंग से सोचता-विचारता है । इस तरह रचनाकार के बजाय अब रचना केंद्र में है ; या यों कहें कि रचनाकार की कव-कृति-रचना में उसकी जान लगी है, फलतः काव्यभाषा का महत्त्व बढ़ा है ।

घनानंद ने तो एक दूसरे और अधिक सूक्ष्म धरातल पर कविता की सर्जनात्मकता को लक्ष्य किया है :

लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहिं तो मेरे कबित्त बनावत ।

रचनाकार का व्यक्तित्व कहीं पहले से निर्मित नहीं होता, उसे तो उसकी रचना ('कबित्त') ही सिरजती है । इस तरह रचना सिर्फ भावक के लिए न होकर खुद रचनाकार के लिए भी होती है और घनानंद की पहिचान के आलोक में तो यह कहना पड़ेगा कि रचनाकार के लिए शायद अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि उसमें से उसका रचनात्मक उन्मोचन होता है, उसके मानस की मुक्ति संभव हो पाती है ।

आधुनिक युग में हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्यभाषा के पक्ष पर महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया है । यह एक विचित्र विरोधाभास है कि काव्यालोचन के सिलसिले में जगह-जगह 'संश्लिष्ट' शब्द का प्रयोग करने के बावजूद कविता की भाषा में उन्होंने चित्रात्मकता को केंद्रीय स्थान दिया है, अर्थ-संश्लेष तक उनकी दृष्टि नहीं पहुँच पाई है । 'कविता क्या है' निबंध (चिन्तामणि) में कविता की भाषा-संबंधी विवेचन इसी दृष्टि से किया गया है ।

समसामयिक युग में समीक्षा और रचना-दोनों स्तरों पर काव्यभाषा को लेकर काफी और समृद्ध चर्चाएँ हुई हैं । इस बिंदु पर हिंदी चिंतन की तेजस्विता और मौलिकता खुलकर सामने आई है । पुस्तकों और आलोचनात्मक लेखों के प्रकाशन के अतिरिक्त काव्यभाषा संबंधी परिसंवाद-गोष्ठियों के आयोजन विषय के प्रति अतिरिक्त सचेष्टता और रचनात्मक दृष्टि के परिचायक हैं । अब यह समझ लिया गया है कि कवि का यथार्थ-बोध उसके भाषा-बोध का सूचक है, भाषा कवि-व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग है । भाषा की काव्यात्मक संभावनाओं के उपयोग की जितनी रचनात्मक आकुलता कवि को है, उतनी ही समीक्षक को, जो कविता में भाषिक सृजन की समस्या पर संश्लिष्ट ढंग से सोचता-विचारता है । इस तरह रचनाकार के बजाय अब रचना केंद्र में है ; या यों कहें कि रचनाकार की अब कृति-रचना में उसकी जाने लगी है, फलतः काव्यभाषा का महत्त्व बढ़ा है ।

कविता मनुष्य की सभी सर्जन-प्रक्रियाओं में इसीलिए श्रेष्ठ मानी जा सकती है क्योंकि उसमें जीवन के अनुभवों का विभिन्न धरातलों पर पुनर्सृजन होता है, और कभी-कभी तो उन्हें पूर्वाशित भी किया जाता है। यह महत्त्वपूर्ण बौद्धिक उत्तरदायित्व लेती है भाषा, जो पूर्णत: मनुष्य की सृष्टि है। भाषा की विशिष्टता इस रूप में समझी जा सकती है कि उसमें मनुष्य के स्थूल प्रतीत होनेवाले जीवन को आंतरिक सार्थकता प्रदान करने की चेष्टा सन्निहित रहती है। काव्यभाषा में जीवन को अर्थवान् बनाने की प्रक्रिया सब से अधिक तीव्र और सूक्ष्म है, फलत: उसकी शक्ति असीमित है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राबर्ट निस्बेट ने कहा है कि भाषा का प्रभुत्व सब से बड़ा है।[1] काव्यभाषा के अधिक सर्जनशील होने के कारण उसकी संभावनाएँ बढ़ जाती हैं और उसी अनुपात में उसका दायित्व भी - अर्थात् वह किस तरह रची जाए, जिससे घटनाओं की ढेरी लगनेवाला जीवन आंतरिक संगति महसूस कर सके।

भाषा के, काव्यभाषा के महत्वपूर्ण कार्य से परिचित होने के बाद भाषा की सीमाओं की, यथार्थ के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं की अविश्वसनीयता और अपूर्णता की पहिचान समकालीन दर्शन और साहित्य-चिंतन में उभरी हैं। भले ही अपने समग्र रूप में यह नई धारणा मान्य न हो, लेकिन है यह विचारोत्तेजक (जो किसी भी धारणा या मान्यता का सब से बड़ा गुण मान जा सकता है), और काव्यभाषा-संबंधी चिंतन को नया आयाम देती है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है जॉर्ज स्टीनर का निबंध ' द रिट्रीट फ्रॉम द वर्ड ', जो उनकी पुस्तक ' लैंग्वेज एण्ड साइलेंस ' में संकलित है। आधुनिक युग के प्रसिद्ध दार्शनिक विटगैंस्टाइन के साक्ष्य पर उन्होंने भाषा की सीमाओं का उल्लेख किया है। स्टीनर ने लिखा है कि विटगैंस्टाइन अपने संपूर्ण कृतित्व में इस समस्या से जूझते रहे कि क्या शब्द और यथार्थ के बीच कोई प्रामाणिक रिश्ता है। विटगैंस्टाइन ने तो भाषा की यथार्थ निष्ठता पर संदेह करते हुए बहुत तीखे ढंग से कहा है कि भाषा

---

1. It is of all forms of authority, the most fundamental to both the social bond and to culture. ' The Nemesis of Authority' (Encounter) p.12 (August, 1972).

के माध्यम से प्राप्त हुई यथार्थ की जानकारी सही नहीं है, वह यथार्थ पर आवरण डाल देती है ।[1] अपनी दार्शनिक भावभूमि से अनुप्राणित होते हुए उसने निष्कर्ष यही रखा है कि भाषा वास्तविकता के सीमित पहलू को विवृत करती है, वास्तविकता का शेष और विस्तृत हिस्सा मौन में ही साक्षात्कृत किया जा सकता है, भाषा वहाँ नाकाम्याब सिद्ध होती है ।[2]

वस्तुत: मानवीय यथार्थ से संबंधित समस्याएँ अनुभव के स्तर पर ही समझी-समझायी जा सकती हैं और उनको सुलझाने की कोशिश भी हो सकती है । यथार्थ और भाषा के रिश्ते की प्रामाणिकता सिर्फ तर्क के स्तर पर नहीं पहचानी जा सकती । यह सवाल कि मानवीय यथार्थ को संप्रेषित करने की शब्दों की कोशिश सफल है या नहीं, विचारोत्तेजन करता है, लेकिन एकदम बुद्धि के धरातल पर उसका कोई समीचीन समाधान नहीं पाया जा सकता । तब तो शायद यही लगेगा कि यथार्थ और शब्दों के बीच कोई अर्थवान् रिश्ता नहीं है, शब्दों के माध्यम से यथार्थ के स्वरूप की पहचान धूमिल होती है, जैसा कि विटगेंस्टाइन , जॉर्ज स्टीनर और इन जैसे अन्य विचारकों तथा समीक्षकों की धारणा है ।

मनुष्य ने शब्दों के ध्वन्यात्मक स्वरूप में संकेत-चिन्हों की नियोजना की है, जो वस्तुओं के, संवेदनों के बोधक होते हैं । " मेज " शब्द से " मेज़ का ही बोध होता है , दूसरी किसी वस्तु का नहीं । यह तो स्थूल स्तर पर बात हुई । रचनाकार के प्रयोग में आकर शब्द मानवीय यथार्थ के गहरे-से-गहरे स्तर को संस्पर्श कर सकते हैं, उनसे पाठक को परिचित करा सकते हैं । इस महत्त्वपूर्ण कार्य में शब्दों की सफलता इसी बिन्दु पर समझी जा सकती है कि उनके द्वारा आवेष्टित और संप्रेषित यथार्थ कहाँ तक रचनाकार के और फिर पाठक के अनुभव का अंग बन

---

1. Wittgenstein's entire work starts out by asking whether there is any verifiable relation between the word and the fact. That which we call fact may be a veil spun by language to shroud the mind from reality. page 41.

2. Language can only deal meaningfully with a special restricted segment of reality. The rest, and it is presumably the much larger part, is silence. p. 41.

सका है, कहाँ तक वह विश्वसनीयता की प्रतीति करा रहा है, और कितनी दूरी तक उसमें रचना से तादात्म्य संभव हुआ है। स्पष्टत: सफलता का यह मानदण्ड इस अर्थ में वैज्ञानिक नहीं लगता, जिस अर्थ में वैज्ञानिकता की पहचान होती आई है, लेकिन एकदम निर्दिष्ट और सुस्पष्ट परिणाम को प्रश्रय देनेवाली वैज्ञानिकता का न हो सकना रचना की अनिर्दिष्ट, सूक्ष्म और अनेकार्थी प्रकृति के अनुकूल ही है।

स्टीनर ने काव्यभाषा के संक्रमण-काल के मूल में नये मनोवैज्ञानिक यथार्थ की समझ को रखा है, जिससे काव्यभाषा का पुराना रूप अपना रचनात्मक संबंध नहीं स्थापित कर सका, फलत: नये रचनाकारों को काव्य-रूढ़ियों में सिक्त भाषा को तोड़कर उसमें नए तेवर गढ़ने पड़े, तभी वह चेतना के विविध सोपानों का संस्पर्श कर सकी।[१]

इस तरह भाषा में संक्रमण उसकी अर्थवत्ता को, उसकी संभावनाओं को नये सिरे से उजागर करने के अभिप्राय से किसी-न-किसी स्तर पर परिचालित होता है। अतएव भाषा की प्रयोग-विधि नए यथार्थ के अनुरूप भले बदल जाए (और बदलती भी है), लेकिन भाषा की तलवर्ती स्थिति को नकारा नहीं जा सकता। एक बात और है। मानवीय यथार्थ के अनाविष्कृत, अर्द्ध-आविष्कृत और अन्य जटिल पेचीदे पक्षों को विवृत करने की कोशिश में अगर भाषा पूर्णतया सफल न हो, तो भी उसके प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता। काव्यभाषा के लिए सूक्ष्म और अस्पष्ट यथार्थ से उपजा खतरा तो एक रचनात्मक चुनौती है ; उसका मुकाबला करने पर ही काव्यभाषा के अनेक आयाम खुलते हैं, उसकी अपराजेय संभावनाएँ विवृत होती हैं। अपनी सीमाओं के बावजूद काव्यभाषा यथार्थ के सारे संभावित खतरों से जूझ सकती है, जीवन में पूरे तौर पर न भोगे गये अनुभवों को भी रचना के धरातल पर

---

1. The crisés of poetic means, as we now know it, began in the later nineteenth century. It arose from awareness of the gap between the new sense of psychological reality and the old modes of rhetorical and poetic statement. In order to articulate the wealth of consciousness opened to the modern sensibility, a number of poets sought to break out of the tradtional confines of syntax and definition. p. 48.

विश्वसनीय बना सकती है । व्यक्तित्व की सर्जनात्मकता को उत्तरोत्तर गतिशील बना रहने देने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अज्ञात, अनागत संभावनाओं से निपटने दिया जाए ।

शब्द-संसार के प्रति यह विद्रोह-भाव कोई खतरा नहीं पैदा करनेवाला है, इसे भाषा के प्रभुत्व के प्रति निष्ठावान् रॉबर्ट निस्बेट ने बहुत आत्म विश्वास के साथ महसूस किया है ।[१] भाषा के प्रति विरोधी और निषेधात्मक दृष्टिकोण रखनेवाले भी उससे अलग नहीं हो सकते, क्योंकि भाषा से अलग होने का मतलब है - जीवन से अलग होना, जीवन के अनुभव का ही अपमान करना । इस संदर्भ में रॉबर्ट निस्बेट ने सही संभावना प्रकट की है कि भाषा के प्रभुत्व के विरोधी एक दूसरे स्तर पर उसके परंपरित रूप से भिन्न नई प्रभाव-छवियों की सृष्टि उसमें करते हैं ।[२] यह ठीक भी है, क्योंकि शब्दों को लेकर अपूर्णता और असंतोष का अनुभव करनेवाला ही कुछ नया रचने की क्षमता रख सकता है । भाषा के साथ उसकी गहरी संसक्ति ऐसी ही स्थितियों में देखी जा सकती है ।

आधुनिक युग में, जबकि संचार-माध्यमों, रेडियो, सिनेमा, टेलीविज़न, समाचार-पत्र आदि - और राजनैतिक नेताओं के भाषणों में शब्दों की यांत्रिक आवृत्ति के द्वारा भाषा के प्रति सर्जनात्मक दृष्टिकोण का ह्रास हो रहा है, काव्यभाषा की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी हो जाती है कि वह अपनी मित-कथन प्रणाली से शब्द-अवमूल्यन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति की रोकथाम करे । काव्यभाषा की यह रचनात्मक और मूल्यवान् कोशिश शब्द-अवमूल्यन के परिप्रेक्ष्य में क्षति-पूर्ति से अधिक होगी ।

---

1. The current revolt against the word, against the authority of language, may be no morethan an eddy ; large to us who are close to it, but small in the longer and wider view. (The Nemesis of Authority), (Encounter) p. 13

2. If those who today declare language an enemy of true feeling and innocence ,who refer to the authority of language as waste, would themselves be seen to be fashioning new ways of language, expressive of areas of human experience of depths of meaning of reaches of imagination, as the old ways are perhaps not expressive, we could take more comfort in 'the performing self'. p. 13.

प्राचीन रचनाकार और समीक्षक - विशेषत: जिनकी दृष्टि शास्त्र-केंद्रित थी-कविता में प्रयुक्त शब्दों की प्रकृति को निर्दिष्ट तथा सुनिश्चित समझते थे। इसीलिए उनके अर्थों को एक घेरे में रख देते थे। आधुनिक रचना और समीक्षा में काव्यभाषा की उन्मुक्तता और संचरणशीलता को केंद्र में रखा जाने लगा है। एक तीसरा दृष्टिकोण विकसित हुआ है, जिसके अनुसार अर्थ के विलोप की बात की जा रही है। इस दृष्टिकोण के माननेवाले संगीत की स्वरों और चित्रकला के रंगों के सादृश्य पर काव्यभाषा के अर्थ-निरपेक्ष होने की चर्चा करते हैं। स्टीनर ने 'द रिट्रीट फ्रॉम द वर्ड' निबंध में इसका समर्थन करते हुए स्थिति का बढ़िया विश्लेषण किया है।

वस्तुत: स्वरों और रंगों की श्रेणी में शब्दों को नहीं रखा जा सकता। पहिले दोनों उपादान अमूर्त हैं - स्वर अधिक, रंग कुछ कम। वे किसी अर्थ-विशेष से संपृक्त नहीं होते। लेकिन शब्दों के साथ एक सांस्कृतिक परिवेश जुड़ा होता है, उनकी मूल्यवत्ता उनके अर्थों के साथ ही आँकी जा सकती है। यह शब्दों के साथ जुड़ा अर्थ का संस्कार उन्हें स्वरों और रंगों की तुलना में महत्वपूर्ण स्थान देता है, असंबद्ध घटना-क्रम लगनेवाले जीवन में सार्थकता की प्रतीति ये अर्थवान् शब्द ही कराते हैं। संगीत तन्मयता की सृष्टि कर सकता है, एक मन:स्थिति विशेष को अपने अमूर्त स्वरों द्वारा उद्भूत कर सकता है, लेकिन भाषा की तरह स्वर जीवन के अनुभव में रूपांतरित नहीं हो पाता। यही बात चित्रकला के रंगों के विषय में भी है। जीवन से उनकी संसक्ति भाषा की तरह नहीं हो पाती। अर्थ-संस्कार को समेटने के कारण भाषा में बौद्धिकता है, जो स्वरों और रंगों के उपादानों में नहीं। इसी बौद्धिकता, अनुभावन-क्षमता और अर्थवत्ता के स्तर पर भाषा मनुष्य की सर्जन-प्रक्रियाओं में कविता को सब से ऊँचा स्थान देती है। आर्किबाल्ड मैक्लीश ने कवि के साथ जुड़ी सार्थकता और अर्थवत्ता के समस्या पर बहुत अच्छी टिप्पणी प्रस्तुत की है।[१]

---

1. The poet's labour is to struggle with the meaninglessness and silence of the world until he can force it to mean : until he can make the silence answer and the Non-being be. It is a labour , which undertakes to 'know' the world not by exegesis or demonstrations or proofs but directly.

पूर्ण रूप से मानव की सर्जना होने के कारण, मनुष्य के द्वारा ही उसे वस्तुओं, अनुभवों के लिए संकेत-चिन्ह मिलने के कारण हो सकता है कि यथार्थ के प्रति भाषा की प्रतिक्रिया में कुछ अधूरापन हो; लेकिन यह एक तरह से उसका वैशिष्ट्य है, सीमा नहीं। भाषा का कभी-कभी प्रतीत होनेवाला यह अधूरापन मनुष्य के अपने अधूरेपन को सूचित करता है। मनुष्य का अधूरापन उसकी पराजय में, विशेषत: मृत्यु के साक्षात्कार से उपजी भयावहता और बेबसी में अपने नग्न रूप में देखा जा सकता है। इस तरह भाषा का अधूरापन जीवन की पुनर्रचना की कोशिश को रेखांकित ही करता है, उसे धूमिल नहीं करता, जैसा कि अर्थ-विलोप के समर्थकों ने समझ रखा है।

आधुनिक संदर्भों में यह मान्यता बहुत महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध हो गई है कि विशेष ढंग के साक्षात्कार मौन के माध्यम से ही हो सकते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भाषा वहाँ असमर्थ हो जाती है अर्थात् मौन भाषा की असमर्थता का द्योतक है। अगर भाषा नहीं, तो कैसे कवि ने उस विशिष्ट क्षण का अनुभव किया, जिसकी उसे अभिव्यक्ति करनी है भले ही मौन में। वस्तुत: मौन भी काव्यभाषा का एक रूप है - विशिष्ट, तन्मय और सूक्ष्म। मौन का महत्त्व यों समझा जा सकता है कि अपने इस रूप द्वारा काव्यभाषा अनुभव-विशेष से एकदम तादात्म्य स्थापित कर लेती है, अनुभव और अभिव्यक्ति एक दूसरे में तन्मयता के साथ रस-बस जाते हैं। अज्ञेय का अपना अनुभव है-'मौन भी अभिव्यंजना है।'[२]

विवेचन को आगे बढ़ाने के पूर्व काव्यभाषा और सामान्यभाषा का अंतर समझना आवश्यक हो जाता है। काव्यभाषा इस रूप में कविता की भाषा है और सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न है, क्योंकि उसके साथ माध्यमत्व की परिकल्पना टूट जाती है। जहाँ वह नहीं टूट पाती, वहाँ यह द्रष्टव्य है कि अनुभव-संवेदन रच-पच नहीं पाता, कल्पना-चित्र विशिष्ट नहीं बन पाता। काव्यभाषा की अद्वितीयता समझने का यही सूत्र उपयुक्त हो सकता है, अन्यथा उसके अंतर्गत शब्द तो वही कोश और सामान्य बोलचाल की भाषा से गृहीत किये जाते हैं। कोश में वे शब्द अनेकार्थी होकर भी प्रयोग-शून्य होने के कारण जड़ हैं, बोलचाल की भाषा

में व्यक्तित्व-शून्य । लेकिन रचना के धरातल पर उनमें व्यक्तित्व उद्भूत होता है क्योंकि रचना तो इन्हीं व्यक्तित्वान् शब्दों की सार्थक नियोजना है । इस रूप में शब्द – विशेष कवि का अपना हो जाता है, क्योंकि उसमें उसका अनुभव-संवेदन रसा-बसा रहता है । " राम की शक्ति-पूजा " में राम की अनुभूति-शून्यता के चित्रण के लिए निराला उनके प्रति संबोधित ओजस्वी कथनों को कहते हैं – " ज्यों हो वे शब्द-मात्र । " "यहाँ " शब्द ' प्रयोग " मात्र " से जुड़कर निराला का बिलकुल अपना हो गया है, वह सामान्य " शब्द " से उद्भूत होनेवाले प्रभाव से अलग कोटि का एक खास प्रभाव उद्भूत करता है, क्योंकि वह कवि के विशिष्ट अनुभव में एकदम घुल मिल गया है । काव्यभाषा के गठन में यों शब्द अपने में महत्त्वपूर्ण नहीं होता, उसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण होता है ।

इस वास्तविकता के एहसास से उपजा आश्चर्य प्रयोगकर्त्ता की रचनाशीलता का बोध कराता है कि हर रचनाकार के अनुभव -संवेदन से संपृक्त होकर एक ही शब्द अलग-अलग कोटि का व्यक्तित्व उद्भूत करता है । रचनाकार की सृजन-प्रक्रिया के निजी रूप का बहुत शांत और भव्य साक्षात्कार इस विन्दु पर होता है । " मलयानिल " शब्द को प्राय: हर छायावादी कवि ने अपने प्रयोग में लिया है,लेकिन प्रसाद की रचना-प्रक्रिया में उनकी प्रयोगगत जटिलता-सूक्ष्मता के कारण वह अधिक सार्थक लगता है, उसका रचाव अधिक सघन हो पाता है : मलयानिल की परछाईं-सी ('लहर') गीत सं० १ ; मन में मलयानिल चंदन हो ('लहर') गीत सं० १६;
हे स्पर्श मलय के झिलमिल -सा ('कामायनी')
" परछाईं ," चंदन " और " झिलमिल " से जुड़कर " मलयानिल " की यहाँ अलग-अलग अर्थ-छायाएँ उभरती हैं ।

इस प्रकार कविता में शब्दों का परिमाणात्मक महत्त्व उतना नहीं होता, जितना गुणात्मक । प्रयुक्त शब्दों की लम्बी संख्या तब तक कोई वैशिष्ट्य नहीं उद्भूत कर पाती, जब तक कि उनमें विविध अर्थ-छायाओं की समाविष्टि न हुई हो । शब्दों में अपने प्रयोग से व्यक्तित्व संभव करना इस दृष्टि से रचनाकार का प्राथमिक धर्म है ।

काव्यभाषा की प्रकृति सुकुमार होती है (और यह बात सर्जन-मात्र की भाषा के लिए सही है) । शब्द-प्रयोग के समय इस सुकुमारता का पग-पग पर ध्यान रखना होता है । यह एक चिर-परिचित अनुभव है कि पाण्डित्यपूर्ण शब्दों की भरमार काव्यभाषा के स्वरूप को विकृत कर देती है । यह द्रष्टव्य है कि उपदेश, दर्शन, वक्तृता में भाषा का ऐसा नाजुक रूप नहीं रहता । इसी कारण उनके वक्तव्य कविता के अनुभव से अलग स्तर पर निर्मित होते हैं । हिंदी कवियों में कबीर की उलटबासियाँ, सूर के कूट पद, केशव की पाण्डित्यपूर्ण उक्तियाँ कविता बनने की स्थिति नहीं है ।

काव्यभाषा की प्रकृति जितनी सुकुमार है, उतनी ही व्यापक भी । सामान्यतः सुकुमारता के साथ व्यापकता की संगति नहीं बैठ पाती, लेकिन काव्यभाषा बहुत उदारता से इन दोनों विशेषताओं का संवहन करती है । हिंदी में काव्यभाषा की व्यापकता के विषय में समीक्षकों और पाठकों की समझ एक माने में निराला के 'कुकुरमुत्ता' के माध्यम से विकसित हुई है । निराला ने रचना के स्तर पर पूरे आत्म-विश्वास के साथ यह व्यक्त कर दिया कि 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति-पूजा' की काव्यभाषा जितनी दूरी तक कविता का अनुभव रचती है, उतनी ही दूरी तक 'कुकुरमुत्ता' की काव्यभाषा । दोनों की प्रभाव के स्तर पर उत्तम-मध्यम जैसी श्रेणियाँ नहीं बनाई जा सकतीं । इस तरह मुख्य प्रक्रिया सर्जनात्मकता की है, जिसका पोषण काव्यभाषा को करना है। शब्द-स्रोत कोई भी हो सकता है ।

इसी से संबंधित - कदाचित् अधिक महत्वपूर्ण - तथ्य यह है कि प्राचीन आचार्य और कवि भी कभी-कभी भाषा की श्रेष्ठता के प्रतिमान में केंद्रीय स्थान सुकुमारता को देते थे । राजशेखर की प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं :

> परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो
> पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तिअमिमाणं ।। ('कर्पूर मंजरी')

संस्कृत से प्राकृत को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए राजशेखर ने प्राकृत भाषा की सुकुमारता को केंद्र में रखा (प्राकृत स्वर-संयोग प्रधान होने के कारण कोमल-शृंगारिक प्रसंगों के अंकन में विशेष उल्लेखनीय है ।) । दूसरी पंक्ति में

वे पुरुष और स्त्री की क्रमश: कठोरता और कोमलता के दृष्टांत द्वारा दोनों भाषाओं का अंतर बतलाते हैं अर्थात् पुरुष और स्त्री में जितना अंतर होता है, उतना ही संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में है।

लेकिन आधुनिक दृष्टि ध्वन्यात्मक सुकुमारता के प्रति इस एकांतिक आकर्षण को प्रश्रय नहीं देती। यह सुकुमारता काव्यभाषा का केन्द्रीय लक्षण नहीं है, आधुनिक कविता ने जैसे यह सिद्ध कर दिया है। काव्यभाषा का अपनी प्रकृति में संवेदनशील होना मुख्य बात है। इसके लिए सुकुमारता कवि-दृष्टि में निहित होनी चाहिये। शब्द-चयन करते समय रचनाकार को यह सावधानी रखनी होती है कि वे ही शब्द रखे जाएं, जिनमें उसका अनुभव-संवेदन उत्तरोत्तर गतिशील बना रहे, पुष्ट होता रहे। लेकिन राजशेखर और परंपरित दृष्टि काव्यभाषा के अन्तर्गत जिस ध्वनि और शब्दावली प्रकार संबंधी सुकुमारता को प्रश्रय देती आई है, वह काव्यभाषा के प्रति उनके सीमित दृष्टिकोण का प्रतिफलन है। इसे फिर "तुलसीदास" - राम की शक्ति-पूजा" और" कुकुरमुत्ता" के माध्यम से समझा जा सकता है।

यह ठीक है कि तुक, छंद, संगीत जैसे तत्त्व काव्यभाषा की अनिवार्यताएँ नहीं है, लेकिन इनका महत्त्व अनदेखा नहीं किया जा सकता। निराला निराला के अभिजात शब्द प्रधान काव्य की सफलता के मूल में बहुत कुछ इन तत्त्वों की रचनात्मक आयोजना है। विशेष रूप से" गीतिका" के अभिजात सौन्दर्य से मण्डित गीत इस संदर्भ में देखने योग्य हैं। फलस्वरूप इन तत्त्वों को काव्यभाषा के मात्र बाह्य आवरण रूप में नहीं परिकल्पित किया जा सकता। समसामयिक कविता में बहुधा तुकों के विशिष्ट रचाव द्वारा संवेदना में-खास तौर से, व्यंगात्मक प्रसंगों में - गुणात्मक उन्मेष विकसित किया जाता है। लेकिन यह बात सही है कि इन उपादानों से मुक्त कविता स्वायत्त और आत्म-निर्भर अधिक होती है। ये उपादान कभी-कभी काव्यभाषा की त्रुटियों की क्षति-पूर्ति कर देते हैं, या उन्हें पृष्ठभूमि में डाल देते हैं। पाठक इनके आकर्षण में पड़कर बहुत पैने ढंग से काव्यभाषा का विश्लेषण नहीं कर पाता, उसकी यथार्थ पकड़ नहीं कर पाता। अत: कुल तुक, छंद, संगीत जैसे उपादानों से मुक्त होने पर काव्यभाषा की क्षमता की अपेक्षाकृत सही पहचान हो पाती है।

कविता में अनुभव की संश्लिष्टता सतत विकसनशील रहती है, और इस दृष्टि से वह मनुष्य की सभी सर्जन-प्रक्रियाओं में श्रेष्ठ है। केवल इसी आधार पर कविता की श्रेष्ठता के स्तर बनाने होंगे कि उसमें अनुभव अपने संश्लिष्ट रूप में कहाँ तक कायम रह सका है। इस दिशा में बिंबों का कार्य केन्द्रीय महत्व का है। ऐसा नहीं कि जटिल अनुभव-संवेदन अपने उन्मोचन के लिए बिंबों का ही मुखापेक्षी होता है। स्थिति बहुधा अलग भी देखी जाती है। निराला की प्रसिद्ध पंक्तियां हैं :

बाहर मैं कर दिया गया हूँ
भीतर पर भर दिया गया हूँ।

यहाँ " बाहर " और " भीतर " जैसे चिर-परिचित, सीधे और बिंबात्मकता से तटस्थ शब्दों में निराला ने निष्कासन -जन्य वेदना और आत्मपूर्णता के गहन सुख का अनुभव रचा-बसा दिया है।

फिर सवाल उठता है- वह कौन सी विशेषता है, जिसके आधार पर बिंब को काव्यभाषा का केन्द्रीय तत्व माना जा सकता है। वस्तुत: बिंब में से विकसित किया गया अनुभव रचना की भाषा में एकदम घुलनशील हो जाता है। वो एक निश्चित दिशा में बँधने नहीं पाता, वह अनेक स्तरों को खोल सकता है, खोलता है। इसी तरह संमिश्रित अनुभवों को संस्पर्श कर सकने की क्षमता बिंबों की अपनी है। " कामायनी " में प्रसाद ने लज्जा से परिचालित युवती के अस्पष्ट न पकड़ में आ सकने वाले मानस को दो बिंबों में से उभारा है -

कोमल किसलय के अंचल में
  नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी ;
गोधूली के धूमिल पट में
  दीपक के स्वर में दिपती-सी।

इसी संदर्भ में प्रतीक की अर्थ-क्षमता देखी जा सकती है, जिसमें से पूरा-का-पूरा जटिल अर्थ विवृत नहीं होने पाता। महादेवी ने प्रतीकों का विपुल

मात्रा में प्रयोग किया है । उनमें यह रचनाधर्मिता नहीं है कि रचे गये प्रतीकों को आगे बढ़ाकर उनके माध्यम से बिंबों को विकसित करने की प्रक्रिया अपनायें । इसके विपरीत उनकी प्रक्रिया दो तरह की है - या तो वे कविता में एक-के-बाद एक प्रतीकों की रचना करती चलती है, या एक प्रतीक को लेकर उसे सांगरूपक में ढालने की कोशिश करती है । " दीपक " के प्रतीक का उन्होंने प्राय: इसी तरह उपयोग किया है । महादेवी की काव्यभाषा के द्रवणशील न हो पाने के मूल में बहुत कुछ हाथ उनकी इस प्रतीक-सांगरूपक योजना का है । लम्बी कविताओं की रचना उन्होंने नहीं की है, यह इस बात का सूचक है कि प्रतीकों के माध्यम से लम्बी कविताएँ नहीं लिखी जा सकती - यानी संश्लिष्ट अनुभव को विस्तार नहीं दिया जा सकता उसके अनेक आयामों का संस्पर्श नहीं किया जा सकता । डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने बिंब की अर्थ-संश्लेषण रूप में जो परिकल्पना की है,[१] उसे प्रतीकों की अर्द्ध-क्षमता के परिप्रेक्ष्य में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है, उसकी संगति अधिक विश्वसनीयता से परखी जा सकती है । सांगरूपक अपने द्वैत के कारण अर्थ-संश्लेषण नहीं बन पाता, इसीलिए महादेवी के काव्य में पूरा का पूरा अनुभव बहुत कम अक्षत रह पाता है, अधिकतर द्विपदीय अंकन के फैलाव की प्रवृत्ति वहाँ रहती है ।

बिंब के स्वरूप के सम्बन्ध में सामान्यत: यह धारणा है (और जो उचित भी है) कि उसमें प्रस्तुत - अप्रस्तुत के द्वैत की अवस्थिति नहीं रहती . लेकिन बहुतेरे बिंब ऐसे हैं, जिनमें यह द्वैत है, और इसके बावजूद उनकी संप्रेषण -प्रक्रिया अक्षत है, निर्मल है । हिन्दी कविता के इतिहास में छायावादी काव्य-धारा तक इसी श्रेणी के बिंबों की प्रचुरता रही है, प्रस्तुत - अप्रस्तुत के द्वैत से उद्भूत होने वाले दुर्बल प्रभाव का अतिक्रमण कर किस तरह ये बिंब अपने संप्रेषण में शुद्ध बिंबों जैसी अर्थ-क्षमता विकसित करते हैं, यह कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है । "पद्मावत में जायसी ने नागमती की वियोग-व्यथा का अंकन करते हुए एक संवेदनशील बिंब रचा है : " मोर कुछ नैन कुवहि जस ओरी । "

यहाँ नागमती के नयन प्रस्तुत हैं और ओरी अप्रस्तुत ; लेकिन पाठक की दृष्टि इस द्वैत पर टिकने नहीं पाती, क्योंकि कवि ने नागमती की कारुणि

---

१) कामायनी का पुनर्मूल्यांकन, पृ० २१

दशा के अनुभव को अर्थ के स्तर पर सघन और संचरणशील बनाने की चेष्टा में इस द्वैत का बोध ही नहीं होने दिया है । ओरी से चूता हुआ जल छप्पर को नुकसान पहुँचाता है, वियोगिनी नागमती के बराबर टपकते जाते आँसू उसके हृदय को कहीं गहरे में घात-विघात कर देते हैं । उसके छीजते जाते प्राणतत्व की मार्मिक स्थिति को कवि ने चूती हुई ओरी के अप्रस्तुत में से संवेद्य बनाया है । ओरी से गिरता जल और टपकते हुए आँसुओं के अनुभव एक-दूसरे में रस-बस गये हैं । इसी मोड़ पर आकर ओरी का अप्रस्तुत बिंब की अकृत्रिम कला-चेष्टा और संवेदनशीलता ग्रहण कर लेता है । इस तरह भाषिक संरचना में द्वैत के होते हुए भी उसकी सीमाओं का अनुभव और प्रभाव के स्तर पर एहसास न होने देना कवि की कुशल रचना-प्रक्रिया और बिंब की अपनी क्षमता का परिचायक है ।

यह तो मध्यकालीन संरचना का एक नमूना प्रस्तुत किया गया, जहाँ कुल मिलाकर अनुभव की तन्मयता और सघनता रहती है, तनाव और जटिलता की संभावनाएँ वहाँ कम ही हैं । फिर यह प्रश्न उठता है - क्या इस कोटि के बिंब अनुभव के तनाव का निर्वाह कर पाते हैं ? हिन्दी काव्य के संदर्भ में छायावादी कविता के बिंबों में इस तरह के तनाव को, सूक्ष्मता - जटिलता को देखा जा सकता है, जिस स्थिति में कि ब्रजभाषा और अवधी से अलग ढंग की संवेदना से संपृक्त काव्यभाषा जटिल-सूक्ष्म अनुभूतियों के विविध आयामों का संस्पर्श करती है । " कामायनी " के " श्रद्धा " सर्ग से एक छंद प्रस्तुत किया जा रहा है ?

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग ।

पहली दो पंक्तियाँ प्रस्तुत है और अन्तिम दो पंक्तियाँ अप्रस्तुत ; लेकिन बिजली के फूल का कवि-परिकल्पित विशिष्ट सूक्ष्म रूप श्रद्धा के सौन्दर्यानुभव को अर्थ के स्तर पर एकदम ताज़ी उन्मुक्तता प्रदान करता है, फलत: परंपरित अलंकरण का अप्रस्तुत न रहकर नये रूप में खिला बिंब - यानी काव्यभाषा बन जाता है ।

' बिजली का फूल ' में अनुस्यूत कौंध, तड़प, चंचलता, त्वरा, दीप्ति, चमक और आकर्षण की अर्थ-छवियाँ सौन्दर्य का तनावयुक्त संप्रेषण करती है ।

इस विवेचन से एक बात साफ हो जाती है कि प्रस्तुत-अप्रस्तुत के द्वैत को स्थान देते हुए भी बिंब बन सकता है, बशर्ते कि वह काव्यभाषा के विन्यास में ~~अपनी~~ अलग से उभरा न हो ; यानी वह अनुभव को भंगन करे, समरस बनाए । बिंब अपने शुद्ध, स्वायत्त रूप में (जबकि उसमें प्रस्तुत -अप्रस्तुत का द्वैत उभरता नहीं) सहज कलात्मकता के साथ काव्यभाषा में ढल जाता है । प्रसाद की प्रसिद्ध पंक्ति है :
' तू अब तक सोई है आली । आँखों में भरे विहाग री । '

' विहाग ' का सूक्ष्म-अमूर्त, सांगीतिक बिंब बिलकुल अनायास रीति से वर्णन -क्रम और उसके समूचे वातावरण में रचा-बसा दिया गया है, इसीलिए वह अलग से उभरा हुआ नहीं लगता ।

काव्यभाषा को निखारने- चमकाने में विशेषणों, क्रियापदों और अव्ययों का योगदान विशिष्ट है । यह एक विचित्रता ही है कि विशेषण-बहुलता जहाँ एक तरह की कृत्रिमता, शैलीगत शैथिल्य और आडंबर की द्योतक है, वहीं विशेषणों की सोच-समझ कर की गई आयोजना को संवेदनशील बनाती है । विशेषणों के अवमूल्यन के बीच उनमें व्यक्तित्व विकसित करने की कोशिश सचमुच रचनात्मक मानस की साहसिकता का संकेत देती है । विशेषणों के साथ जुड़े अलंकरण-चेष्टा और कृत्रिमता के संस्कारों को मिटाकर अनुभव-विशेष से उनकी संपृक्ति शब्द-चेतना के प्रति सजग कवि ही कर सकते हैं ।

कविता की भाषा में क्रियापदों का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है । अक्सर जब कवि बिंबों से उपराम रहता है, तो क्रियापदों के समर्थ प्रयोग से कविता में सघन अर्थ-छवियाँ विकसित करता है । उर्दू काव्यभाषा का मिज़ाज कुछ इसी ढंग का है । ग़ालिब का प्रसिद्ध शेर है :

पूछते हैं वो कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या ?

' बतलाओ ' और ' बतलायें ' जैसी बोलचाल की एकदम सामान्य

क्रियाओं में कवि ने यहाँ हल्के मुहाविरे की-सी प्रवाहमयता और लोच भर दिया है। ग़ालिब की सादगी और नाज़ुक अंदाजी संज्ञा-प्रयोगों में उतनी नहीं, जितनी क्रियापदों और अव्ययों में है। उर्दू में तो संज्ञाएँ यों भी अधिकतर अरबी-फ़ारसी की है, जिनमें अर्थ की दृष्टि से स्थिरता है। उर्दू की अपनी निजी प्रवाहशील शब्दावली क्रिया-पद और अव्यय ही हैं, जिन के प्रयोग में रचनाकार का व्यक्तित्व उभरता है।

काव्यभाषा की संरचना में अव्यय अपेक्षाकृत छोटे तत्त्व हैं, लेकिन कुशल प्रयोग में बहुत अर्थवान् सिद्ध होते हैं। वे सामान्य बात को विशिष्ट भंगिमा प्रदान करते हैं, अपने निरीह और सामान्य से लगनेवाले व्यक्तित्व में ऐसी ऊर्जा रखते हैं, जो सामान्य का विशिष्टीकरण कर देती है। उर्दू काव्यभाषा ने अव्यय की अपनी क्षमता का बढ़िया उपयोग किया है। मोमिन की प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं :

तुम मेरे पास होते हो गोया,
कोई जब दूसरा नहीं होता।

यहाँ अद्वैत भाव में अनुस्यूत गहरी आत्मीयता, सादगी और अनन्यता की अर्थ-छवियाँ " गोया " जैसे अव्यय के बेलौस अंदाज़ में से विवृत होती हैं। हिन्दी के मध्यकालीन रीतिकाल और समसामयिक कविता में अपने-अपने ढंग से अव्ययों की विशिष्ट क्षमता का उपयोग करने की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है।

काव्यभाषा की प्रक्रिया में एक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है नाटकीयता का। गद्य और कविता की भाषा में अंतर शब्दों की प्रयोग-विधि को लेकर है, अन्यथा शब्द तो दोनों में लगभग एक से होते हैं। शब्द-प्रयोग-विधि के संदर्भ में इतना कहना उचित होगा कि काव्यभाषा में निहित नाटकीयता ही गद्य को कविता से जोड़ती है। ख़ास तौर से, समसामयिक कविता में, जहाँ शब्दावली, लय यहाँ तक कि वाक्य की संयोजना बहुत कुछ — कभी - कभी तो एकदम — गद्य के ढंग की होती है, नाटकीयता ही वह तत्त्व रह जाता है, जो कविता की भाषा का रूप बनाता है। मुक्तिबोध के " अँधेरे में " — से एक अंश है :

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिंतक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं
उनके ख़्याल से यह सब गप है
मात्र किंवदंती।

यहाँ बिलकुल गद्यात्मक वाक्य-विन्यास है, शब्दावली किसी भी तरह की रागात्मकता से उदासीन है, लेकिन उसके बावजूद यह अंश कविता की विशिष्ट संप्रेषण-प्रक्रिया से परिचालित है। भाषा में निहित नाटकीय संभावनाएँ शांत व्यंग्य की मुद्रा के साथ उभरी है, और इस तरह मुक्तिबोध ने अपने समकालीन यथार्थ की भयावहता को उजागर किया है। सब के चुप रहने में नाटकीयता है, जो यथार्थ को पहचानकर भी उसकी भीषणता और नग्नता को नकारने की मानवीय वृत्ति पर लीला-भाव से व्यंग्य करती है। यह काव्यभाषा की विशिष्ट नाटकीयता ही है, जिसके कारण भाषा की सरलता या कठिनता अर्थवान् बनती है, संप्रेष्य हो पाती है। इसी उद्धरण को लें - यहाँ शब्द एकदम परिचित और रोज़मर्रा के हैं; किन्तु पूरे अंश में मुक्तिबोध ने दृश्य की जो नाटकीय संभावनाएँ पैदा की है, उनकी वजह से सारी सरलता गठन की परिपक्वता में बदल जाती है। इसी तरह दुरूह और कठिन शब्दावली में अगर नाटकीय तत्त्व है, तो उसकी रचनात्मक संगति आसानी से बैठ जाती है। 'राम की शक्ति-पूजा' का आरंभिक कठोर समास-बंध इसीलिए ग्राह्य होता है, क्योंकि वहाँ निराला ने भरपूर नाटकीय भंगिमाएँ भर दी है।

काव्यभाषा की प्रकृति और प्रक्रिया के संबंध में यह एक सरल धारणा है कि चित्रात्मकता काव्यभाषा का केन्द्रीय गुण है। सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है 'कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है -------।'[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्यभाषा में चित्रात्मकता को मुख्य स्थान दिया है : 'कविता में कही गई बात चित्र-रूप में हमारे सामने आनी चाहिए।'[२] वस्तुत: काव्यभाषा अपने वृहत्तर रूप में अर्थ-संश्लेष है। महज चित्र-योजना बाह्गुण संवेदन के पैनेपन को विवृत कर सकती है, लेकिन कविता को जीवन की पुनर्रचना नहीं बना सकती, क्योंकि जीवन की पुनर्रचना बनने के लिए कविता को जटिल-संकुल जीवन को, उसके वैविध्य में लेना होगा, जिसका अर्थ है - काव्यभाषा अर्थ संश्लेषण के स्तर पर विकसित हो।

---

१) पल्लव : प्रवेश, पृ० १७

२) चिन्तामणि, भाग (१) 'कविता क्या है ?' पृ० १४०

रूढ़ियों से विद्रोह की कोशिश में व्यक्तित्व की सर्जनात्मकता गतिशील होती है । काव्यभाषा - जैसा कि शुरु में कहा गया - माध्यम नहीं है, पूरा-का-पूरा व्यक्तित्व है, और यह व्यक्तित्व वह उद्भूत करती है शब्द-रूढ़ि से संघर्ष में । इस तरह शब्दों का संस्करण या पुनर्नवीकरण कविता में संभव होता है । भाषा की काव्य-मुक्ति , गहरे जाकर टटोलने पर, कवि की भी रचनात्मक उन्मुक्ति लगेगी । काव्यभाषा का यह वैशिष्ट्य और उसकी उन्मुक्त प्रक्रिया दर्शन और विज्ञान की भाषा की नहीं है । वहाँ भाषा माध्यम भर है, संश्लिष्ट अनुभव से संसक्त न होने के कारण अपने में एक व्यक्तित्व नहीं है और इसीलिए अपनी सारी गरिमा तथा अर्थवत्ता एवं मानवीय जीवन के लिए उपयोगिता के बावजूद दर्शन और विज्ञान जीवन की पुनर्रचना नहीं कर पाते,जो कि एकमात्र कविता या कि साहित्य का दायित्व है ।

अ ध्या य - २

आधुनिक खड़ीबोली हिन्दी काव्यभाषा का विकास - ब्रजभाषा की सापेक्षता में

कई शताब्दियों तक व्यवहृत होने के बाद बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक ब्रजभाषा का काव्य-क्षेत्र से अलगाव इस तथ्य का संकेत देता है कि रचनाकार किसी भाषा-विशेष से बँधता नहीं है। जब उसे यह प्रतीत होने लगता है कि अमुक भाषा-रूप यथार्थ को सही ढंग से विवृत नहीं कर पा रहा है, तो वह उससे अलग होकर कुछ नया गढ़ता है, जो उसकी सर्जनात्मकता को ह्रासशील न होने दे। इस तरह मुख्य है गतिशील सर्जनात्मकता, न कि कोई विशेष भाषा-रूप। हिन्दी काव्यभाषा का ब्रजभाषा को छोड़कर आधार रूप में खड़ीबोली को अपनाना व्याकरणिक स्तर से ऊपर रचनात्मकता के नये धरातल का अन्वेषण करने की गत्यात्मक कोशिश का प्रतिफलन है, क्योंकि एक भाषा-रूप से असंतोष महसूस करने का अर्थ है कि कवि उसके भीतर से अपना उन्मोचन नहीं कर पा रहा है, कहीं न कहीं गत्यात्मकता में अवरोध पड़ रहा है। वैसे हिन्दी काव्यभाषा की इस माने में विशिष्ट स्थिति रही है (और जो उसकी शक्ति और व्यापकता की सूचक है) कि अलग-अलग कालों में उसके आधार-रूप कई बने हैं - खड़ीबोली ,ब्रजभाषा, अवधी और फिर खड़ीबोली।

१९वीं शताब्दी के अंत में और २०वीं शताब्दी के पहले दो दशकों में यह समझा जाने लगा कि ब्रजभाषा अपनी सारी साहित्यिक समृद्धि और कोमलता के बावजूद आधुनिक युगीन , यदि कह सकें तो गद्य-संवेदना को अपने व्यक्तित्व में रचाने-पचाने में असमर्थ है। ब्रजभाषा का मध्ययुगीन क्रमशः अलंकरण प्रधान रूप हुआ, उसकी बहुत कुछ तन्मय प्रकृति नये यथार्थ का संस्पर्श करने में सक्षम नहीं हो सकती थी। ब्रजभाषा के प्रतीक, अप्रस्तुत ,छंद,लय एक विशेष ढंग की भावभूमि में सिक्त थे। यह भावभूमि थी - शृंगारिक और भक्तिभावना की। रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य कवि देव ने तो ब्रजभाषा में शृंगार-चित्रण को केन्द्रीय स्थान देने की बात मुक्तकण्ठ से कही थी-

बानी को सार बखान्यो सिंगार , सिंगार को सार किसोर किसोरी।

उल्लेखनीय यह है कि श्रृंगारिक भावभूमि में अपने सारे सूक्ष्म और सुकुमार चित्रण के बावजूद कविगण मानवीय अनुभव की बहुत कम द्वन्द्वात्मकता और जटिलता का पोषण कर सके थे । इसका एक कारण यह था कि बौद्धिक तनाव और द्वन्द्वात्मक प्रखरता को मध्ययुग में स्थान नहीं मिला था । फलत: काव्यभाषा - जो अपने परिवेश के संस्कारों, धारणाओं और चेतना से जुड़ी होती है - में भी प्रशमन, तन्मयता और एकाग्रता को केन्द्रीय स्थान मिला ।

लेकिन आधुनिक काल में 'मीन-खंजन-मृग' उपमान धारक, ब्रजभाषा का बँधा-बँधाया दायरा - जिसको लेकर परवर्ती रीति-कवि ठाकुर ही अपनी खीज व्यक्त कर चुके थे - सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन ' - कवियों के लिए रचनात्मक नहीं रह गया था । ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर उत्तरोत्तर झुकाव और फिर खड़ीबोली का एकांत ग्रहण इस स्थापना का जीवंत निदर्शन है कि भाषा का - विशेषत: काव्यभाषा का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है, जब-जब वह कुंठित होता है, तब-तब कवि को सँभाल करनी पड़ती है, उसमें आई हुई रूढ़ियों को निरस्त कर नए तेवर गढ़ने पड़ते हैं, जिससे वह सर्जनात्मकता को सुचारू रूप से उन्मुक्त रख सके । इस स्वतंत्र व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में डॉ० शितिकंठ मिश्र के इस कथन की अर्थवत्ता को समझा जा सकता है : " आधुनिक हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली का आंदोलन एक युगांतकारी घटना है । "[१]

ब्रजभाषा की सापेक्षता में खड़ीबोली काव्यभाषा के विकास के दो चरण हैं । एक व्याकरणिक एवं सुधारात्मक है, जिसे महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयासों में परिलक्षित किया जा सकता है, दूसरा सर्जनात्मक और इसीलिए काव्यभाषा के स्तर पर है, जो अधिकतर छायावादी कवियों के द्वारा संभव हो सका, यद्यपि उनके पूर्व छिटपुट, गुणात्मक रचाव श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि की काव्यभाषा में देखा जा सकता है ।

आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने खड़ीबोली के महत्त्व को पहले समझा और उसमें गद्य-रचना आरंभ की । उनकी प्रेरणा से उनके समकालीनों ने भी

---

१) खड़ीबोली का आंदोलन , आमुख पृ० ६ ।

इस दिशा में कार्य किया । लेकिन जहाँ तक काव्य-रचना का प्रश्न था, भारतेन्दु ने उसमें ब्रजभाषा की स्थिति को ज्यों-का-त्यों बना रहने दिया । यह अलग बात है कि कहीं-कहीं उन्होंने नवोन्मेष-सूचक प्रयोगों को ब्रजभाषा में स्थान दिया । प्रात-समीरन ' कविता में उनका यह प्रयोग द्रष्टव्य है :

स्नेही के परस सम पावन-प्रभात ।

पावन-प्रभात ' को देखने का यह नया ढंग (' स्नेही के परस सम)' एक सूक्ष्म और कोमल परिवेश की सृष्टि करता है । जयशंकर प्रसाद ने आँसू ' की इन पंक्तियों में इसी तरह की कल्पना की है, जिसमें संश्लिष्टता के कारण अधिक भास्वरता आ गई है :

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा ।

परस तुम्हारा ' कहने मे बल ' तुम्हारा ' पर आता है, जिससे स्पर्श में वैशिष्ट्य आ जाता है ।

२०वीं शताब्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्यभाषा के आधार-रूप की समस्या को सुलझाने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की, गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता की आवश्यकता उन्होंने समझी । हिंदी की उस समय विचित्र स्थिति इस रूप में थी कि उसके गद्य और पद्य में भाषा के दो आधारों का प्रयोग होता था । गद्य की भाषा थी - खड़ीबोली ; पद्य में प्रधानता ब्रजभाषा की ही थी, बहुत क्षीण रूप में खड़ीबोली का कविता में प्रयोग होता था । आचार्य द्विवेदी ने इस प्रयोग द्वैध को मिटाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। जहां उन्होंने सरस्वती ' पत्रिका के माध्यम से हिंदी गद्य-क्षेत्र में छाई अराजकता, निरंकुशता और व्याकरणिक अशुद्धता को दूर करने की समर्थ कोशिश की, वहीं इस बात पर बल दिया कि गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता होनी चाहिये और हिन्दी का हित युग की सापेक्षता में इसी तरह हो सकता है कि वह खड़ीबोली को आधार बनाये । महावीर प्रसाद जी के पूर्ववर्ती सरस्वती संपादक श्याम सुन्दरदास यह महत्त्वपूर्ण चेतावनी दे चुके थे ' - यदि गद्य और पद्य की भाषा एक नहीं हुई, तो हमारी भाषा सदा अमार्जित बनी रहेगी । '[१]

---

१) सरस्वती, १९०१ ई० ; भाग २, संख्या ६ (खड़ीबोली का आंदोलन ' पुस्तक से साभार उद्धृत)।

खड़ीबोली को अपना मार्ग बनाने में विविध कठिनाइयाँ फेलनी पड़ी । इस संबंध में विस्तृत और महत्त्वपूर्ण विवेचन डॉ० शितिकंठ मिश्र ने " खड़ीबोली का आंदोलन " पुस्तक में किया है । उन्हीं के शब्दों में " खड़ीबोली के पक्ष और विपक्ष को लेकर जो आन्दोलन हुआ, उसे ही खड़ीबोली का आंदोलन कहा गया है। यह आंदोलन पूर्णतया साहित्यिक था। भाषा-विज्ञान से इसका कोई संबंध नहीं है ।[१]

खड़ीबोली को काव्यभाषा बनाने के सिलसिले में विरोध बहुत हुआ, जिससे विरोधियों के संकीर्ण और मध्ययुगीन दृष्टिकोण का ही आभास मिलता है। वैसे मनुष्य-मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि पुरानी वस्तुओं में चिरकालिक घनिष्ठ संबंध होने पर, उनके नए संदर्भ में अनुपयोगी और जीवन-शून्य होने के बावजूद उन्हें सहज रूप में वह नहीं छोड़ पाता । काव्य-रसिकों को ब्रजभाषा का कोमल लालित्य और भाव-भीना विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भ अपनी तरफ़ खींच लेता था । एक अदाय और समृद्ध साहित्यिक परंपरा से विच्छेद उन्हें असह्य था । जगन्नाथदास " रत्नाकर " के उद्धव-शतक " में ब्रजभाषा में किसी सीमा तक आधुनिक भंगिमा लाने का प्रयास उल्लेखनीय है । अपने इस विशिष्ट मोह के कारण वे यह नहीं समझ पाते थे कि इतिहास की स्थिति एक है और सर्जनात्मकता की गति उससे आगे है ; उसको ही विवृत करना है, पुष्ट करना है और यह सर्जनात्मकता नये यथार्थ को उसकी जटिलता और गहनता में, उसके विस्तार और वैविध्य में साक्षात्कृत करने पर ही विकसित हो सकती है ।

इस संदर्भ में भारतेंदु के समवर्ती राधाचरण गोस्वामी का नाम लिया जा सकता है,जिन्होंने ब्रजभाषा का प्रबल समर्थन ही नहीं किया, अपितु खड़ी-बोली का डटकर विरोध भी किया । यद्यपि उन्होंने स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सर्जना भी की, लेकिन उनकी साहित्यिक प्रसिद्धि का मुख्य कारण उनके द्वारा खड़ीबोली में काव्य-रचना का विरोध था । पहली बार ११ नवंबर, १८७७ ई० के " हिन्दुस्तान " पत्र में उन्होंने खड़ीबोली के विरोध में विविध तर्क रखे ।[२] व्याकरणिक स्तर पर उन्होंने अपनी

---

१) खड़ीबोली का आन्दोलन , आमुख पृष्ठ ६ ।

२) खड़ीबोली का आन्दोलन , पुस्तक में यह पत्र संगृहीत है, पृ० ३५४ ।

की कि ब्रजभाषा से खड़ीबोली भिन्न नहीं है और रचना के स्तर पर उन्होंने खड़ीबोली को अक्षम बतलाया है ।

दूसरी ओर श्रीधर पाठक खड़ीबोली में काव्य-रचना के समर्थक थे, फलतः उन्होंने २० दिसंबर, १८८७ ई० के " हिन्दुस्तान " में राधाचरण गोस्वामी के आरोपों को निराधार सिद्ध किया ।[१] खड़ीबोली के एक अन्य प्रबल समर्थक थे अयोध्या प्रसाद खत्री, जिन्होंने " खड़ीबोली का आंदोलन " नामक पुस्तक १८८८ ई० में प्रकाशित कराई और तन-मन-धन से खड़ीबोली के प्रचार-प्रसार में योग दिया । कविता की भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रयोग की बात उन्होंने ही १८८७ ई० में उठाई । उनसे भी राधाचरण गोस्वामी का वाद-विवाद चला करता था । आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में द्विवेदी जी के अथक प्रयत्नों और प्रेरक व्यक्तित्व के फलस्वरूप खड़ीबोली की कविता की भाषा के रूप में प्रतिष्ठा हुई, जिसके लिए मार्ग बनाने में अयोध्या प्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक ने प्रचुर योग दिया ।

खड़ीबोली में काव्य-रचना के विरोधियों का प्रमुख तर्क यह था कि वह कर्कश है, कठोर है, ब्रजभाषा का सा मार्दव और लालित्य उसमें नहीं है । पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने अपने एक वक्तृता में कहा :" खड़ीबोली की कविता पर हमारे लेखकों का समूह इस समय टूट पड़ा है । आजकल के पत्रों और मासिक पत्रिकाओं में बहुत सी इस तरह की कविताएँ छपी हैं ; परन्तु इनमें अधिकतर ऐसी है, जिनको कविता कहना ही कविता की मानो हँसी करना है ; यों तो काव्य के गुण इनमें बहुत कम जँचते हैं । [२] इस विरोध के मूल में उन्होंने खड़ीबोली की कठोरता को रखा मेरे विचार में खड़ीबोली में एक इस प्रकार का कर्कशपन है कि कविता में काम में ला उसमें सरसता संपादन करना प्रतिभावान् के लिए भी कठिन है, तब तुकबंदी करनेवालों की कौन कहे ?" [३] यहाँ स्पष्ट ही चिंता जितनी " तुकबंदी " के लिए व्यंजित होती है, उतनी कविता के लिए नहीं ।

---

१) खड़ीबोली का आंदोलन" पुस्तक में यह पत्र संगृहीत है । पृ० ३५५

२) प्रिय प्रवास " की भूमिका में " हरिऔध " ने भट्ट जी का यह विचार प्रस्तुत किया है । पृ० १०

३) वही, पृ० १० ।

ब्रजभाषा के प्रति यह लगाव वस्तुत: कोमलता के प्रति एकांतिक दृष्टिकोण है । नवीन युग-बोध से असंपृक्त, यथार्थ के प्रति सार्थक प्रतिक्रिया करने में अक्षम कोमलता भाषा के लिए कभी वरेण्य नहीं हो सकती । फिर आधुनिक खड़ीबोली पूर्ववर्ती ब्रजभाषा की तुलना में भले कठोर हो, किन्तु कुशल कवियों के प्रयोग द्वारा उसको तराशा और बनाया जाता रहा है । आगे चलकर छायावादी कवियों ने उसे बहुत कुछ सजग रूप में श्रुति-मधुर और सुकुमार बनाने की जो चेष्टाएँ की, वे अनुपेक्षणीय हैं । निराला ने " गीतिका " की रचना द्वारा यह घोषित कर दिया कि खड़ीबोली में कविता के अनुभव को प्राय: गद्यात रखते हुए संगीत शास्त्रानुमोदित गीतों की सृष्टि हो सकती है । प्रबन्ध और गीत काव्य में ब्रजभाषा से अलग खड़ीबोली के वैशिष्ट्य का, उसकी प्राण -शक्ति का बढ़िया संकेत निराला ने दिया है, जिसमें उनकी अपनी रचनात्मक कोशिश परिलक्षित की जा सकती है :" मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण-संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह ब्रजभाषा में नहीं ।"[१]

युग के स्वर को पहचान कर चलनेवाले कवि को ही जागरूक कहा जा सकता है । अयोध्यासिंह उपाध्याय " हरिऔध " ने " प्रिय प्रवास " की भूमिका में खड़ीबोली के विरोधियों को उत्तर देते हुए सही और समयोचित बात कही- " अब मुझे केवल इतना ही कहना है कि समय का प्रवाह खड़ीबोली के अनुकूल है, इस समय खड़ीबोली में कविता करने से अधिक उपकार की आशा है । अतएव मैंने भी " प्रिय-प्रवास " को खड़ीबोली में ही लिखा है ।[२] यहाँ " भी " में एक प्रकार की विनम्रता है, साथ ही सामूहिकता का स्वर लाने का प्रयत्न है ।

इस तरह द्विवेदी-युग में खड़ीबोली को काव्यभाषा के आधार-रूप में मान्यता मिल गयी । लेकिन जैसा कि पहले कहा गया - द्विवेदी जी की मुख्य कोशिश थी - भाषा के ढाँचे को सुधारना । इसके आगे- और जो वस्तुत: काव्यभाषा का क्षेत्र है शब्दों को धुलनशील बनाने, उनमें नये यथार्थ से जूझने की क्षमता विकसित करने और अर्थ-छायाएँ व्युत्पन्न करने का निर्देश उन्होंने नहीं दिया, वो दिया भी नहीं जा सकता था । यही नहीं, जो रचनाएँ नवोन्मेष की सूचना देनेवाली थीं, उनका वे

---

१)" गीतिका " भूमिका, पृ० १८

स्वागत भी न कर सके, उदाहरणार्थ - हिन्दी कविता में अपना ऐतिहासिक स्थान निर्मित करनेवाली, मुक्त छंद में विरचित निराला की पहली प्रकाशित कविता " जुही की कली " उन्होंने अपने संपादन-काल में " सरस्वती " में प्रकाशित नहीं की, यह कहकर उसे निराला को वापिस कर दिया कि "आपके भाव अच्छे हैं, पर छंद अच्छा नहीं । इस छंद को बदल सकें, तो बदल दीजिए ।" [१]

इस प्रकार वे स्वच्छंद छंद के प्रति उदार दृष्टिकोण न रख सके, छंद-मुक्ति भाव-संवेदन से रचनात्मक स्तर पर जुड़ी हुई है, इसे वे न समझ पाये, अन्यथा " जुही की कली " के लिए यह न कहते कि " भाव अच्छे हैं, पर छंद अच्छा नहीं वस्तुत: द्विवेदी जी का दृष्टिकोण सुधारात्मक अधिक था, कलात्मक बहुत कम अंशों में । उनके इस दृष्टिकोण का व्यावहारिक निदर्शन थे उन्हीं के शिष्य मैथिली शरण गुप्त । खड़ीबोली में अनेक काव्य ग्रन्थों के प्रणयन का आरंभिक साहस उन्होंने किया ।" भारत भारती " और " जयद्रथ - वध " उसी काल की रचनाएँ हैं, जिनमें प्रधानत: इतिवृत्तात्मकता को प्रश्रय मिला है ।

खड़ीबोली में काव्य-सृजन करनेवाले इस काल के अन्य उल्लेखनीय कवियों में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी तथा हरिऔध हैं । श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ यत्र-तत्र पायी जाती हैं, जो छायावादी कविता का पूर्वाभास प्रस्तुत करती हैं । लेकिन कुल मिलाकर कविता में भाषिक सृजन की समस्या से ये कवि नहीं जूझ सके । यह जरूर है कि अपने संवेदन को इन्होंने विस्तार और व्यापकता दी । प्रकृति केवल श्रृंगारिक भावों के उद्दीपक रूप में चित्रित नहीं हुई, उसका उन्मुक्त व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया ; कूल, कछार, यमुना, उपवन, सरिता आदि परंपरित प्रकृति-क्षेत्रों से अलग मनुष्य और प्रकृति का संपृक्त रूप मिट्टी के घर, खपरैल आदि का चित्र अंकित हुआ । अगर कहीं भाषा के स्तर पर गुणात्मक उन्मेष रचने की कोशिश इन कवियों ने की होती, तो ये नवीन संवेदन कलात्मक बन पड़ते , लेकिन यहाँ मिलती है - सीधी-सादी चित्र-योजना । मैथिली शरण गुप्त ने ग्राम्य जीवन को यों देखा है :

---

१) पंत और पल्लव, पृ० ३०

अहा, ग्राम्य जीवन भी क्या है
क्यों न इसे सब का मन चाहे ।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है,
ऐसी सुविधा और कहाँ है ?

छोटे से मिट्टी के घर हैं
लिपे पुते हैं, स्वच्छ सुघर हैं ।
गोपद-चिन्हित आँगन-तट है,
रखे एक ओर जल-घट है ।
खपरैलों पर बेलें छायी ,
फूली-फली, हरी, मनभाई ।

यह मानों ग्राम्य जीवन का चित्र ही नहीं, उस समय की खड़ीबोली का चित्र भी है । रचना- प्रक्रिया की जटिलता-शून्य प्रकृति इस सीधे-सरल भाषा-प्रयोग के माध्यम से समझी जा सकती है । वस्तुत: इस तरह की रचनाएँ खड़ीबोली में काव्य-रचना की कोशिश के आरंभिक उदाहरण हैं, और इनका महत्व इसी रूप में देखा जाना चाहिए । काव्यभाषा में वह रचाव पैदा कर सकना, जिससे संश्लिष्ट अंकन हो, द्विवेदीयुगीन कवियों की क्षमता के बाहर था ।" प्रियप्रवास" की प्रसिद्ध पंक्तियाँ है :

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी -कुल-वल्लभ की प्रभा,

यहाँ संस्कृत के तत्सम शब्दों और भाषा के व्याकरण-सम्मत रूप के बावजूद इतिवृत्तात्मक चित्र है, इससे कोई सघन,भावात्मक प्रतिक्रिया नहीं उद्भूत होती । सूर्य के लिए" प्रयुक्त " कमलिनी-कुल-वल्लभ " किसी भी तरह विशिष्ट अर्थ-सृष्टि नहीं करता ; इतने भारी - भरकम प्रयोग को रखकर उससे कोई सार्थक व्यंजना न उद्भूत की जाए, यह काव्यभाषा के संदर्भ में एक विडंबना ही है । आगे चलकर निराला अपनी कविता" संध्या-सुन्दरी" में संध्या का जो संश्लिष्ट चित्र निर्मित करते

हैं, वह द्विवेदीयुगीन और छायावादी काव्यभाषा के अंतर को अच्छी तरह विवृत करता है । " संध्या- सुन्दरी " में विविध अर्थ-छायाओं और बिंबों के बीच संध्या का एक समूचा रूप विकसित होता है, इससे भी आगे बढ़कर वह मानवीय अनुभव से संपृक्त हो जाती है, कवि का अर्जित किया हुआ एक जीवंत अनुभव बन जाती है और यह स्मरणीय है कि तत्सम शब्दावली प्रधान इस कविता में अभिव्यंजना का मुख्य और केन्द्रीय शब्द-प्रयोग " चुप " है जिसकी विविध आवृत्तियों से संध्याकालीन निस्तब्धता को कवि ने व्यक्त किया है । हरिऔध के द्रुतविलंबितों में संध्या का परंपरित सूचीबद्ध चित्रण है, निराला का मुक्तछंद संध्या के विशिष्ट अनुभव को रूपाकार देता है ।

खड़ीबोली के विकास का दूसरा चरण प्रधानतः सर्जनात्मक है, जिसमें काव्यभाषा के स्तर पर गुणात्मक परिवर्तन और रचाव लाने की कोशिश छायावादी कवियों ने की । निराला ने " जुही की कली " के माध्यम से भाव, भाषा और छंद तीनों की सम्मिलित मुक्ति का आत्मविश्वासपरक उद्घोष किया । द्विवेदीयुगीन अधिकांशतः इतिवृत्तात्मक और गठन में सरल भाषा के स्थान पर छायावादी कवियों ने विविध अर्थ- छायाओं के बीच से काव्यभाषा की सर्जना की । एक बात इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है - खड़ीबोली काव्यभाषा के सर्जनात्मक संचरण के लिए छायावादी कवियों ने तत्सम प्रयोगों को केन्द्र में रखा, इसके मूल में बहुत कुछ तो १६वीं शती का पुनर्जागरणकालीन संस्कृत अभिमुख दृष्टिकोण रहा है । इसके अतिरिक्त खड़ीबोली पर बार-बार लगाए गए कर्कशता के आरोप की प्रतिक्रिया में भी इन कवियों ने जैसे प्रयत्नपूर्वक संस्कृत की परंपरित कोमल-कांत पदावली का सहारा लिया । इस तरह छायावादी काव्यभाषा की सर्जनात्मकता तत्समाधारित रही । प्रचुर मात्रा में संस्कृत की कोशवाची शब्दावली और संस्कृत में अप्रचलित शब्दों को छायावाद ने व्यवहृत किया । इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी काव्यभाषा कुछ कृत्रिम-सी हो गई और बाद में यथार्थ के प्रति सही प्रतिक्रिया करने में वह अक्षम होती गई - अर्थात् शब्द-मोह और शिल्प-मोह में वास्तविकता को उपेक्षित किया गया । लेकिन यहाँ एक बात ध्यान में रखनी होगी । द्विवेदीयुगीन कवियों ने भी संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रयोग किये । कुछ महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कुछ मराठी भाषा की तत्सम बहुलता और कुछ आर्य समाज तथा अन्य शुद्धतावादी-सुधारवादी आंदोलनों के प्रभाव-स्वरूप तथा कुछ अपनी

संस्कृत-निष्ठा के कारण खड़ीबोली को शब्दावली तथा संरचना दोनों स्तरों पर संस्कृत की ओर झुकाया , संस्कृत के छंदों में खड़ीबोली कविता की रचना की । अकेला मैथिलीशरण गुप्त का काव्य संस्कृत शब्दों के प्रति विशेष आकर्षण का अच्छा परिचय देता है । " प्रिय प्रवास " की तत्सम , समासपरक शब्द-योजना तो प्रख्यात है । लेकिन इन तत्सम प्रयोगों में भव्यता नहीं आ पाई है । दूसरी ओर छायावादी कवि-विशेषत: प्रसाद और निराला - हैं, जिनके काव्य में संस्कृत प्रयोग— शब्द नहीं — कवि के विशिष्ट अभिप्रेत में रस-बसकर बहुत प्रभविष्णु बन पड़े हैं । मुख्यत: तत्सम शब्द-प्रयोगों से युक्त 'बादल-राग " में नाद-तत्त्व और ध्वनि-तत्त्व की संपृक्ति अपने में एक प्रीतिकर अनुभव है । " राम की शक्ति-पूजा " का आरंभिक विकट समास -बंध खटकता नहीं, अपराजेय समर " के चित्रण के लिए प्रयुक्त किये जाने के कारण अपूर्व तेजस्विता बनाए रहता है ।

श्री विजयदेव नारायण साही ने छायावादी कवियों के अतिरिक्त तत्सम आकर्षण पर इस तरह टिप्पणी प्रस्तुत की है -

"छायावाद ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग उनके अभिधार्थ या लक्षणार्थ के ही लिए नहीं किया, बल्कि एक अलग प्रभामण्डल के लिए किया, जिसकी शर्त ही यही थी कि वह ठेठ शब्दों से प्रोत में अलग दिखे ।" [१]

अपने श्रेष्ठ अंशों में छायावादी काव्यभाषा तत्समों के आधार पर विकसित होती है, और इस तरह जो " प्रभा मंडल " बनता है, वह पाठक की प्रतिक्रिया को विचलित नहीं करता, वरन् एक भव्य परिवेश की सृष्टि करता है और तत्कालीन आत्म-विश्वासहीन जातीय जीवन के पुनर्निर्माण के लिए तो वह आवश्यक था । यों यह प्रभामण्डल ही बहुत कुछ छायावादी काव्यभाषा की शक्ति का संकेत देता है । द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा में वह प्रभामण्डल विकसित नहीं हो पाया था । तब इस कमी को पौराणिक आख्यानों के प्रकथन से पूरा किया गया । रचना-शक्ति का विकास- कथानक के स्थूल तत्व से आगे वस्तु और काव्यभाषा के धरातल पर हो, यह उचित

---

१) अंग्रेजी का बोझ और हिन्दी कविता की भाषा " शीर्षक लेख -
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी की काव्यभाषा-विषयक परिसंवाद-गोष्ठी में पढ़ा गया था)।

और स्वाभाविक ही है । सुमित्रानन्दन पंत ने खड़ीबोली काव्यभाषा के इस शक्ति-संपन्न रूप का सटीक उद्घाटन किया है : " छायावाद ने भाषा को अकल्पनीय शक्ति प्रदान की । रीढ़ के बल रेंगनेवाली द्विवेदीयुगीन भाषा अभिव्यक्ति की अतुल क्षमता पाकर ऊर्ध्व-रीढ़ होकर जीवन के उच्चतम धरातलों पर भी उन्मुक्त विचरने लगी ।[१]

ब्रजभाषा कविता की मुख्य वृत्ति रही- रसता, तन्मयता । वहाँ उथल-पुथल नहीं है, एकाग्रता है , भाव -विह्वलता है;बौद्धिक तनाव नहीं। इसके विपरीत खड़ीबोली कविता में मन:स्थिति की कशमकश, आधुनिक जीवन का द्वन्द्व और जटिल सौन्दर्य-बोध विवृत होता है । स्वयं छायावादी कवि प्रसाद ने ब्रजभाषा में " प्रेमपथिक " (१९०९ ई०) की रचना कर कुछ समय बाद स्वयं खड़ीबोली में उसका रूपान्तरण किया (१९१४ ई०) , जो इस बात का सूचक है कि कहीं-न-कहीं कवि का संवेदन असंतुष्ट रहा, ब्रजभाषा में वह अपना रचनात्मक उन्मोचन नहीं कर पाया । प्रेमपथिक " के खड़ीबोली संस्करण में प्रणय के प्रति कवि का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत संयमित और गंभीर हो जाता है । ब्रजभाषा संस्करण में कवि ने भावुक प्रणयी को चित्रित किया है, खड़ीबोली संस्करण में वियोग से गहरे धरातल पर मैत्री करनेवाले प्रणयी का । आगे चलकर " आँसू " में कवि ने इस प्रणय-गांभीर्य को और भी निखारा है । कवि पंत ने खड़ीबोली के इस अपेक्षया गंभीर रूप पर किंचित् विनोदपूर्ण ढंग से यों टिप्पणी प्रस्तुत की थी : " हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह "पिय" को " प्रिय " कहने लगी है ।[२]

मुख्यत: तत्सम शब्द-प्रयोगों पर आधारित छायावादी काव्यभाषा में सर्जनात्मक संचरण एक नया और अछूता आयाम तब छूता है,जब निराला और पंत आगे चलकर तत्सम और तद्भव की टकराहट में से गुजरते हुए बोलचाल में रचाव पैदा करते हैं, और इस तरह " सामान्य - साधारण " की भाषा में गहरी अर्थवत्ता की नियोजना होती है । " कुकुरमुत्ता ", " ग्राम्या ", " नये पत्ते " इस मोड़ के प्रतिनिधि उदाहरण हैं । खड़ीबोली पर आधारित

---

१) छायावाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ० १०२

२) " पल्लव " : प्रवेश, पृ० १

काव्यभाषा के इस अपेक्षाकृत स्वायत्त स्तर को और गहराई तथा विस्तार में छूते हैं बाद के प्रयोगवादी और नयी कविता के कवि । रोज़मर्रा की भाषा से यहाँ कविता बनती है और कविता रोज़मर्रा की भाषा में यानी कि सामान्य-साधारण जीवन में घुल-मिल जाती है । भाषा, कविता और जीवन के संघर्षों से होते हुए इस अभेद तक पहुँच सकना किसी भी रचना-पीढ़ी के लिए काम्य हो सकता है । प्रसाद और निराला अपने श्रेष्ठ अंशों में आधुनिक हिंदी काव्यभाषा के संवेदनात्मक विस्तार को - ब्रजभाषा के हल्के सहारे से आरंभ करके ('चित्राधार') बोलचाल की खड़ीबोली के नितांत स्वायत्त रूप ('कुकुरमुत्ता') के विकास तक - पूरे तौर पर प्रतिफलित करते हैं ।

अध्याय - ३

जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा

प्रसाद की काव्यभाषा के अध्ययन-क्रम में दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। एक तो, उसमें विकास अपने रूढ़ अर्थ में मिलता है यानी वे अपनी पहली कविता से, आरंभिक काव्य-सृजन से ही पाठक-वर्ग को आंदोलित करनेवाले क्रांतिकारी रचनाकार नहीं हैं। अपने समानधर्मा कवि निराला के विद्रोही काव्य-व्यक्तित्व के विपरीत प्रसाद की प्रतिभा क्रमश: विकसनशील रही है, एकदम से नवोन्मेष भर देनेवाली नहीं। दूसरे, प्रसाद की काव्यभाषा में एकरूपता अधिक है, विविधता कम (विविधता को उनके संयत, अनुशासित, तल्लीन रचनाकार ने जैसे महत्त्व ही नहीं दिया) और इस संदर्भ में फिर एक बार निराला का विविध-रूप काव्य-व्यक्तित्व उभरता है, जिसके अंतर्गत भाषिक संरचना के कई-कई स्तर एक ही काल में विद्यमान मिलते हैं। लेकिन प्रसाद की काव्यभाषा में एकरूपता की अवस्थिति एकरसता, ऊब और बासीपन की प्रतीति नहीं कराती, वह अर्थ के गहनतम स्तरों का साक्षात्कार कराती है। यह अपने में बड़ी बात है और कवि के शब्द-प्रयोग की घुलनशीलता और उसमें अनुस्यूत रचाव का प्रतिफलन है। प्रसाद की काव्यभाषा इस दृष्टि से एकरस नहीं, समरस है।

प्रसाद की प्रारंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में हुई है। 'प्रेमपथिक' (ब्रजभाषा संस्करण) 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' के प्रथम संस्करण में ब्रजभाषा की कविताएँ हैं। ब्रजभाषा के इस काव्य-सृजन में कुल मिलाकर परंपरागत संवेदना का ही निर्वाह हुआ है। इस भाषा रूप में मध्यकालीन ब्रजभाषा की भंगिमा और तराश का लगभग अभाव समझना चाहिये। समूचे रूप में ये कविताएँ किसी खास समृद्धि का बोध नहीं कराती और पुराने ढंग की कविता की तुलना में कोई गुणात्मक अंतर उद्भूत करने की क्षमता भी इनमें नहीं है। कहीं-कहीं नये विषयों का चुनाव ज़रूर है।

'गीतिनाट्य' करुणालय " (सर्वप्रथम प्रसाद के पत्र " इन्दु " में १९१३ ई० में प्रकाशित) , 'महाराणा का महत्त्व' (सर्वप्रथम " इन्दु " में ही १९१४ ई० में प्रकाशित), 'प्रेमपथिक' (खड़ीबोली में रूपांतरित संस्करण) और 'काननकुसुम' (संशोधित संस्करण में केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं) के माध्यम से प्रसाद की खड़ीबोली की आरंभिक काव्य-रचना सामने आती है, लेकिन " प्रेमपथिक " के एकाध अंश और " काननकुसुम " की एक-दो कविताओं को छोड़कर इनमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है । इस तरह से प्रसाद की प्रारंभिक काव्यभाषा को अगर उनकी परवर्ती काव्यभाषा से मिलाया जाए, तो उसमें भरपूर (सामान्य से अधिक) गुणात्मक अंतर दिखाई पड़ेगा । प्रारंभिक काव्य-सृजन की इन खामियों के बावजूद उनमें यत्र-तत्र छिटपुट और सूक्ष्म निखार के अनेक संकेत मिल जाते हैं । 'प्रेमपथिक' के ब्रजभाषा संस्करण का यह अंश रखा जा रहा है - " यह वह श्रमशाला है रहे जो सून,
सून रहे पै कलरव नित प्रति दून ।

यहाँ प्रेम को मौलिक-आत्मीय ढंग से कवि ने देखा है, समझा -समझाया है । प्रेम की इस सूक्ष्म परिभाषा में निहित मनोवैज्ञानिकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता । इसी क्रम में चित्राधार की यह पंक्ति रखी जा सकती है -

प्रथम भाषण ज्यों अधरान में ।
रहत है तऊ गूँजत प्रान में ।। (" नीरव प्रेम ")

नीरव प्रेम के अंकन में अनुस्यूत सुकुमार मार्मिकता की यह आस्वादन - प्रक्रिया परंपरित ढंग से अलग है ।

" प्रेमपथिक " का ब्रजभाषा से खड़ीबोली हिंदी में रूपान्तरण कवि प्रसाद के अन्वेषी, विकासमान व्यक्तित्व का सूचक है । खड़ीबोली संस्करण की एक पंक्ति द्रष्टव्य है -

" सच्चा मित्र कहाँ मिलता है दुखी हृदय की छाया-सा "

यहाँ " दुखी हृदय की छाया-सा " के उपमान में निहित सूक्ष्मता-अमूर्तता ही पहली नज़र में उल्लेखनीय लगेगी , इस सूक्ष्मता-अमूर्तता को

द्रवणशील बनानेवाली एक विशिष्ट तरह की गहरी आत्मीयता अधिक गौर करने के बाद पकड़ में आएगी - ' दुखी हृदय की छाया-सा ' ।

' चित्राधार ' के पद्य-खण्ड में कुछ कविताएँ ऐसी हैं, जिनके शीर्षक नये ढंग के हैं (' नीरव प्रेम ', ' विस्मृत प्रेम ', ' मकरन्द बिन्दु ') । यह नवीनता कविता के सूक्ष्म स्तरों के प्रति कवि की जिज्ञासा को प्रकाशित करती है, यद्यपि इनका नयापन, इनकी सूक्ष्मता कुल मिलाकर इनके शीर्षकों में ही है, रचना-प्रक्रिया में नहीं । इसीलिए शीर्षक और रचना-प्रक्रिया के बीच एक अजीब-सा घालमेल दिखाई देता है ।

खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में प्रसाद की विविध कविताओं का पहला संकलन ' काननकुसुम ' (दूसरे संस्करण में केवल खड़ीबोली की कविताएँ हैं) के रूप में है, जिसकी एक कविता (' प्रथम प्रभात ') वास्तविक रचनात्मक नवोन्मेष का संकेत देती है । रीतिकालीन श्लिष्ट शब्दावलीपरक कविता के विपरीत यहाँ एक ही अर्थ के तीन स्तरों के संश्लेषण से काव्यभाषा में रचाव लाने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की गई है । इस कविता से दो तरह की प्रतिक्रियाएँ एक साथ उद्भूत होती हैं । पहली रचनात्मक आकुलता की ; प्रणय, अध्यात्म और प्रकृति - तीनों को संपृक्त अनुभव बनाने की चेष्टा । (यह उल्लेखनीय है कि कवि की इस कोशिश में पूरा रचाव आगामी संकलन 'झरना' की ' विषाद ' कविता में आया है।) दूसरी ' प्रथम प्रभात ' में भाषा की सपाटता और कुछ - कुछ द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की भावुक सरलता की - और यही वजह है कि वह द्वन्द्वात्मकता कम है, जिससे अर्थ रचना में गहराई से परिव्याप्त होता है । छायावादी सूक्ष्म अभिव्यक्ति-प्रणाली को पूर्वाभाषित करनेवाला यह अंश देखा जा सकता है -

अहा, अचानक किस मलयानिल ने तभी,
फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ ।
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया मुझे,
खुली आँख आनंद-दृश्य दिखला दिया ।

' मलयानिल ' अपने सूक्ष्म-अमूर्त रूप में अर्थ के उन्मुक्त स्तर पर संक्रमित होकर सारी मनःस्थिति को ताज़ी ऊर्जा से भर देता है ।

" झरना " के पहले संस्करण (१९१८ ई०) की कविताओं में " काननकुसुम " की कविताओं (" प्रथम प्रभात " के अपवाद-सहित) के समान परंपरा-पोषण है, रचनात्मक तत्परता नहीं ।" झरना " के दूसरे संस्करण (१९२७ ई०) में आधी से अधिक अर्थात् ३३ कविताएँ रखी गई हैं, जिनमें नवीन अभिव्यंजना, रचनात्मक अन्वेषण का स्पष्ट परिचय मिल जाता है ।" झरना " की परंपरित कविताओं में प्रेमपात्र के प्रति उपालंभपरक कई एक कविताएँ हैं, इसी तरह किन्हीं में संयोग-चित्र है ।" प्रियतम "," निवेदन "," प्यास "," प्रत्याशा ", " स्वप्नलोक ", इस क्रम में रखी जा सकती है । इन कविताओं की तुलना आर प्रसाद की परवर्ती रचनाओं (जिनमें शरीर-सुख के अनेक चित्र हैं) से की जाए, तो इस संभावित आपत्ति के बावजूद कि दोनों ओर की कविताओं में बहुत असमानता है, अत: यह तुलना असंगत है," कविता की रचना-प्रक्रिया में काव्यभाषा के केन्द्रीय स्थान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रसाद के विविध मांसल प्रणय-चित्रों पर नजर डालते हुए थोड़ी चुटकी लेकर यह बात कही है कि प्रसाद जी का ध्यान शरीर-विकारों पर विशेष जमता था ।[१] उन्होंने प्रसाद काव्य में भरपूर शरीर- सुख के चित्रों के लिए " मधुचर्या " नाम देकर उनके प्रति अपने सौन्दर्यग्राही एवं अनुशासित दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।[२] यहाँ काव्यभाषा के विश्लेषण-प्रसंग में इतना कहना जरूरी हो जाता है कि प्रसाद के परवर्ती गीतों में मधुचर्या का अंकन भाषा के स्तर पर इतना कलात्मक बन सका है कि वह पूरी प्रक्रिया गहरे, रचनात्मक अनुभव में परिणत हो जाती है या यों कहें कि मधुचर्या की वह स्थिति अनुभावन-क्षमता को बढ़ाती है ।" लहर " के अनेक गीत " बीती विभावरी जाग री " ," आह रे, वह अधीर यौवन ", " कोमल कुसुमों की मधुर रात " इस क्रम में रखे जा सकते हैं , जबकि " झरना " के गीतों में अंकित प्रणय अनुभव में रूपांतरित होता ही नहीं, उसमें एक तरह का हल्कापन है ।" प्यास कविता से एक उदाहरण रखा जाता है -

---

१) हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५६०

२) वही, पृ० ५६२ ।

राग रंजित थी वह पैया
    उसे पीते पीते रुक गये ।
प्रश्न मेरा यह उनसे था,
    पूछने से वे प्रमुदित हुए ।।
नशीली आँखों सदृश कहो
    तुम्हारी ही, इसमें है नशा ।
गुलाबी हल्का-सा बोले,
    स्तब्ध हो रही मोह की निशा ।।

' झरना ' की एक अति सामान्य कविता ' कहो ' की पहली पंक्ति का विशिष्ट प्रयोग छायावादी सूक्ष्म कल्पना के निकट प्रतीत होता है । शरीर-साहचर्य के बिंब का अपने ढंग से यह उपयोग प्रसाद की आरंभिक रचनाशील मन:स्थिति में छिपी उन्मेषपरक बेचैनी का संकेत देता है -

शिथिल शयन सम्भोग दलित कबरी के कुसुम-सदृश बेरी,
प्रतिमद व्याकुल आज छन्द क्यों होते हैं प्रियतम । ऐसे ?

अपनी रचना-प्रक्रिया में परिपक्व कुछ कविताएँ (' झरना ' में संगृहीत) प्रसाद के कवि- व्यक्तित्व के एक विशिष्ट पक्ष-दिशा-संधान, अनिर्दिष्ट बेचैनी - को छूने की कोशिश करती है । पहली कविता' झरना ' की संवेदना सामान्य से थोड़ी अलग हटकर है, जिसे विशिष्ट-मौलिक रूप में उपलब्ध करने के लिए तत्पर काव्यभाषा यों प्रकाशित करती है -

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी ।।
            मनोहर झरना,
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना ।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी ।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।।

इस तरह प्रसाद की काव्यभाषा प्राकृतिक झरना, मानवीय प्रेम और छिपी हुई गहरी बात को एक श्रेणी में रखने की कोशिश करती है ।

' अव्यवस्थित ' अपेक्षाकृत नये ढंग की कविता है, जिसमें अस्पष्ट मानस की न समझ में आ सकनेवाली - पकड़ से बाहर स्थिति - को कविता के स्तर पर उसी अस्पष्टता - सूक्ष्मता के साथ रखने की कोशिश की गई है । प्रारंभिक अंश इस प्रकार है ;

विश्व के नीरव निर्जन में ।
जब करता हूँ बेकल चंचल,
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त,
भटकता है भ्रम के वन में,
विश्व के कुसुमित कानन में ।

' अव्यवस्थित ' में व्यक्तित्व - प्रक्षेपण - अपनी जटिलता के साथ - संभव हो सका है । कवि पूरी ईमानदारी से अपने आपको - या फिर मानस-मात्र को - टटोलता है :

जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार
तभी कामना के नूपुर की
हो जाती झनकार ;
चमत्कृत होता हूँ मन में
विश्व के नीरव निर्जन में ।

सांसारिक आकर्षण की प्रबलता-अथवा इस तरह कहें मन की पराजित स्थिति - को कवि नये ढंग के बिंब में रूपायित करता है । पुराने ढंग के अलंकार - विधान में ब्यौरे की प्रधानता रहती थी, किन्तु बिंब में एक नूपुर की झनकार-मात्र के उल्लेख से नर्तकी का पूरा रूप प्रत्यक्ष हो जाता है । चूँकि प्रसंग

कामना का है (तभी 'कामना के नूपुर की हो जाती झनकार '), अत: यह बिंब केवल चाक्षुषप्रतिमा-मात्र न निर्मित कर नृत्य और नर्तकी के समूचे आकर्षण, प्रलोभन और विलासिता को एकरूप तथा सघन कर देता है ।

मानसिक स्थिति को छूने और बहुत सुकुमार ढंग से संबंध बनाने की चेष्टा में ' विषाद ' कविता अपने ढंग की अकेली है, जिसमें अव्यवस्थित ' से कहीं अधिक जटिल अनुभव और कलात्मकता है ।' काननकुसुम ' की ' प्रथम प्रभात ' (जो ' झरना ' में भी संगृहीत है) कविता में पहली बार अर्थ की कई छायाओं को एक साथ विकसित करने की महत्त्वाकांक्षी कोशिश हुई थी, इस दिशा में ' विषाद की काव्यभाषा अभूतपूर्व द्रवणशीलता और उन्मुक्तता को क़ायम रखती है । भारतीय काव्यशास्त्र की प्रमुख उपपत्ति ध्वनि-सिद्धांत और पश्चिम में एलियट का 'आब्जेक्टिव कोरिलेटिव ' इस तरह की अनेक अर्थ-स्तरीय कविता के विश्लेषण में अपूर्ण ही कहा जाएगा । न तो ध्वनिकार के सिद्धान्तानुसार इसमें एक अर्थ प्रधान है, दूसरा गौण - यानी यहाँ मुख्यार्थ जैसे तत्त्व की अनुपस्थिति है, या यों कहें, उसकी एकान्तिक वर्जना है (और यही विशिष्टता इस कविता को अधिक अर्थगर्भित बनाती है)। और एलियट के ढंग पर तो आंतरिक विषाद और बाह्य संध्या-छाया अलग-अलग तत्त्व हैं । लेकिन वस्तुस्थिति तो कुछ और है, जो पूरी कविता की संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया को, उसी संश्लिष्टता से समझने में उजागर होगी । और, यह प्रसाद की, अधिक व्यापक रूप में छायावादी कवियों की (अपने श्रेष्ठ अंशों में) मौलिक विशिष्टता है कि वे अपनी अर्थगर्भित नवीनता के कारण समीक्षा के परंपरित मानदण्ड का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए बाध्य करते हैं, और एक नयी संपृक्त समीक्षा दृष्टि को उत्पन्न देते हैं । समीक्षा-मान और रचना की यह टकराहट अपने में सर्जनात्मक है ।

न तो ऐसी कविता के विषय में चलते ढंग पर यही कहा जा सकता है कि वह विशिष्ट मन:स्थिति की कविता है और न यही कि उसमें संध्याकालीन प्रकृति का अंकन है । दोनों स्थितियाँ मानसिक और बाह्य एक दूसरे में घुल-मिलकर एक दूसरे के अनुभव को विकसित करती है । कौन प्रधान है, कौन अप्रधान-

यह प्रश्न व्यर्थ हो जाता है । संध्याकालीन निस्तब्धता, उदासी और वर्णहीनता में रसे- बसे विषाद का अंकन शुरू-शुरू में तो मानवीकरण के ढंग का लगता है, जिसमें गोधूली के मलिनांचल में वन में बैठे हुए जांगली का चित्रण है, प्रत्यंचा, नीरव वंशी, इत्यादि का अंकन है, और इस तरह यह रेखाचित्र जैसा लगता है, लेकिन वस्तुत: इसके मूल में मन के उलझाव को, भाव-संवेग को पहचानने की उससे तादात्म्य करने की छटपटाहट है । बाहरी जगत् संध्याकालीन दृश्य चाक्षुष संवेदन नहीं निर्मित करता, वह इससे कहीं अधिक गहरी, रचनात्मकता का उपक्रम है । वह कवि को अपनी ज़मीन पर पहुँचने, अपनी सृजन की जटिलता को झेलने के लिए बढ़ावा देता है । प्रकृति बिंब और मानसिक बिंब का यह अद्वैत गहरे स्तर पर सराहनीय है । यह अंश द्रष्टव्य है :

निर्झर कौन बहुत बल खाकर,
　　बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में,
　　अपने ही चरणों में गिरता ।।

एक नज़र में ऐसा लगेगा कि कवि प्रकृति पर निर्झर पर अपनी अनुभूति का प्रक्षेपण कर उससे तटस्थ होने की चेष्टा कर रहा है। लेकिन प्रसाद की कला इतने सीधे प्रकाशन की कला नहीं है, उसमें अपने कवि-कर्म से इतनी आसानी से निस्तार नहीं है । वस्तुस्थिति यह है कि जीवन-स्थिति को जानने-समझने की व्यग्रता मानवीय प्रयास की अपूर्णता से उद्भूत बेचैनी और इसके बावजूद उसकी जिजीविषा तथा अन्वेषणा - प्रकृति को उरेहने की साहसिक प्रवृत्ति प्रसाद की असली चिन्ता है, समस्या है । इस स्थापना के परिप्रेक्ष्य में एक बार पुन: ये पंक्तियाँ पढ़ी जा सकती हैं

निर्झर कौन बहुत बल खाकर
　　बिलखाता ठुकराता फिरता ?
खोज रहा है स्थान धरा में,
　　अपने ही चरणों में गिरता ।।

और यही वजह है, जो इस तरह की पंक्तियाँ, जिनमें पंत की कविता की-सी शिल्पकारिता नहीं है, और साथ ही निराला के गीतों का-सा

तीव्र-प्रखर वेग नहीं है, अपनी भव्य-उदात्त सादगी में, बहुत गहरा असर डालती हैं। प्रसाद की ही कविता की शब्दावली में कहा जाए, तो ये पंक्तियाँ मन के कोने को नहला देती हैं (" आँसू " की पंक्तियाँ हैं - " उद्वेलित तरल तरंगें / मन की न लौट जावेंगी । हाँ, उस अनंत कोने को । वे सचमुच नहला देंगी ।")

छायावादी काव्यभाषा अपने गहरे- आत्मीय रूप में बहुत कोमल पदों को छूती है, यह " विषाद " कविता के अंतिम अंश में देखा जा सकता है -

किसी हृदय का यह विषाद है
  छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
  करुणा का विश्रान्त चरण है ।।

इसी स्तर पर आकर पूरी कविता का विषाद एक खास ढंग की अनुभूति में, जीवन के प्रति कवि की एक विशिष्ट दृष्टि में बदल जाता है, जैसे " आँसू " में वेदना या आँसू उपलब्धि बन जाती है।

झरना में संकलित " वसंत " प्रसाद की विशिष्ट कविता है, जिसमें वसंत के माध्यम से कवि जीवन के यथार्थ को समझने की कोशिश करता है। यहाँ भी रीतिकालीन श्लिष्ट काव्य से अलग हटकर नये और निश्चय ही अधिक रचनात्मक ढंग से व्यंगर्भिता विकसित की गई है। प्रारंभिक अंश इस प्रकार है :

तू आता है, फिर जाता है ।
जीवन में पुलकित प्रणय-सदृश,
यौवन की पहली कान्ति अकृश,
जैसी हो, वह तू पाता है, हे वसंत क्यों तू आता है ?

इन सूक्ष्म, सुकुमार और अमूर्त बिंबों में कवि वसंत के - उल्लास, श्री के - आगमन और प्रत्यावर्तन के अनुभव को अनुस्यूत कर देता है। आकर्षण, प्रसन्नता, कोमलता और अस्थायित्व की सम्मिश्रित छायाएँ उद्भूत होती हैं। निराला ने वसंत के माध्यम से अपनी रचनात्मक क्षमता अनेक गीतों में विकसित की है, लेकिन

" झरना " की इस कविता में तो प्रसाद की विशिष्ट मनोवृत्ति के फलस्वरूप, उनकी बौद्धिक प्रतिभा के कारण वसंत के माध्यम से जीवन के प्रति गहरी जिज्ञासा मुखरित हुई है, अन्वेषक की बेचैनी विवृत्त हुई है । वसंत कवि को विचारोत्तेजना देता है, सार्वभौम यथार्थ को समझने-समझाने की प्रेरणा देता है ।

" झरना " के अंतर्गत प्रसाद की विशिष्ट कविताओं में " किरण " सम्मिलित की जा सकती है, और इसमें संदेह नहीं कि यह कविता छायावाद की कई विशेषताओं - चित्रात्मकता, नूतन कल्पना, लाक्षणिकता, रहस्य-भावना - का संवहन करती है, लेकिन इसमें प्रसाद अपनी ज़मीन पर नहीं है, उनकी द्वन्द्वात्मकता, उलझन इसमें मुखरित नहीं हुई है । वास्तव में इस तरह की कविता छायावाद के दूसरे प्रमुख कवि पंत के मिज़ाज के अधिक अनुकूल है । फिर भी, उल्लेखनीय यह है कि अपनी ख़ास ज़मीन न होने के बावजूद, प्रसाद ने इस कविता में अनूठी कल्पनाशीलता और विराट् दृष्टि का परिचय दिया है, ठीक उसी तरह, जैसे " यमुना के प्रति कविता " की रचना में निराला अपने धरातल से अलग होकर भी रचना-प्रक्रिया में सफल हो सके हैं ।" किरण " के माध्यम से प्रसाद ने अद्वैत भाव और प्रेम-तत्त्व की व्यापकता की ओर संकेत किया है । यह सूक्ष्म -अमूर्त बिंब छायावादी काव्यभाषा के निर्माण और विकास काल में विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है -

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश
    मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल
    वेदना-दूती सी तुम कौन ?

प्रार्थना के बिंब में किरण की रूपगत स्थिति को बहुत कुशलता से अंकित किया गया है । इसी तरह विराट् कल्पना - यद्यपि जिसमें जटिलता की गुंजाइश नहीं है - की नियोजना इस अंश में हुई है -

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
    मिलाती हो उससे भूलोक

जोड़ती हो वैसा संबंध,
बना दोगी क्या विरज विशोक ?

आँसू ' से वास्तविक रूप में कवि अपनी रचना-भूमि में पहुँचता है । ' आँसू ' का पहला संस्करण १९२५ ई० में प्रकाशित हुआ । दूसरे संस्करण का १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसमें छंदों की संख्या भी बढ़ गई और पूर्ववर्ती संस्करण में निहित निराशा की भावना का स्थान एक विशिष्ट तरह के आत्म-विश्वास ने ले लिया ।' आँसू ' अपने सामान्य रूप में एक प्रेमकथा है, जिसमें स्मृतियों के माध्यम से सुखद अतीत की झाँकी है और फिर वियोग-वेदना का अंकन है । इस सामान्य प्रेमकथा को विशिष्टता और गरिमामयी अर्थगर्भिता प्रदान करती है - उसकी सृजनात्मक काव्यभाषा, जो मूलत: बिंबपरक है । इन सूक्ष्म-अमूर्त बिंबों के प्रयोग से कवि ने अर्थ और अनुभव की संपृक्ति एवं उन्मुक्तता रखने की भरपूर संभावना विकसित की है । इसी बिन्दु पर याद आता है अज्ञेय का प्रसिद्ध उपन्यास - ' नदी के द्वीप,' जो अपने सामान्य रूप में एक प्रेमकथा ही रह जाता, अगर उसकी अर्थ-प्रवण ,रचनात्मक भाषा उसमें गहरी ऊर्जा न भरती ।

' आँसू ' बहुत कुछ प्रसाद की उस स्थापना का व्यावहारिक निदर्शन है, जो छायावाद-विषयक अपने विवेचन में उन्होंने रखी है - ' आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद-योजना असफल रही । × हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी । शब्द-विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया ।' [१]

प्राय: चलते ढंग से यह कह दिया जाता रहा है कि ' आँसू में कवि के व्यक्तित्व का मार्मिक प्रकाशन हुआ है । लेकिन अगर इतना ही भर है, तब तो कोई बड़ी बात नहीं हुई । वस्तुत:' आँसू ' की काव्यभाषा में अनुस्यूत अपूर्व

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२२ ।

घुलनशीलता, अमूर्त ढंग के बिंब और फिर उनका भी सूक्ष्मीकरण अपने में किसी महत्त्वाकांक्षी - गंभीर प्रयोजन से प्रतिश्रुत प्रतीत होते हैं। व्यक्तित्व का प्रकाशन और वह भी सीधे ढंग से - प्रसाद की जटिल मानसिकता को काम्य नहीं। प्रसाद की कविता में तो कुछ दूसरी, अधिक सघन जिज्ञासा है, अन्तर्मन की कसमसाहट है, जिसे पहली बार में नहीं पहचाना जा सकता :

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती-सी
पगली-सी देती फेरी ?

यह महज व्यक्तित्व-प्रकाशन से ऊपर की स्थिति है, और यही ऊँचाई नजरअंदाज कर देने पर इन पंक्तियों में जो कविता बनती है, वह पकड़ में नहीं आ सकती। वैसे तो हर ऊँचे दर्जे की कविता, या अधिक स्पष्ट कहें तो हर अस्तित्व की जटिलता, मन:स्थितियों की अनिश्चितता और भाव-संवेदन की कशमकश को टटोलनेवाली कविता की पकड़ शाब्दिक व्याख्या की सरलीकृत पद्धति से नहीं की जा सकती, किन्तु प्रसाद की कविता के विषय में यह बात सब से ज्यादा सच है। हिन्दी कविता के इतिहास में वे इस कोटि के पहले कवि हैं और झरना की ' विषाद ' कविता के बाद ' आँसू ' उनका पहला काव्य है, जिसमें यह वैशिष्ट्य काफी दूर तक समाया हुआ है। और, यह प्रसाद की काव्यभाषा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि उसने विविध प्रांतों को उन्मुक्त न करने के बावजूद खड़ीबोली हिन्दी को इतना सक्षम बना दिया कि वह पूरे आत्म-विश्वास से अवचेतना का अवचेतना से संवाद प्रस्तुत कर सके।

एक अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट प्रतीत होनेवाले-यानी व्यक्तित्व को खोलनेवाले - अंश की परीक्षा की जा सकती है :

छलना थी, तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था।

यहाँ सामान्यत: यही अर्थ समझ में आता है कि कवि अपने प्रेमास्पद के प्रवंचनामय आकर्षण को, उसके प्रति अपनी एकांतिक निष्ठा को अभिव्यक्ति दे रहा है, किन्तु बात कुछ गहरी है - " उस माया की छाया में / कुछ सच्चा स्वयं बना था । " यह सच्चा बनने की घोषणा - एक तरह से बड़ी ईमानदारी और सीधे ढंग की निर्दोषता के साथ अपने शुद्धीकरण की स्वीकृति - उस माया की छाया के सूक्ष्म-अमूर्त परिप्रेक्ष्य में अभूतपूर्व निश्छलता से परिपूर्ण हो जाती है । " माया की छाया " में दुहरी बिंब-योजना द्रष्टव्य है ।" माया " में निहित आकर्षण, प्रलोभन, प्रवंचना, क्षणिकता को और अधिक सूक्ष्मता " छाया " के आरोपण ने दे दी है । इतनी गहरी स्थिति में पहुँचकर कवि " सच्चा " बना है । तभी तो वह कहता है - " कुछ सच्चा स्वयं बना था । " कुछ ही, पूरी तौर से नहीं, क्योंकि " माया की छाया " में यह प्रक्रिया - सच्चा बनने की - फलीभूत होती है । निराला की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं - गहरे गया तुम्हें तब पाया

रहीं अन्यथा कायिक छाया
सत्य मास की केवल माया
मेरे श्रवण-वचन की हो तुम (" अर्चना ")

और निम्न अंश में तो प्रसाद जी बेहद तटस्थ जिज्ञासा और बौद्धिक बेचैनी के साथ अपने अन्तर्मन को जानने-समझने की, उसके तल में पहुँचने की कोशिश करते हैं :

यह पारावार तरल हो
फेनिल हो गरल उगलता
मथ डाला किस तृष्णा से
तल में बड़वानल जलता ।

इस तरह " आँसू " में आकर कवि का अपना विशिष्ट स्वर बन जाता है । यहाँ उसकी काव्यभाषा में जीवन-जगत् के प्रति मौलिक बौद्धिक प्रतिक्रिया कर सकने की क्षमता है, जो " कामायनी " में पहुँचकर चरम हो जाती है । " आँसू " के दो छंद इस प्रसंग में रखे जा रहे हैं -

मत कहो कि यही सफलता
कलियों के लघु जीवन की
मकरन्द भरी खिल जायें
तोड़ी जायें बेमन की ।

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों पर बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या
चुपचाप चू पड़े जीते !

नश्वरता की स्थिति के अंकन के लिए फूल का बिंब अपने में नया नहीं है । कबीर भी कह चुके हैं :

माली आवत देखि कै, कलियाँ करें पुकार ।
फूली-फूली चुनि गई, कालिह हमारी बार ।

लेकिन इस दूरगामी परंपरा के बावजूद प्रसाद की कलियों के लघु जीवन में ऐसा कुछ अभूतपूर्व वैशिष्ट्य है, जो इस सारे अंकन को नये तरीके की ऊर्जा और प्रत्यग्रता से भर देता है । प्रसाद का कवि मकरंद-भरी, खिली हुई कली के तोड़े जाने पर मूक समझौता नहीं करता, वह उनके अधूरेपन पर, और इस तरह मानव-जीवन की बेबसी पर, नियति की निर्ममता पर कठोर दृष्टिपात करता है, उसके साथ संघर्ष करता है, क्योंकि ये मकरंद भरी कलियाँ बेमन की तोड़ी गई हैं । इस छंद की समूची रचनात्मकता का केन्द्र है - " बेमन की " प्रयोग । मृत्यु जीवन की निष्पत्ति के रूप में आए, तो कवि को कोई एतराज़ नहीं, लेकिन वह अपूर्णता का प्रतीक बनकर आती है, तो करुणा है ।

और निम्नलिखित छंद में तो बहुत रचनात्मक सघनता के साथ दुहरी जीवन-स्थितियों, मानव-जीवन की अद्भुत विडम्बना को अनेक अर्थस्तरीय काव्यभाषा यों सामने रखती है :

जब शांत मिलन संध्या को
हम हेम-जाल पहनाते
काली चादर के स्तर का
खुलना न देखने पाते ।

यहाँ अर्थ के दो स्तर - संध्या के बाद गहराती हुई रात की काली चादर का एक-ब-एक अज्ञात ढंग से खुल पड़ना और मानवीय नियति की अपरिहार्यता - एक दूसरे में रस-बसकर संश्लिष्ट अनुभव का रूप प्रस्तुत करते हैं ।

मधुचर्या की पूरी प्रक्रिया का अनुभव के स्तर पर सूक्ष्म संवेदनशीलता के साथ अंकन " आँसू " की काव्यभाषा की एक विशिष्ट उपलब्धि है । संयोग-सुख के उत्सवोल्लास को वह नये संदर्भ में रखती है :

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरन्द -भार से दबकर
श्रवणों में स्वर जा बसते ।

इस तरह के सूक्ष्म- संश्लिष्ट अंकन में ध्वनि और गंध को घुला-मिला दिया गया है । मुखरित होती मुरली की आकर्षणमयी संगीतात्मकता, विहँसते मुकुलों की सुकुमार प्रत्यग्रता और उनके समूचे मकरंद-वैभव की मादक सुगन्धि - सब मिलकर (अलग-अलग नहीं) संयोग कालीन परिवेश को अपने में जीवन्त अनुभव बना देते हैं और इसीलिए अपनी उद्दाम आवेगात्मकता में इस छंद के बाद का यह ~~कोमल~~ अंकन शरीर अनुभव की गहरे स्तरों पर सृष्टि करता है :

परिरम्भ -कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके ।

शरीर-सुख की सब से सुकुमार और अपने में भरी-पूरी स्थिति का पूरी सुरुचि और सावधानी के साथ यह अंकन भाषा- प्रयोग की सही रचनात्मकता

का द्योतक है, जिसमें अश्लीलता का संदर्भ ही नहीं उठता ।

इसी तरह प्रेमास्पद से वियोग की मार्मिक स्थिति को कवि परंपरित, सीधे ढंग से नहीं अंकित करता, उसके लिए एक संश्लिष्ट वातावरण का निर्माण करता है । प्रकृति कवि के लिए ' कौतूहल ' जिज्ञासा या विलास की वस्तु नहीं है, वह उसके कोमल अनुभव-संश्लेष का सही संप्रेषण संभव बनाने में उन्मुक्त - सुकुमार, मधुचर्यापरक बिंब की ओर संकेत करती है :

मधुमालतियाँ सोती हैं
कोमल उपधान सहारे
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर
गिनता अम्बर के तारे ।

संयोग-काल की एकान्तिक खुमारी और निविड़ सुकुमारता तथा वियोग की बेचैनी इस पूरे प्राकृतिक - या यों कहें मानवीय जीवन से संपृक्त - बिंब में समाहित हो गई है । अन्तिम दो पंक्तियाँ बहुत उल्लेखनीय नहीं है, किन्तु ' मधुमालतियाँ ' सोती हैं / कोमल उपधान सहारे ' के विपरीत भाव में उनका सौन्दर्य निखर उठता है ।

' आँसू ' की काव्यभाषा की एक इन रूप उन अंशों में देखा जा सकता है, जहाँ गहरे अर्थों में रचनात्मक कवि के लिए अशोभनीय ' रूढ़ि का विधान है । यह कई स्थितियों में द्रष्टव्य है - कहीं तो अपनी वेदना-व्यथा के चमत्कारिक अंकन में :

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुलकर बह रह जाते
आँसू करुणा के कण से ।

एक तो शब्दावली की यह साज-सँवार ही प्रसाद की अत्यन्त संवेदनशील, बौद्धिक मनोवृत्ति से मेल नहीं खाती । दूसरे यहाँ व्यथा कम है, व्यथाभास अधिक है । इसी लिए, इसके ठीक आगे का छंद अपनी शालीन तटस्थता में गलदश्रु

भावुकता से मुक्त स्थिति के अंकन को और भी स्पृहणीय बनाता है :

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा?
वह एक अबोध अकिंचन
बेसुध चैतन्य हमारा ।

यहाँ है प्रसाद की कविता-अनुभूति में स्वतन्पूर्ण; किसी तरह की सजावट से एकदम निर्लिप्त ।

प्रेमास्पद के रूप-अंकन में चामत्कारिक ढंग की यह उपमान-योजना रखी गई है :

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?

अगर इस रूढ़िगत उपमान-योजना के बचाव-पक्ष में यह कहा जाए कि इसके माध्यम से कवि सौन्दर्य और निष्ठुरता की एक साथ अवस्थिति के अंकन में सफल हुआ है, तो भी बात बहुत जमती नहीं है । निष्ठुर सौन्दर्य अपने में विशिष्ट है और उसके रूपायन के लिए सादृश्य या आकारगत प्रतिमा-मात्र का निर्माण काफ़ी नहीं है । यहाँ विधु ('मुख') के प्रसंग में मणिवाले फणियों की नियोजना से कोई द्वन्द्वात्मक स्थिति, उत्तेजक प्रतिक्रिया नहीं उद्भूत होती । यही वस्तु-संवेदन - निष्ठुर सौन्दर्य - नए ढंग के, सूक्ष्म -संश्लिष्ट बिंब में एक अद्वितीय रूप धारण कर लेता है :

चंचला स्नान कर आवे
चाँदनी पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।

यहाँ दो सूक्ष्म-अमूर्त बिंबों को एक दूसरे पर इस तरह से आरोपित कर दिया गया है कि वे परस्पर मिलकर एक जटिल रूप धारण कर लेते हैं

और सूक्ष्म अनुभव -संश्लेष को संप्रेषित करने में सक्षम होते हैं । एक ओर चंचला (बिजली कहने से वे छायाएँ विकसित न होती) का उद्दाम वेग , आकर्षण, चमक और विशेष उल्लेखनीय ; चंचलता- क्षणिकता है, दूसरी ओर चाँदनी की शीतलता, उज्ज्वलता और मनोहारिता है,जिसमें पर्व की उपस्थिति ('चाँदनी पर्व') उल्लास और पवित्रता का योग कर देती है । इन सब अर्थ-छायाओं से विकसित प्रेमास्पद की रूप-छवि तथा भाव-छवि अधिक संश्लिष्ट, जटिल एवं गत्यात्मक हो जाती है ।

'लहर' (१९३३ ई०) संकलन की कविताओं में काव्यभाषा अपेक्षाकृत अधिक अर्थगर्भित ,सारवान् और अपनी संरचना में जटिल-सूक्ष्म हो गई है । कवि अनुभव के सूक्ष्म रूप को अपनी समर्थ बिंब-योजना के बल पर और भी सूक्ष्म-कोमल बनाकर प्रस्तुत करता है।पहली कविता 'लहर' का यह अंकन द्रष्टव्य है :

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर ।
करुणा की नव अँगराई-सी
मलयानिल की परछाईं-सी
इस सूखे तट पर छिटक छहर ।

'करुणा की नव अँगराई' और 'मलयानिल की परछाईं' जैसे बिलकुल नये ढंग के सूक्ष्म -अमूर्त बिंब अपने शाब्दिक अनुवाद में कोई व्यक्तित्व नहीं उभारते । वस्तुत: यहाँ कवि लहर को - भावना को, जीवन के स्पन्दन को - नये संदर्भ में पारिभाषित कर रहा है, प्रसाद के प्रसंग में, उनकी उदात्त-सुकुमार संवेदना के आलोक में, इन बिंबों में निहित लाक्षणिकता भी अपने ढंग के निराले प्रभाव की सृष्टि करती है । वस्तुत: वह लाक्षणिकता के रूढ़ अर्थ में लाक्षणिकता लगती ही नहीं है ।' करुणा की नव अँगराई' में जीवन की संवेदनशील, प्रत्यग्र और अपनी निश्छलता में आत्म-विस्मृत स्थिति को संवेद्य बनाने की सुकुमार चेष्टा की गई है । 'मलयानिल की परछाईं' तो अपने सूक्ष्मीकृत रूप में भावना की पकड़ में न आ सकनेवाली प्रक्रिया और ऐन्द्रिक संवेदन से परे की स्थिति को रूपायित करता है या यों कहना चाहिए, संकेतित करता है और, यही कारण है कि यहाँ 'मलयानिल' छायावाद के अन्य

कवियों के मलयानिल की-सी भावुक सरलतापरक संवेदना उद्भूत नहीं करता।

इसीतरह " ले चल वहाँ भुलावा देकर " गीत का यह " साँझ-बिंब अर्थ के अनेक स्तरों को खोलता है और अपनी सूक्ष्मता-अमूर्त्तता में विशिष्ट हो जाता है :

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
तारावों की पाँत घनी रे।

विश्राम- या अधिक संगत ढंग से कहें-एकांत के चरम आनंद (जो वस्तुत: कर्म-पराङ्मुखता का द्योतक न होकर श्रम के क्षणों में अधिक शक्ति अर्जित करने के उद्देश्य से परिचालित है) का यह विराट् चित्र है (और विशिष्टता तो यह है कि यह विराटता एक साथ ही उदात्त और जटिल है) " जहाँ साँझ सी जीवन-छाया " में प्रसाद का कोमल-संवेदनशील अंकन देखा जा सकता है -" जीवन " नहीं," जीवन की छाया "।" ढीले " क्रिया की तद्भवता अर्थ-संचरण में उन्मुक्तता की अवस्थिति संभव करती है। " ढीले " प्रयोग अपने सहज-स्वाभाविक, तद्भव रूप में अलसता, कोमलता, विश्रान्ति के और उन्मुखता एवं मंद चेष्टा की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है।

मधुचर्या के सुकुमार अनुभवगम्य सुख को प्रसाद जैसी शालीन सूक्ष्मता की प्राथमिकता देनेवाला कवि अमूर्त्त बिंबों में मितकथन की अपूर्व भंगिमा के साथ अंकित करता है, यह" बीती विभावरी जाग री " गीत के इस अंश में देखा जा सकता है :

अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री !

" मलयज " और " विहाग " की अर्थ-छायाएँ-सुगन्धि, आकर्षण, कोमलता, सूक्ष्मता, संगीतात्मकता, मादकता, अलसता बहुत कुशल संकेतात्मकता

के साथ शरीर-सुख की प्रक्रिया का अंकन करती है। विशेषत: रात्रिकालीन राग विहाग के संगीतात्मक बिंब में अनुस्यूत अपने ढंग की मादकता, आत्म-विस्मृति और सुखद उत्तेजना शारीरिक क्रियाओं से उपजी चरम तन्मयता तथा पूर्णता के स्मरण को ("आँखों में भरे विहाग री") अधिक अर्थ-गर्भित बना देती है।

"विहाग" की अर्थ-क्षमता का उपयोग कवि ने अन्यत्र भी किया है। "स्कन्दगुप्त" नाटक में देवसेना के असफल, एकान्त नारी-जीवन की खोखली शून्यता को कुशल कवि ने "विहाग की तान" के बिंब द्वारा और गहरा दिया है :

अमित स्वप्न की मधुमाया में
गहन विपिन की तरुछाया में
पथिक उनींदी श्रुति में किसने -
यह विहाग की तान उठाई ?[१]

विदाई के रूप में वेदना प्राप्त करनेवाली देवसेना की अगाध विवशता विहाग की तान उठने की बिलकुल विरोधी स्थिति (विहाग - तान : अर्थात् रात्रिकालीन जागरण- सुख के विविध अनुभव) की टकराहट में बहुत कोमल और कारुणिक हो जाती है।

आह रे, वह अधीर यौवन " में तो छंद-गति, बिंबात्मकता शब्द-ध्वनि - सब एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं। कोमल स्थितियों के अंकन में सामान्यत: ऋजु-सुकुमार शब्दावली व्यवहृत होती है, किन्तु कठोर वर्णों द्वारा यौवन की उद्दामता, प्रखरता एवं अपरिहार्यता को सजीव करनेवाली प्रसाद की यह प्रणाली उल्लेखनीय है : "मत्त मारुत पर चढ उद्भ्रान्त / बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त।" पूरे छंद की गति बहुत तीव्र है। यदि रस की शब्दावली में कहा जाए, तो यहाँ रौद्र और शृंगार रसों की सह-अवस्थिति हुई है। यौवन के लिए "अधीर" विशेषण कुछ इस आत्मीयता से रखा गया है कि उसे सही अर्थों में विशेषण कहा भी नहीं जा सकता। वह यौवन का मूलभूत अंग बन जाता है - वह यौवन, जिसका स्वभाव ही है अधीर होना। फिर

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १४७

" आह " जैसे अति प्रचलित अव्यय को भरपूर संवेदनशीलता से संपृक्त कर दिया गया है और इसका कारण है - " अधीर " के साथ उसकी नियोजना। यहाँ बेचैनी, ललक, विह्वलता और उन्मत्तता की अपेक्षायाएँ उद्भूत होती हैं।

अधीर यौवन के दुर्निवार प्रभाव को कवि घन-मंडली द्वारा जल-वर्षण की प्रक्रिया के समानान्तर रूपायित करना चलता है। किन्तु देखने की चीज तो यह है कि वह इस तरह के अंकन में बहुत संभावित सांगरूपक का प्रत्याख्यान कर देता है। घन-पक्ष के कुछ अंगों - मारुत, किरन आदि का उल्लेख हुआ है; पर वे यौवन की विविध स्थितियों से ब्यौरेवार तुलनीय नहीं होते, और छायावादी काव्यभाषा - या कि हिन्दी काव्यभाषा - के लिए अपने में यह एक सुखद अनुभव है कि वह ब्यौरों की वर्गीकरणपरक स्थूल सीमा को अस्वीकार कर सूक्ष्मता को अपनाती है। यौवन-काल की प्रखर आवेगमयता और उन्मत्तता तथा बुद्धि के अंकुश का बिलकुल ढीलापन संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं :

मत्त मारुत पर चढ़ उद्भ्रान्त
बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त -
सिन्धु वेला-सी घन मण्डली,
अखिल किरनों को ढककर चली,
    भावना के निस्सीम गगन
    बुद्धि-चपला का क्षण नर्तन-
चूमने को अपना जीवन
चला था वह अधीर यौवन।

यहाँ अंतिम अंश के " चूमने " प्रयोग में जीवन के आस्वादन को यौवन के उल्लास की चरमता पर पहुँचा दिया गया है। यह " चूमना " स्थूल अर्थ में शारीरिक भूख और उसकी तुष्टि तक ही न सीमित रहकर अन्तर्मन के तकाज़े और उसकी पूर्ति का भी संश्लेषण कर लेता है।

मधुचर्या के अंकन में प्रसाद दो वृत्तियों को - दो विपरीत

ढंग की स्थितियों को - किसे कुशलता से एक संपृक्त और अधिक रचनात्मक अनुभव में ढाल देते हैं, इसका उदाहरण इसी गीत के प्रस्तुत अंश में देखा जा सकता है :

अधर में वह अधरों की प्यास,
नयन में दर्शन का विश्वास,

शरीर का एक अवयवमादक उत्तेजन में डूबा हुआ है (" अधर में वह अधरों की प्यास ") और दूसरा अपनी अस्मिता की पहचान कर रहा है (निष्ठा, विश्वास का अर्जन " नयन में दर्शन का विश्वास " - भी किसी आत्म-उन्नयन, आत्म-साक्षात्कार से कम नहीं है। द्रष्टव्य है -'उस माया की छाया में / कुछ सच्चा स्वयं बना था।') ध्यान देने की बात यह है कि दोनों प्रक्रियाएँ समानान्तर चल रही हैं - अपने बेलौस, अकुण्ठित एवं सादे मितकथन में।" अधर में वह अधरों की प्यास " में शरीर-सुख के कोमल पक्ष अधरपान को बहुत तीव्र - प्रखर और मांसल ढंग से अंकित किया गया है, और इसी के साथ " नयन में दर्शन का विश्वास " की समर्पणमयी निश्छलता एक " विश्वास " प्रयोग से और धुल-निखर जाती है, कुछ कुछ उसी तरह, जैसे 'आँसू' की निम्न पंक्तियों में " पर्व " प्रयोग -

चंचला स्नान कर आवे
चाँदनी पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी

प्रसाद के बेहद मांसल और यौन अंकन के प्रसंगों में भी उनकी पकड़ और व्याख्या से बाहर मानसिकता, उनका अनुभव-संवेदन समाविष्ट हो जाता है और समाविष्ट ही नहीं होता, बल्कि केन्द्रीय - या अतिरंजित ढंग से कहें, तो महत्वपूर्ण - स्थान बना लेता है। काव्यभाषा के स्तर पर जब ऐसे जटिल अनुभव-संश्लेष को बिंबों के माध्यम से साक्षात्कृत किया जाता है, तब तो इन साक्षात्कारों की सफलता पर आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि वहाँ - उस तरह की पद्धति में - अर्थ बिंबों की द्वन्द्वात्मक प्रकृति के बल पर गहराई में सिक्त होता चलता है। लेकिन

प्रसाद जब बिलकुल परिचित - सामान्य, किसी प्रकार की बिंबात्मकता से अलग शब्दों में इस तरह की सम्मिश्रित स्थितियों को रखने में सफल होते हैं, तब उनकी बहुत सावधान रचना-धर्मिता की सराहना करनी पड़ती है " आह रे, वह अधीर यौवन " के विश्लेषित अंशों से ठीक आगे का यह अंश भी इस संदर्भ में द्रष्टव्य है :

धमनियों में आलिंगनमयी
वेदना लिए व्यथाएँ नयी
टूटते जिससे सब बन्धन,
सरस सीकर से जीवन-कन,
बिखर भर देते अखिल भुवन
वही पागल अधीर यौवन ।

पहली और दूसरी पंक्तियों की खास ढंग की प्रखरता-विकलता का बाद की चार पंक्तियों में द्रवणशील रूपान्तरण देखने योग्य है ।

" वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे " गीत में स्मृति-चित्र के रूप में शेष (और शायद इसीलिए अधिक अधीर बनानेवाले) यौवनगत प्रणय-सुख का अनुभव वर्षाकाल में सर्वाधिक सक्रिय प्रकृति की प्रक्रिया से छनकर सामने आता है : सीधे-सामान्य और सरल ढंग से तो प्रसाद शायद ही कभी प्रकाशन करते हों । इस गीत के आरंभिक अंश के कुछ विशिष्ट प्रयोग देखे जा सकते हैं :

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन -घन-सघन बरसते -
इन आँखों की छाया भर थे !

प्रकृति-बिंब और जीवन-बिंब का कवि जैसे अद्भुत रचता है, और यह क्षमता विकसित होती है इस तरह के अतिशय संवेदनशील -सुकुमार प्रयोगों से- इन आँखों की छाया भर थे ।" " आँखों की छाया " नये ढंग का मुहाविरा है - अनुभव को आत्मीय बनाने में एकदम सक्षम । और सच कहा जाए, तो यह मुहाविरा जैसा है भी नहीं, और अगर इसके लिए कोई उपयुक्त नाम न होने के कारण इसे मुहाविरा कहा भी जाए, तो यहाँ यह जोड़ देना बहुत आवश्यक रहेगा कि यह मुहाविरा काव्य-

भाषा के सामान्य रूप में पर्यवसित हो जाता है, वह अलग से, चमत्कार-उक्ति के रूप में रखा गया नहीं प्रतीत होता। प्रणय की शीतलता, आत्मीयता तथा प्रभावोत्पादकता " आँखों की छाया " प्रयोग के माध्यम से और भी निखर जाती है। और इसीलिए पहली पंक्ति का " सुन्दर " प्रयोग अपने प्रचलित सामान्य अर्थ के बावजूद अभूतपूर्व ताज़गी से भरपूर है - " वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे । "

एक दूसरे गीत " मेरी आँखों की पुतली में " का एक प्रयोग " प्रान " भी " आँखों की छाया भर " की तरह से गहरी-आत्मीय व्यंजनाएँ उद्भूत करता है :

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्रान समा जा रे ।

एक तो पुतली शरीर का सब से कोमल और सब से मूल्यवान अवयव है, फिर उसमें " प्रान " बनकर समाने की अनुनय हार्दिक आसक्ति एवं उत्कण्ठा से उपजी है। इस तरह के सूक्ष्म-द्वन्द्वात्मक अर्थपरक अंकनों में प्रेमास्पद भी स्थूल शरीर-धारी मात्र नहीं रहता, वह स्वयं एक भव्य-उदात्त सूक्ष्मानुभव में रूपान्तरित हो जाता है। इस तरह, पहले तो भाव ही सूक्ष्म रहता है, फिर उसका अंकन भी वैसी ही सूक्ष्मता के साथ होता है। यह दुहरी सूक्ष्मता प्रसाद की रचना को जटिल और सघन बना देती है, और यहाँ यह जोड़ना अनिवार्य होगा कि प्रसाद के साथ एकरसता, ऊब की प्रतीति न होने ; बल्कि अर्थ के अधिक उन्मुक्त और सघन होते जाने के मूल में उनकी इसी दुहरी ,सृजनात्मक सूक्ष्मता का हाथ है। इस स्थापना के व्यावहारिक निदर्शन-स्वरूप इसी गीत का आगेवाला अंश रखा जा रहा है :

जिससे कन-कन में स्पंदन हो
मन में मलयानिल चंदन हो
करुणा का नव अभिनन्दन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे ।

ऐसे अंशों का शाब्दिक अर्थ संभव नहीं, केवल उनके प्रभाव का - वह भी एकान्तिक संवेदनात्मक स्तर पर - विश्लेषण हो सकता है। उस सूक्ष्मानुभव से

संपृक्त होने पर, अपने व्यक्तित्व में उसे रचाने- पचाने पर, जो विलक्षण (लेकिन चमत्कार के स्तर पर नहीं - अनुभूति की अद्वितीयता के स्तर पर) प्रतिक्रियाएँ उद्भूत हो सकती हैं, उनकी संभावना को कवि पहले तो यों पहचानता है -" जिससे कन-कन में स्पन्दन हो" , फिर अर्थ को और अधिक उन्मुक्तता-सघनता में संप्रेषणीय बनाने के लिए एक सूक्ष्म-अमूर्त बिंब गढ़ता है; 'मन में मलयानिल चन्दन हो ।' और इस तरह, अनुभव-प्रक्रिया में बेचैनी, सुगंधि ,सुकुमारता जैसी अर्थछायाएँ विकसित होती हैं । अंत में सामान्य-सा " रे " संबोधन आत्मीयता को उभारता है, तो अनुनय-भाव को भी तीखा बनाता है ।" मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त " प्रसाद के उन विशिष्ट गीतों में से है, जिनमें अन्तर्मन की बेचैनी - बेबसी को स्वर दिया गया है ।" मधुर माधवी संध्या में अस्त होता रागारुण रवि "," डालों से उलझा व्यस्त समीर" ," कोकिल की अधीर कूक " गोपनीय मानस को खोलने की कोशिश करती है :

मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त,
विरल मृदुल दलवाली डालों से उलझा समीर जब व्यस्त,
प्यार भरे श्यामल अम्बर में जब कोकिल की कूक अधीर,
नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती है, वहनकर रहा उसे समीर,
तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भर कर उदास होता,
और चाहता इतना सूना - कोई भी न पास होता ?

यहाँ कोई परंपरित ढंग के उद्दीपन रूप में प्रकृति के उपादानों की अवतारणा नहीं है, वह तो वस्तुत: स्वयं कवि - अथवा भोक्ता - के लिए भी अनिर्दिष्ट - अस्पष्ट मानसिकता को समझने की नई और अधिक संश्लिष्ट प्रक्रिया है, और यह समझ पूरी तौर पर फलवती होती भी कहाँ है - तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भरकर उदास होता / और चाहता इतना सूना- कोई भी न पास होता ?

क्यों " के प्रयोग से मानवीय अनुभूति - संवेदन के खास स्वरूप (अपने में उलझे, अनिश्चित और इसीलिए गतिशील होने के कारण काव्यभाषा की सृजनशील प्रकृति के लिए एक प्रीतिकर चुनौती) की पहचान-समझ कर फिर उसे वैसा-ही सूक्ष्म-गूढ़ रूप में छोड़ दिया गया है, जो किसी तरह की कलात्मक अक्षमता का

घोतक न होकर पूरे तौर पर समझ में न आनेवाले अनुभव-संवेदन को कला के स्तर पर उसी बारीक और सुकुमार अनिश्चितता से प्रस्तुत कर कविता को जीवन की पुनर्रचना बनाने की सृजनात्मक प्रवृत्ति से परिचालित है।

'लहर' में स्फुट कविताओं के अतिरिक्त तीन अपेक्षाकृत लम्बी कविताओं की नियोजना है। 'अशोक की चिन्ता' में मौर्य सम्राट् अशोक की वैराग्यपरक मन:स्थिति का अंकन है, जो कलिंग-विजय के समय घटित भीषण नर-संहार देखकर उद्भूत हुई थी। एक छंद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

फिर निर्जन उत्सव-शाला
नीरव नूपुर श्लथ माला
सो जाती है मधुबाला
सूखा लुढ़का है प्याला,
बजती वीणा न वहाँ मृदंग।

यहाँ अपरिहार्य नश्वरता और उसके एहसास से उद्भूत विषाद के अनुभव को निर्जन उत्सव-शाला के सूक्ष्म-सुकुमार बिंब में से विकसित किया गया है। इस बिंब में से मध्यकालीन वैराग्यपरक भावना उतनी नहीं उभरती, जितनी आधुनिक कवि की नियति की दुर्निवार शक्ति और मानव की लाचारी से उपजी हल्की खीज तथा बेचैनी की भावना। इस प्रसंग में देवसेना के असफल, शून्य जीवनकी एकान्तिक कसक को अंकित करनेवाला एक मिलता-जुलता बिंब स्मरण हो आता है : 'संगीत-सभा की अन्तिम लहरदार और आश्रयहीन तान, धूपदान की एक क्षीण गन्ध-रेखा, कुचले हुए फूलों का म्लान सौरभ और उत्सव के पीछे का अवसाद, इन सबों की प्रतिकृति मेरा क्षुद्र नारी-जीवन।'[१] इस अतिशय सूक्ष्म-सुकुमार और कलात्मक बिंब-माला में निहित उदासी तथा सूनेपन में देवसेना का संक्षिप्त आत्म-परिचय बहुत तीखा और इसीलिए मार्मिक हो जाता है।

'अशोक की चिन्ता' कविता में एक अन्य, अपेक्षाकृत अधिक विराट्-गंभीर बिंब में प्रसाद नश्वरता के अनुभव को यों रूपायित करते हैं :

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १३२।

आलोक-किरन है आती,
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग-पुतली कुछ नच पाती,
फिर नभ-पट में छिप जाती,
कलरव कर सो जाते विहंग।

सूर्योदय के साथ जागरण-उल्लास के वैभव और सूर्यास्त के साथ निश्चेष्टता की ख़ामोशी के रूप में कवि मानवीय जीवन की अनिवार्य परिणति नश्वरता की ओर संकेत करता है। यह अंकन कुछ अधिक सूक्ष्म-रहस्यात्मक हो गया है। "दृग-पुतली कुछ नच पाती। फिर तम-पट में छिप जाती" के चित्र में मानवीय जीवन की क्षणिकता-अस्थिरता को रेखांकित किया गया है। दृग-पुतली - शरीर का सर्वाधिक सूक्ष्म-कोमल अवयव- कुछ नाच पाती है, उसे थोड़ा-सा मौका मिलता है, या दिया जाता है कि वह नाच ले उल्लास -आनंद मना ले। "नच पाती" में "पाती" क्रियापद मानव-जीवन की निपट परतन्त्रता की व्यंजना करता है। इसके बाद तो फिर उसे तम-पट में, निराशा -" अवसाद की सीमा में, छिपना ही है।

"पेशोला की प्रतिध्वनि" में राष्ट्रीय-भावना प्रशान्त गंभीर है, प्रखर नहीं। राजपूतों के विगत गौरव और वर्तमान दुरवस्था पर जैसे पेशोला भील की शीत लहरियाँ शोकपूर्ण, ठण्डा व्यंग्य करके रह जाती है। इस स्थिति को सबिंब बनाने के लिए प्रसाद ने अर्थ-संचरण में बहुत गतिशील बिंबों की क्षमता का उपयोग किया है :

पेशोला की ऊर्मियाँ है शान्त, घनी छाया में -
तट-तरु है चित्रित तरल चित्रसारी में।
झोंपड़े खड़े है बने शिल्प से विषाद के -
दग्ध अवसाद से।
धूसर जलद-खण्ड भटक पड़े हैं
जैसे विजन अनन्त में।

पेशोला की लहरियाँ तो शान्त है, लेकिन उसके तट पर स्थित

तरु-माला तक में इतनी निश्चेष्टता और जड़ता आ गई है कि वे चित्रशाला में चित्रित वृक्षों की तरह लग रहे हैं। इसी तरह दूसरा बिंब धूसर जलद-खण्ड का है : जो किनारे के महलों की छाया में परिकल्पित विषाद-खण्डहर के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'धूसर' शब्द की व्यंजना देखी जा सकती है, जलद-खण्ड काले नहीं है, अन्यथा उनमें जल होता, वे तो धूसर हैं, जल शून्य है जीवन शून्य है। महाराणा प्रताप की वेदना, श्रीहीनता धूसर जलद-खण्ड के भटकाव में उभर उठी है।

'प्रलय की छाया' 'लहर' की अन्तिम और सब से लम्बी कविता है। इसका संगठन प्रसाद की अत्यन्त संवेदनशील और जागरुक रचना-प्रक्रिया का परिचायक है। गुर्जर की रानी कमला के माध्यम से कवि ने रूपगर्विता नारी के सौन्दर्य और छन्दमयी मानसिकता का उन्मुक्त अंकन किया है। एक ओर हैं सौन्दर्य विलास के अकुंठित - मादक चित्र, दूसरी ओर हैं पराजित सौन्दर्य की पश्चाताप-पूर्ण स्थिति का अंकन है। इस प्रकार कवि प्रसाद खड़ीबोली हिन्दी पर आधारित काव्यभाषा के परंपरा से प्राप्त इतिवृत्तात्मक रुखा रूप में भरपूर संवेदनशीलता और कोमलता प्रतिष्ठित कर सके हैं। स्मृति-रूप में शेष विगत की रागमयी संध्या का बिलकुल नये ढंग से अंकन हुआ है :

> और उस दिन तो
> निर्जन जलधि-वेला रागमयी संध्या से -
> सीखती थी सौरभ से भरी रंग-रलियाँ।
> दूरागत वंशी-रव
> गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से।

संध्या का सारा मादन-तत्व केवल एक प्रयोग 'वंशी-रव' में ही उभर उठा है। वंशी-रव-जो एक साथ ही अर्थ की अनेक छायाओं की सृष्टि कर उनके परस्पर संघात से पूरे अंकन को बहुत उन्मुक्त बनाता है। वंशी - रव - और वह भी धीवरों की नावों से गूँजता हुआ दूरागत वंशी-रव - अपने में ही माधुर्य, उत्फुल्लता, निर्दोषता और स्वच्छन्दता का परिचायक है, फिर उसके साथ मध्यकालीन ब्रजभाषा-काव्य में बहुचर्चित मुरली-प्रसंग का साहचर्य होने से वह संदर्भगर्भित हो जाता है। कृष्ण की मोहक मुरली-

ध्वनि से उन्मत्त-आत्मविस्मृत्त गोपिकाएँ, कृष्ण-गोपिका और कृष्ण-राधा की रास-लीलाएँ एवं गोपिकाओं का विरह - यह सारा परिवेश सूक्ष्म-कोमल रूप में निर्मित हो जाता है । इस तरह के साहित्यिक अभिप्राय (छायावाद के संदर्भ में) का काव्यभाषा में बिना किसी कृत्रिमता और अलंकरण के रच-पच जाना अपने में कवि की सहज-गरिमामयी अभिव्यक्ति-प्रणाली का द्योतक है। इस प्रसंग में " लहर " के ही एक गीत " जग की सजल कालिमा-रजनी में मुख-चन्द्र दिखा जाओ " का " वृन्दावन " प्रयोग स्मरण हो जाता है :

जीवनधन इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो ।

यहाँ " वृन्दावन " समूचे भाव परिवेश - कृष्ण के लीला-उत्सवों , वृन्दावनवासी गोपी-गोप-जनों के उल्लास - को अपने में समेटे हुए है। जले जगत " में " जले " प्रयोग आत्मीयता - सर्जनात्मकता से शून्य जीवन की पुनर्रचना कर देता है, फिर उस " जले जगत " के वृन्दावन में रूपान्तरण की अनुनय उल्लास, क्रियात्मकता और श्री समृद्धि की गूँज - अनुगूँज पैदा करती है ।

ध्वनि और वर्ण के संपृक्त होते रूप को कवि किस तरह एक ही बिंब में ढाल देता है, यह रूपगर्विता कमला के सौन्दर्य-अंकन में देखा जा सकता है :

नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से
जैसे अन्तरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगन्तव्यापी संध्या, संगीत को ?

नूपुरों की झनकार - यानी ध्वनि तत्त्व-का चरणों की अलक्तक-लाली - यानी वर्ण तत्त्व - में घुलते-मिलते जाना एक समवेत प्रभाव की , सुकुमार सौन्दर्य की सृष्टि करता है । इस ध्वनि-वर्ण-संश्लेषण में कितने प्रकार की अर्थ-छायाएँ उद्भूत होकर परस्पर संघात से समूची अर्थ-प्रक्रिया को गतिशील बनाती है, इसका प्रस्तार संभव नहीं । शोभा, आकर्षण, मादकता, संगीतात्मकता, और तरलता का रचाव संभव होने देने के लिए कवि पुरानी परंपरा के ढंग पर ब्योरे नहीं देता, बल्कि

मितकथन की शैली में ध्वनि-वर्ण की संपृक्ति के माध्यम से अधिक गहरा और कलात्मक असर उद्भूत करता है। कमला की इस संश्लिष्ट शोभा को कवि अंतरिक्ष की अरुणिमा पीते हुए दिगंत-व्यापी संध्या-संगीत के ध्वनि-वर्ण समन्वित-विराट् पर सुकुमार बिंब में से उन्मुक्त तथा विकसित करता है।

प्रसाद के विशिष्ट सुकुमार बिंबों में एक है - जली हुई अगरबत्ती का बिंब, जो " प्रलय की छाया " में रूपवती, किन्तु मान-मर्यादा से च्युत रानी कमला के मिथ्या अहंकार और संतोष को रूपायित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। आत्मालोचन के रूप में प्रयुक्त किये जाने के कारण यह और भी मार्मिक हो गया है :

कृष्णा गुरुवर्त्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में
एक धूम-रेखा -मात्र शेष थी,
उस निस्पन्द रंग-मन्दिर के व्योम में
क्षीण-गन्ध निरवलम्ब।

सुगन्धित धूपबत्ती भले ही यह अभिमान करे कि वह राजभवन के स्वर्ण पात्र में है, पर वह राख हो चुकी है। हल्की सुगंधि के साथ एक धुएँ की रेखा-मात्र शेष बची है, जिसके ठीक समानान्तर स्थिति कमला की है। उसका सारा रूप-गर्व, पद- प्रतिष्ठा निस्सार है, क्योंकि उसकी मान-मर्यादा नष्ट हो चुकी है। एक धूमरेखा-मात्र शेष कृष्णागुरुवर्त्तिका का यह बिंब पहली नज़र में इतना अर्थवान् नहीं लगता, सूक्ष्मता से समझने - परखने पर ही अर्थ की पर्तें खुलती हैं। एक धूमरेखा-मात्र शेष थी " जैसा प्रयोग फिर से देवसेना के क्षुद्र नारी-जीवन को अंकित करनेवाले उस बिंब की याद दिला देता है " धूपदान की एक क्षीण गन्ध रेखा "-[1]

एक ही बिंब अपने विविध अर्थ-स्तरों से किस तरह एक ओर " प्रलय की छाया " में कमला के पराजित जीवन को रूपायित करता है और दूसरी ओर देवसेना के गहरे रूप में उदास- महत्वहीन जीवन को उभारता है - यह इन दोनों अंकनों में देखा जा सकता है।

---

१) स्कन्दगुप्त, पृ० १३२

" कामायनी " के माध्यम से कवि की भाषा-क्षमता की व्यापक संदर्भ में, महत्त्वाकांक्षी सृजन में परीक्षा होती है । " कामायनी " से ही यह पता चलता है कि प्रसाद वर्णन की भाषा के प्रति आरंभ से लेकर अन्त तक उदासीन रहे हैं । इसकी जानकारी " आँसू " और " लहर " से नहीं होती, क्योंकि वहाँ गीतों के सूक्ष्म रचना- विधान में वर्णनात्मक भाषा के लिए गुंजाइश ही नहीं है । लेकिन " कामायनी " अपनी सूक्ष्म - संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया के बावजूद प्रबंधात्मकता से संपन्न है । वह मानवीय संस्कृति के विकास भले-ही वह सूक्ष्म स्तर पर हो - का आख्यान है । अतएव उसमें पूरे बचाव के बावजूद वर्णनात्मकता की अवस्थिति स्वाभाविक है । ऐसे वर्णनात्मक अंश " कर्म ", " ईर्ष्या ", " संघर्ष " सर्गों में अधिक हैं, और भाषा-संबंधी चिन्त्य दोष इनमें देखे जा सकते हैं, किन्तु वर्णनात्मक भाषा की इस सीमा से पूरी रचना-प्रक्रिया को, कामायनी के समग्र प्रभाव की कोई क्षति नहीं पहुँचती । अपने में यह बड़ी बात है और काव्यभाषा के सर्जनात्मक पक्ष के केन्द्रीय महत्त्व की ओर संकेत करती है, जिसका वर्णन की भाषा से स्थूल रूप में ही संबंध है - रचनात्मक स्तर पर नहीं और इसीलिए जो अपनी अपूर्व अर्थ-उन्मुक्तता के कारण वर्णनात्मक भाषागत सभी त्रुटियों को रचना के स्तर पर एकदम महत्त्वहीन कर देती है ।

कहना न होगा कि " कामायनी " में काव्यभाषा का सर्जनात्मक पक्ष बहुत समृद्ध है, जिसके कारण अर्थ के चुकने की स्थिति कभी आती नहीं । कवि की भाषागत सर्जनात्मकता मुख्यत: उसके बिंब-प्रयोगों के माध्यम से विकसित हुई है । मानसिक वृत्तियों को मानवीय संस्कृति के विकास से संपृक्त कर उन्हें समझने-समझाने की रचनात्मक बेचैनी कवि का मूल-मन्तव्य रहा है, जिसे बिंब-रचना पूरा करती है । " चिन्ता " से आरंभ कर " आनन्द " में पर्यवसान के लिए बिंब-विधान की सूक्ष्म, संश्लिष्ट और नयी प्रक्रिया की तलाश करनी थी, इस तलाश के लिए रचनात्मक सक्रियता " कामायनी " के प्राय: हर सर्ग में देखी जा सकती है, किंतु " श्रद्धा ", " काम वासना ", " लज्जा " और " इड़ा " सर्गों में यह अपने उत्कृष्टतम रूप में है ।

खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा के लिए यह अपने में बड़ी बात है कि वह द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक आग्रह के बाद सूक्ष्म मनोविकारों को

मनुष्य-संस्कृति के आरंभ और विकास के परिप्रेक्ष्य में छूने की सफल कोशिश करता है । सर्गों के नामकरण से लेकर रचना के विधान तक कवि प्रसाद की मौलिकता का उत्तरदायित्व काव्यभाषा उठाती है । पहले " सर्ग " चिन्ता " में देव-सृष्टि के अवशेष मनु की संक्रमणकालीन दृष्टि में विद्यमान चिन्ता और मृत्यु जैसी क्रमश: अमूर्त अपरिहार्य वृत्ति तथा शक्ति को पहचानने की बेचैनी के मेल में विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग हुआ है । चिन्ता को कवि ने " ज्वालामुखी स्फोट के भीषण / प्रथम कंपसी मतवाली " के रूप में अंकित कर उसके उदय की आकस्मिकता, अपरिहार्यता को ध्वनित किया है । फिर " हे अभाव की चपल बालिके " कहकर उसकी उत्पत्ति के वैज्ञानिक स्रोत (अभाव से चिन्ता का उदय होता है) को कविता की अनुभवपरक शब्दावली में खोलने की कोशिश की है । मृत्यु के लिए " अंधकार के अट्टहास-सी " की परिकल्पना उसके पकड़ में न आनेवाले , गोपनीय- भयावह रूप को अनुभव के स्तर पर विश्वसनीय बनाती है । इस तरह के प्रयोग अमर जीवन के अभ्यस्त मनु के मानस की खीझ, बेबसी और बेचैनी को उजागर करते हैं ।

" आशा " सर्ग के अन्तर्गत " आशा " वृत्ति के उदय और उससे उद्भूत प्रतिक्रिया को समझने-समझाने की चेष्टा में कवि नर्तकी के संश्लिष्ट चित्र को उभारता है :

यह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण -सी छविमान,
स्मिति की लहरों - सी उठती है
नाच रही ज्यों मधुमय तान ।

इस प्रक्रिया में नर्तकी की दृश्य-प्रतिमा (यद्यपि स्पष्ट शब्दों में उसका चित्र नहीं उतारा गया है) के माध्यम से उल्लास, अचरज, चमक, प्रत्यग्रता जैसी अनेक अर्थ-छायाएँ उद्भूत होती है ।

यह काव्यभाषा में निहित सूक्ष्म अर्थ-छवियाँ हैं, जिसके कारण प्रसाद की श्रद्धा मनु को बिलकुल नये ढंग से देखने की कोशिश करती है :

मधुर विश्रान्त और एकांत—
जगत का सुलझा हुआ रहस्य
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य ।

परंपरित महाकाव्यों के नायक के रूप-गुण अंकन की जो अतिशयोक्तिपरक वर्णनात्मक पद्धति है, उसका प्रत्याख्यान कर सूक्ष्म, सुकुमार और आत्मीय ढंग से नारी पुरुष को देखती है । इन तीन नये बिंबों में मनु के जटिल व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की गई है, जिसे पहले कवि कुछ परिचयात्मक ढंग से (यद्यपि उसमें भी प्रभावोत्पादकता पूरी-पूरी है) रख चुका है :

चिंता-कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत ।

प्रसाद के बिंबों की विशिष्टता इस रूप में देखी जा सकती है कि जहाँ उनमें दृश्य-पक्ष आता भी है, वहाँ उसके मूल में या उसके माध्यम से - किसी सूक्ष्म स्थिति को उरेहना कवि की प्रमुख चिन्तना रहती है । काम और वसंत की स्थितियों का संपृक्त अनुभव प्रस्तुत करने की चेष्टा 'काम' सर्ग के आरंभिक आठ छंदों में देखी जा सकती है, जिनमें वसंतकालीन प्रकृति की चित्रात्मक प्रतिष्ठा एक गहरे सुकुमार अर्थ को विकसित करती है :

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक कोने में लुक रहना !
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी ? सच कहना ।

प्रेमास्पद के मानस में यौवन-जन्य काम-भाव का धीरे-धीरे प्रस्फुटन अपने में एक नाजुक प्रक्रिया है, जिसे संवेदनशील कवि कलात्मक सुरुचि के साथ अंकित करता है ।

काम-बाला श्रद्धा के साक्षात्कार से उपजे काम-भाव अथवा प्रणय-भाव के कारण अपने ही लिए अस्पष्ट-अनिर्दिष्ट मानस को मनु पहचानने की कोशिश करते है :

मेरी अक्षय निधि ! तुम क्या हो
पहचान सकूँगा क्या न तुम्हें ?
उलझन प्राणों के धागों की
सुलझन का समझूँ मान तुम्हें ।

और इस पहचान का अन्त या परिणति वैसे ही सूक्ष्म, उलझे बिंब में होती है :

माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा सी,
क्या हो सूने मरु-अंचल में
अन्तःसलिला की धारा सी ?

यहाँ कवि प्रणय के स्वरूप का उद्घाटन नहीं कर रहा है, जैसे उसने समझ लिया कि इतनी सुकुमार- लचीली प्रक्रिया का केवल प्रभाव के स्तर पर संस्पर्श किया जा सकता है और वही बेहतर है। प्रणय-पूरित मानस की बेचैनी और मादकता दोनों का संपृक्त अनुभव 'माधवी निशा की अलसाई अलकों में लुकते तारा' और' सूने मरु अंचल में अन्तः सलिला की धारा ' के बिंब प्रस्तुत करते हैं। प्रेम से पहचान के पहले की शून्यता , शुष्कता और आकर्षणविहीनता एवं उसके बाद की सुखद बेचैनी ,अपूर्व विह्वलता को उभारना कवि का उद्देश्य रहा है। यहाँ स्मरणीय है कि मानवीय संस्कृति के विकास के इस बिंदु पर ये सभी अवधारणाएँ अभी पूरे तौर पर बनी भी नहीं हैं।

सूक्ष्म स्तर पर प्रभाव के रूपायन का यह सिलसिला और आगे बढ़ता है, जो शुद्ध अनुभूतिगम्य है, एक तरह से 'ब्रह्मानंद सहोदर ' है (अगर व्यंजनात्मक काव्यभाषा में विकसित ,अपने में पूर्ण और गहरी प्रणय-संवेदना की अवस्थिति है, तो वहाँ लौकिक और आध्यात्मिक की दूरी स्वतः विलीन हो जाती है)

श्रुतियों में चुपके चुपके से
कोई मधु धारा घोल रहा ,
इस नीरवता के पर्दे में
जैसे कोई कुछ बोल रहा ।
है स्पर्श मलय के भिलमिल -सा
संज्ञा को और सुलाता है
पुलकित हो आँखें बन्द किये
तन्द्रा को पास बुलाता है ।

यह प्रसाद की - अपने समानधर्मा कवियों के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से - मौलिक स्वायत्तता है कि वे अपने श्रेष्ठतम अंशों में अलंकरण के लिए कोई गुंजाइश नहीं रखते । प्रणयानुभव के प्रभाव का कवि यों अंकन करता है, जैसे श्रुतियों में कोई चुपके-चुपके (घोषणापूर्वक प्रकाश में नहीं) मधु-धारा घोल रहा है । आगे " मलय के भिलमिल- सा "का बिंब अपने सूक्ष्मीकृत रूप में प्रणय के संस्पर्श से आप्लावित मानस की सुखद तन्द्रा को और गहरा देता है । एक बात और - " मलय के भिलमिल-सा " का यह बिंब जितना मनु- आदिम मानव - के प्रथम प्रणयानुभव का प्रभाव अंकित करता है, उतना ही ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर मानव-मात्र के मन के प्रभाव का । प्रणय का अनुभव जैसे मानव-मात्र के लिए आदिम अनुभव है । यह सूक्ष्मीकृत बिंब छायावादी कवियों की दुर्नाम सूक्ष्मता (यद्यपि यह सूक्ष्मता कुछ हद तक आरोपित भी है ।) का परिचायक नहीं, अपितु अर्थ की सर्जनात्मक संभावनाओं से उत्प्रेरित है ।

"वासना " सर्ग में प्रसाद पुरुष-स्त्री के बनते हुए सुकुमार संबंधों की कितनी संवेदनशील उन्मुक्तता के साथ समझाने का उपक्रम करते हैं, इसकी पहचान एक " अतिथि " प्रयोग से होती है । यों तो पूरे " वासना " सर्ग में श्रद्धा के लिए " अतिथि " संबोधन प्रयुक्त हुआ है, किन्तु मानवीय संबंधों की अपने में लचीली-सुकुमार प्रकृति को आलोकित करने की दृष्टि से एक अंश विशेष उल्लेखनीय बन पड़ा है । श्रद्धा के निकटतम सान्निध्य के लिए अधीर मनु श्रद्धा को " वासना की मधुर छाया " स्वास्थ्य बल विश्राम और "भूले हुए हृदय की चिर खोज" कहते हुए उसकी प्रतिक्रिया जानने की इच्छा प्रकट

करते हैं। मनु की एक तरह से कामोद्दीपित स्थिति का सुकुमार परिशमन करने की मुद्रा श्रद्धा यों बाँधती है :

कहा हँसकर अतिथि हूँ मैं, और परिचय व्यर्थ ;
तुम कभी उद्विग्न इतने थे न इसके अर्थ।
चलो, देखो, वह चला आता बुलाने आज -
सरल हँसमुख विधु जलद लघु खण्ड वाहन साज।

श्रद्धा का अपने लिए " अतिथि " प्रयोग किसी भावुक सरलता का द्योतक नहीं है। काव्यशास्त्र में विवेचित नायिका-भेद के अन्तर्गत 'मुग्धा " और अज्ञात यौवना " की मन:स्थिति के सीमित घेरे से आगे की सुकुमार -संश्लिष्ट संवेदना 'अतिथि " प्रयोग में से विकसित होती है। श्रद्धा मनु की प्रेयसी नहीं है, पत्नी नहीं है, केवल अतिथि है। लेकिन यह अतिथि होना ही मनु के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं और आचरणों में श्रद्धा की स्थिति को कितना नाजुक तथा संकोचपूर्ण बना देता है, इसका आभास पूरे प्रसंग को समझने पर होता है।

वासना की अग्नि में जलते पर उल्लसित मनु की अपने में दुर्बोध स्थिति को संवेद्य बनाने के लिए कवि अग्निकीट का बिंब प्रस्तुत करता है :

चेतना रंगीन ज्वाला-परिधि में सानंद,
मानती सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छंद।
अग्नि-कीट समान जलती है भरी उत्साह,
और जीवित है न छाले है न उसमें दाह।

और इस तरह रंगीन ज्वाला-परिधि (यानी वासना) का अनुभवगम्य सुखानुभव (जिसमें जलना भी उत्साहपूर्ण है) अग्निकीट की विशिष्ट स्थिति के बिंब के समानान्तर रखकर समझाने की चेष्टा हुई है।

" लज्जा " सर्ग अपने पूरे-के-पूरे रूप में प्रसाद ~~काव्य~~ की काव्यभाषा के सृजनात्मक पक्ष को श्रेष्ठतम रूप में प्रस्तुत करता है। लज्जा जैसी मन:स्थिति का अंकन सूक्ष्म और मँजी हुई कलाकारिता की माँग करता है और मानसिक

वृत्तियों के अंकन में निष्णात प्रसाद पूरे मनोयोग से लज्जा का स्वरूप रूपायित करते हैं। यहाँ तो प्राय: प्रत्येक छंद में वे अपनी प्रकृति में सुकुमार सूक्ष्म और संश्लिष्ट बिंबों की नियोजना करते हैं और यह प्रसाद के माध्यम से छायावाद के लिए रची गई काव्यभाषा की अपने में स्पृहणीय और अनूठी उपलब्धि है कि वह खड़ीबोली की सारी इतिवृत्तात्मकता और खड़खड़ापन निरस्त कर (किन्तु साथ ही उसे ब्रजभाषा जैसी कोमलता - जिसमें जटिल संश्लिष्ट अर्थ-छायाओं को अनुस्यूत करना कठिन हो गया - से अलगकर) लज्जा जैसी सुकुमार वृत्ति को नये संदर्भ में आत्म विश्वास के साथ प्रकाशित करती है।

मनु से अपने शारीरिक साहचर्य के पूर्व श्रद्धा के भीतर प्रवेश करती लज्जा का अनुभव अपने में जटिल है। प्रसाद लज्जा-भाव की सुकुमारता, अपने में अस्पष्ट-गोपनीय प्रकृति की स्थितियों को इन दो बिंबों में से विकसित करते हैं :

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी ;
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी ।

छायावादी लाक्षणिकता अपने भव्य-रचनात्मक रूप में ऐसे छंद के माध्यम से समझी जा सकती है :

वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए ।
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए ।

लज्जा के आगमन पर श्रद्धा - व्यापक स्तर पर हर युवती - के मानस में उपजी विचित्र संकोच और उन्माद की अनुभूतियों का सूक्ष्म, सांकेतिक अंकन क्रमश: 'अधरों पर उँगली धरे हुए' और 'माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए' प्रयोगों से संभव हो सका है।

लज्जा के प्रभाव से नारी के मनोजगत् में अभूतपूर्व परिवर्तन

होता है, उसके मन में एक अतिरिक्त गरिमा आ जाती है, जिसकी स्पष्ट पहचान श्रद्धा नहीं कर पाती । श्रद्धा की विशिष्ट स्थिति की अर्थ के स्तर पर विकासशील बने रहने देने के लिए कवि पुलकित कदंब की माला का बिंब रचता है :

पुलकित कदंब की माला-सी
पहना देती हो अन्तर में ;
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में ।

मन की डाली के झुकने के चित्र में लज्जाजनित सौन्दर्य से उपजी जो विनम्रता, गरिमा, भंगिमा आदि की मिली-जुली व्यंजनाएँ हैं, वे भारतीय नारी के चित्र को संपूर्ण बनाती हैं ।

इसके आगे नारी - विशेषत: युवती - के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लज्जा की विशिष्टता को कवि खास तरह के अंचल के बिंब में रूपायित करता है, जो अपनी अर्थवत्ता में बेजोड़ है :

वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरनों से बुना हुआ,
यह अंचल कितना हल्का-सा
कितने सौरभ से सना हुआ ।

नीली किरनों से बुना, हल्का और सौरभ से सना अंचल लज्जा-भाव में निहित सुकुमारता, सूक्ष्मता, अलसता और मादकता की अर्थछायाएँ उद्भूत करता है ।

नारी की अभूतपूर्व लज्जाजन्य कोमलता की मोम से एकरूपता कोई चमत्कार के स्तर पर नहीं है :

सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हैं,
मैं सिमिट रही-सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूं ।

अन्तिम दो पंक्तियों में श्रद्धा की अपनी ही समझ से बाहर स्थिति उभर उठती है ।

श्रद्धा और लज्जा के संवाद में श्रद्धा की लज्जा के प्रति जिज्ञासा का समाधान लज्जा जिस तरह से करती है, वह अपने में बहुत भव्य बन पड़ा है । छन्दों की एक लंबी माला में विराट् सौन्दर्य का अंकन करने के बाद वह अपने को उस सौन्दर्य की धात्री बतलाती है :

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
    गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगनेवाली है
    उसको धीरे से समझाती ।

यहाँ सौन्दर्य - यौवन के चंचल- निर्दोष सौन्दर्य को कवि बच्चे के बिंब में से उभारता है । लज्जा के उदय से पूर्व नारी की स्थिति को बच्चे की स्थिति के समानान्तर रखकर कवि नारी के व्यक्तित्व में लज्जा की उपस्थिति एक सांस्कृतिक तत्त्व के रूप में परिलक्षित करता है । इसी भावभूमि में यह छन्द है :

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
    मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
    नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ ।

नृत्य-काल में नर्तकी के चरणों की गति को नूपुर नियंत्रित करते हैं । लज्जा का कार्य भी नूपुर जैसा ही है, क्योंकि वह नारी के यौवन-सौन्दर्य को एक लय में रखती है । यहाँ यद्यपि नर्तकी का उल्लेख नहीं है, तथापि एक 'नूपुर' के बिंब से नृत्यकालीन समूचा परिवेश आलोकित हो उठता है और मादकता, चलता, भंगिमा, लावण्य, सुकुमारता और इन्हीं सी मिलती-जुलती न जाने कितनी अर्थ-छायाएँ उद्भूत होती है । इस तरह लज्जा एक ओर तो धात्री बनकर चपल यौवन की

भोले सौन्दर्य की रखवाली करती है, दूसरी ओर नूपुर की तरह युवावस्था की मादक और उच्छृंखल भावनाओं का नियंत्रण करती है।

इसके पूर्व के एक छन्द में देवसृष्टि की रति रानी का नयी मानव-सृष्टि में लज्जा-भाव में रूपान्तरण अपने में बहुत सूक्ष्म है :

अवशिष्ट रह गई अनुभव में
  अपनी अतीत असफलता-सी,
लीला विलास की खेद भरी
  अवसादमयी श्रम दलिता-सी।

अन्त में लज्जा के सूक्ष्म प्रभाव को संवेद्य बनाने के लिए कवि प्रसाद एक अत्यन्त सुकुमार पर मांसल बिंब की रचना करते हैं, जो उनकी कोमल-मार्मिक कल्पना का निदर्शन माना जा सकता है :

चंचल किशोर सुन्दरता की
  मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
  जो बनती कानों की लाली।

विशिष्ट ढंग के आंगिक विकार पर जमी हुई कवि-दृष्टि अनुभव के स्तर पर बहुत संवेदनशील बन पड़ी है। लज्जा में निहित गरिमा, गंभीरता, मृदुता, श्री की अर्थ-छायाएँ कानों की लाली बननेवाली हलकी सी मसलन - जो लज्जा का ही अनुभाव है - के नये बिंब में से उभरती है। छायावाद -विषयक अपने निबन्ध में कवि ने छायावादी काव्यभाषा की संरचना में मोती के पानी (यानी कान्ति) को विशेष स्थान दिया है : " अपने भीतर मोती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति-छाया कान्तिमयी होती है।[१] "

अपने श्रेष्ठ अंशों में - विशेषतः लज्जा की परिकल्पना में - प्रसाद मोती की इसी चमक (अर्थ की गतिमयता-सुकुमारता) को अक्षुण्ण रखते हैं।

' कामायनी ' का ' इड़ा ' सर्ग अपने विराट्-जटिल बिंब-विधान की दृष्टि से बहुत प्रभावशाली बन पड़ा है। श्रद्धा की सीधी-सरल जीवन पद्धति

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२८।

से ऊबकर सारस्वत प्रदेश में पहुँचे हुए एकाकी मनु की सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा और अवसादिनी प्रकृति से उद्भूत एक विशिष्ट तरह की विकलता को कवि ने संवेद्य बनाया है। पहले छंद " किस गहन गुहा से अति अधीर " में महासमीर का विराट्-भयावह बिंब पूरी सृष्टि-प्रक्रिया को अपने में समेट लेता है। " जीवन- निशीथ के अन्धकार " शीर्षक दो गीतों में बिंब-गठन बहुत ही जटिल और प्रौढ़ है, जिनमें मनु या मानव-मात्र के मन की गहराइयों की विभ्रममयी स्थिति और निविड़ अंधकार का वातावरण संश्लिष्ट होकर एक दूसरे के अनुभव को अधिक सघन बनाते चलते हैं।

इड़ा के तेजस्वी और सौन्दर्यमय व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादकता को अर्थ के स्तर पर उन्मुक्त प्रत्यग्रता प्रदान करने के लिए कवि ताजे बिंबों की सर्जना करता है :

वह नयन -महोत्सव की प्रतीक,अम्लान नलिन की नवमाला

विशेषत:" नयन-महोत्सव की प्रतीक " के बिंब में महोत्सव प्रयोग सौन्दर्य के प्रभाव को सूक्ष्म और गतिशील स्तर पर छूता है। इस प्रयोग के संदर्भ में " श्रद्धा " सर्ग का यह अंश याद आ जाता है :

और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम;

यहाँ 'दृश्य " प्रयोग अपने में बहुत अर्थदाम है, अकेली श्रद्धा का सौन्दर्य अपने प्रभाव में किसी दृश्य से कम नहीं है, यह व्यंजना उद्भूत होती है। इस तरह पुरानी पद्धति पर अधिकतर तरह-तरह के उपमान जुटाकर नारी-सौन्दर्य का ब्यौरेपरक अंकन करने के बजाय एक खास प्रयोग से सारी स्थिति को अत्यन्त सूक्ष्मता और संश्लिष्टता में रूपायित करने की यह प्रक्रिया छायावादी काव्यभाषा के संदर्भ में उल्लेखनीय है।

मनु के द्वारा उपेक्षित अकेली श्रद्धा की उदास-मलिन स्थिति " स्वप्न " सर्ग के प्रारंभिक अंशों में बहुत शान्त संवेदनशीलता के साथ अंकित हुई है। संस्कृत और हिन्दी काव्य में विरह-वर्णन की लम्बी, प्रशस्त परंपरा के बीच कामायनी के विरहिणी रूप का यह अंकन अपने में बहुत सादा, किन्तु मार्मिक बन पड़ा है। शुरू

की चार पंक्तियों में डूबते हुए सूर्य के चित्र से संध्याकालीन धूमिलता की व्यंजना श्रद्धा के हृदय की गहरी उदासी को संप्रेषित करती है । आगे कामायनी का श्री-हीन जीवन इन विविध बिंब-प्रयोगों में से उभरता है :

कामायनी-कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ ?
वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही ?
वह संध्या थी, रवि शशि तारायें सब कोई नहीं जहाँ ।

मकरन्द-शून्य कुसुम , रंगरहित रेखाचित्र, प्रभातकालीन निस्तेज शशि और प्रकाश रहित संध्या के बिंबों में कामायनी को - या व्यापक स्तर पर पुरुष-रहित नारी के - वैभव-शून्य, उदास जीवन का अनुभव अर्थ के स्तर पर अधिक उन्मुक्त बन जाता है ।

श्रद्धा के इस निस्तेज व्यक्तित्व का अंकन करता हुआ कवि उसे सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर करता चलता है, जिससे कि वह एक विशिष्ट अनुभव बन जाता है :

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं
जाती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुंज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती
वह छोटी-सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं ।

विरह-वर्णन की ऊहात्मक - चामत्कारिक प्रणाली से कितना अलग यह सूक्ष्म चित्रण संवेदनात्मक स्तर पर बहुत ग्राह्य बन पड़ा है। इस पूरे अंकन में तामोश पीड़ा का एक व्यापक भाव-चित्र निर्मित होता है ।

श्रद्धा की प्रगाढ़ अन्तर्वेदना का मनोवैज्ञानिक परिशमन इस छंद में देखने योग्य है, जहाँ वात्सल्य-भावना का निर्मल-निर्दोष रूप श्रद्धा-पुत्र कुमार की अवतारणा से वात्सल्य का कोमल परिवेश निर्मित कर देता है :

माँ - फिर एक किलक दूरागत,गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कण्ठा दूनी ;

लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाँहें आकर लिपट गयीं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी !

" संघर्ष " सर्ग में यों तो प्रसाद की रचना-प्रक्रिया उनके प्रौढ़ अंशों के परिप्रेक्ष्य में - बहुत पुष्ट नहीं है, लेकिन ऊर्ध्व अनुभवों की सूक्ष्मता को कवि ने पूरी विराटता में रूपायित किया है, जैसे " देश-कल्पना काल-परिधि में होती लय है " जैसे अंशों में देखा जा सकता है ।

" निर्वेद " में मनु और इड़ा से पुत्र सहित श्रद्धा की भेंट के बाद श्रद्धा का एक गीत प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वह तरह-तरह के बिंबों में श्रद्धा-भाव जो वस्तुत: जीवन में आस्था-कर्मठता का द्योतक है - की महत्ता प्रतिपादित करती है । शुरु का एक अंश इस प्रकार है :

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन !

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक सी रही जब,
मैं मलय की बात रे मन ।

यहाँ कोमल-संवेदनशील स्तर पर कोलाहलमय जीवन में कसकती व्यथता और ऊब के बीच राहत देनेवाली श्रद्धा-वृत्ति का अंकन है ।" मलय की बात का बिंब श्रद्धा से परिचालित जीवन में निहित ताज़गी, ऊष्मा, स्पन्दन, सुगन्धि, मादकता और सुकुमारता को उभारता है ।

"दर्शन", " रहस्य " और " आनन्द ", " सर्गों में काव्यभाषा संवेदना को उतना अनुभवपरक नहीं बना पाती, जितना 'श्रद्धा', 'काम', 'लज्जा' जैसे सर्गों में। यहाँ कुछ ही अंश ऐसे हैं, जिनमें कविता बनने की स्थिति है । नटराज के नृत्य का विराट्-भव्य अंकन, ऊर्ध्वदेश के अनुभव का सूक्ष्म संस्पर्श, तीनों लोकों की फैंटेसी में अनुस्यूत प्रौढ़ अन्तर्दृष्टि ,मानसरोवर झील का कलात्मक चित्रण कुछेक अंश हैं, जिनमें

प्रसाद ने कला-चेष्टा और चिन्तन गरिमा का भव्य संश्लेष किया है।" आनन्द सर्ग में पूरी प्रकृति का लोकोत्तर आनन्द बड़े मांसल, जीवन्त और पुष्ट बिंबों में व्यक्त हुआ है।

प्रसाद की समग्र काव्य-रचनाओं के अध्ययन से उनकी संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया के बारे में पाठक और समीक्षक की समझ कई रूपों में विकसित होती है। इस संदर्भ में पहली बात उनके बिंबों की संरचना को लेकर है। प्रसाद में बहुधा बिंबों के सूक्ष्मीकरण की प्रवृत्ति है।" लहर " की पहली कविता में कवि लहर के लिए " मलयानिल की परछाईं " का बिंब प्रस्तुत करता है। मलयानिल अपने में सूक्ष्म-अमूर्त है, उसकी परछाईं उसे और अधिक सूक्ष्म तथा सामान्य ऐन्द्रिक संवेदना की पकड़ के बाहर कर देती है। इस दुहरी सूक्ष्मता की अवस्थिति से कवि लहर-यानी भावना, जीवन के स्पन्दन - के अनुभव को और अधिक कोमल-सूक्ष्म बना देता है, तथा भावना को अनिर्दिष्ट अस्पष्ट प्रकृति का संकेत देता प्रतीत होता है। मलय के सूक्ष्मीकृत रूप का इससे भी बढ़िया उपयोग प्रसाद 'काम' सर्ग के इस अंश में करते हैं :

है स्पर्श मलय के झिलमिल-सा
  संज्ञा को और सुलाता है ;
पुलकित हो आँखें बन्द किये
  तन्द्रा को पास बुलाता है।

प्रथम प्रणय के स्पर्श का अनुभव - और वह भी देव-सृष्टि के स्थूल उद्दाम विलास के विशीर्ण संदर्भ में -' मलय के झिलमिल -सा " के बिंब में बहुत भास्वर और निर्मल बन पड़ा है। नयी मानवीय सृष्टि की सूक्ष्म प्रेम-वृत्ति से अनभिज्ञ देवसृष्टि के अवशेष मनु का प्रणय-स्पर्श के अनुभव की पकड़ में असमर्थ होना स्वाभाविक है, और उनकी इस विशिष्ट स्थिति को ' मलय के झिलमिल -सा' का बिंब अपनी शाब्दिक अर्थ पद्धति में अविश्लेष्य, सूक्ष्म-अमूर्त प्रकृति के माध्यम से संवेद्य बनाता है। वैसे व्यापक रूप में देखा जाए, तो सभ्यता संस्कृति के लम्बे विकास से गुज़रे हुए मानव के संदर्भ में भी (उसके प्रथम प्रणयानुभव काल में) यह बिंब सटीक ठहरता है।

जटिल अनुभव -संश्लेषण को उसकी पूरी जटिलता में संस्पर्श कर सकने की महत्त्वाकांक्षा से परिचालित प्रसाद " आँसू " में रात्रि के लिए स्पर्शहीन अनुभव का बिंब रचते हैं :

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी
नन्दन तमाल के तल से
जग छा दो श्याम-लता सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से ।

अनुभव की प्रकृति सूक्ष्म-अमूर्त होती है । यहाँ " स्पर्शहीन अनुभव " कहकर उसे और अधिक सूक्ष्म बना दिया गया है । सामान्यत: अनुभव स्पर्श का परिणाम होता है,लेकिन प्रसाद का अनुभव तो स्पर्शहीन है । इस तरह कवि रात्रि की सूक्ष्म-अमूर्त प्रकृति को सामान्य ऐन्द्रिक संवेदनों से ऊपर उठा देता है । एक तो इस अंश में कवि का अनुभव (रात्रि) सूक्ष्म है, दूसरे उस अनुभव की संप्रेषण-प्रक्रिया (" तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी ") और भी गहरी है । इस तरह की दुहरी सूक्ष्मानुभूति लहर के गीत " मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्रान समा जा रे " में भी देखी जा सकती है, यद्यपि वहाँ पर कवि की संवेदना भिन्न कोटि की है ।

श्रद्धा के सौन्दर्य को सूक्ष्म प्रभावात्मक स्तर पर संप्रेषित करने की रचनात्मक बेचैनी कवि प्रसाद में " श्रद्धा " सर्ग के अन्तर्गत देखी जा सकती है, जिसका कदाचित् सब से बढ़िया उदाहरण वह अंश है,जहाँ श्रद्धा के सौन्दर्य अंकन के लिए साकार सौरभ के सूक्ष्मीकृत बिंब की योजना है :

कुसुम कानन-अंचल में मंद
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार ।

यहाँ अंकन को तो एक पूरे-का-पूरा चित्र है, पर वह कितनी सूक्ष्म-विरल रेखाओं से बना हुआ है, यह देखा जाना चाहिए । कवि बड़े रचनात्मक

छल के साथ " साकार सौरभ " का उल्लेख करता है -

" पवन प्रेरित सौरभ साकार "

लेकिन अन्तिम दो पंक्तियाँ उसकी यत्किंचित् चित्रात्मकता का निरसन कर देती है, या यों कहें, उसे अभूतपूर्व सूक्ष्मता प्रदान करती है :

रचित परमाणु पराग शरीर / खड़ा हो ले मधु का आधार ।

—— ऐसा 'साकार सौरभ' (" साकार " की रचनात्मक विडम्बना देखें), जिसका शरीर पराग के परमाणुओं से बना हुआ है (एक सूक्ष्मता द्रष्टव्य है) और इतना ही नहीं, जो मधु को आधार बना कर खड़ा हुआ हो (यह दूसरी सूक्ष्मता है)। जब इतना सूक्ष्म-संश्लिष्ट रूप बन सके, तब सूक्ष्म और गहरे प्रभाव से मण्डित श्रद्धा के सौन्दर्यमय व्यक्तित्व की पहचान की जा सकती है ।

आगे एक पंक्ति में श्रद्धा की सहासमुद्रा को एक अन्य सूक्ष्मीकृत बिंब में से उभारा गया है :

हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध ।

इस तरह के बिंब अनुभव को अर्थ के स्तर पर प्रत्यग्र और विकसनशील बनाये रखते है ।" हँसी नहीं ", हँसी का मद-विह्वल प्रतिबिंब ---| एक भिन्न संदर्भ में मनु की जड़ताग्रस्त स्थिति को कवि " ज्योति का धुँधला-सा प्रतिबिंब " कहकर बहुत कलात्मक अस्पष्टता के साथ रूपायित करता है ।

यह तो एक, और बहुत रचनात्मक ,कोशिश हुई - सूक्ष्म बिंबों को और सूक्ष्म बनाने की । दूसरी कोशिश है अपेक्षाकृत स्थूल बिंब को ही सूक्ष्म बनाने की, , जिसके फलस्वरूप उनकी स्थूलता का निरसन होता है । श्रद्धा के रूप-वर्णन में कवि बिजली के फूल का बिंब प्रस्तुत करता है :

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग ।

सामान्य फूल से अलग 'बिजली का फूल' अपनी अभूतपूर्व चमक, सूक्ष्मता, तड़प और भंगिमा की मिली-जुली व्यंजनाओं की संभाव्यता से श्रद्धा के सौन्दर्य अनुभव को गतिशील बनाये रहता है। इसी तरह सामान्य फूल को अर्थवत्ता प्रदान करने की दूसरी उल्लेखनीय प्रक्रिया 'लज्जा' सर्ग के इस अंश में देखी जा सकती है :

किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधु-धार ढरे ?

लज्जा श्रद्धा के लिए - युवती मात्र के लिए - मधुधार ढारनेवाली माला गूँथ रही है, इस माला को बनाने में राग भरे सुहाग कणों का योगदान है, जिनकी विशिष्टता इसमें है कि वे इन्द्रजाल के फूलों से लिये गये हैं, सामान्य फूलों से नहीं। इन्द्रजाल अपने मायावी-आकर्षक रूप में प्रेम की अनेक भंगिमाओं को प्रत्यक्ष कर देता है। कवि के इस तरह के प्रयोग भाषा को विपुल क्षमता प्रदान करते हैं, जिससे कि अनुभव घुलनशील बना रहता है।

प्रसाद के बिंबों की संरचना में दूसरी प्रक्रिया वहाँ देखी जा सकती है, जहाँ कवि किसी सूक्ष्म-अमूर्त स्थिति अथवा वृत्ति को लेकर उससे बिंब निर्मित करता है। 'आँसू' का प्रसिद्ध छंद है :

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे से

प्रेमास्पद के आगमन से प्रेमी के मानस में उपजे अभूतपूर्व हर्ष को मादकता की अमूर्त-कोमल स्थिति बहुत संश्लिष्ट ढंग से संवेद्य बनाती है। प्रेमी के लिए प्रेमास्पद के व्यक्तित्व की चरम प्रभावोत्पादकता को रूपायित करने की अनेक प्रक्रियाओं में से मादकता का बिंब अनायास ऊपर उभर आता है। इसी तरह प्रेमास्पद को

प्रस्थान करना जैसे संज्ञा का चले जाना है । यहाँ वियुक्त होती संज्ञा की मार्मिक स्थिति प्रेमास्पद से बिछुड़े हुए प्रेमी की सुकुमार पीड़ा का शान्त भंगिमा के साथ प्रकाशन करती है । जीवन की निश्चेष्टता बिलकुल प्रत्यक्ष हो उठती है । इस गंभीर मितकथन के मुकाबले बाद की दो पंक्तियाँ (हम व्याकुल पड़े बिलखते / थे उतरे हुए नशे से) कुछ हल्की लगती हैं ।

' कामायनी ' के ' चिन्ता ' सर्ग में अंग-भंगियों के नर्तन यानी विलास-सुख - को बहुत मादक, सूक्ष्म और उत्तेजक बनाने के लिए ' कवि ' अनंग-पीड़ा अनुभव' का सूक्ष्म अमूर्त बिंब प्रस्तुत करता है :

वह अनंग-पीड़ा-अनुभव-सा
अंग-भंगियों का नर्तन,

सामान्य अलंकरण-प्रक्रिया में सूक्ष्म के लिए स्थूल का चुनाव होता है । यहाँ स्थिति इसके विपरीत है - प्रस्तुत स्थूल है, उसके लिए सूक्ष्म बिंब रचा गया है ।

जटिल अनुभव-संश्लेषण की अर्थ-प्रक्रिया का सघन होना पड़ता है, यह उसकी अनिवार्यता है । इसके लिए प्रसाद कभी-कभी दुहरे बिंबों की सृजन-क्षमता का उपयोग करते हैं । प्रेमास्पद के व्यक्तित्व का संश्लिष्ट अनुभव प्रस्तुत करने के लिए कवि चंचला और चाँदनी की संपृक्त अवस्थिति करता है :

चंचला स्नान कर आवे
चाँदनी पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।

चंचला में निहित दीप्ति, तीव्रता ,वक्रता और चाँदनी में निहित शीतलता, भास्वरता जैसी अर्थ-छवियाँ परस्पर टकराकर प्रेमास्पद के व्यक्तित्व की प्रभाव के स्तर पर (और रूप के स्तर पर भी यद्यपि उसमें ऊपरीपन रहता है) समूची पहचान संभव करती है । नारी की रूप-छवि में तड़प और शीतलता के मेल का बिलकुल सटीक रूपायन यह दुहरी बिंब-योजना कर सकी है ।

नारी रूप में परिकल्पित ' आँसू ' के आलम्बन का रूप एक अन्य बिलकुल नये ढंग के दुहरे बिंब में से उभरता है :

जिसमें इतराई फिरती
नारी निसर्ग सुंदरता
छलकी पड़ती हो जिसमें
शिशु की पावन निर्मलता ।

यहाँ सौन्दर्य के अपने दोनों पक्षों- मादक और निर्दोष का एक साथ निर्वाह हुआ -' अमी, हलाहल मद भरे ' अलग-अलग नहीं, एक साथ ! सौन्दर्य के अनुभव को - या अन्य किसी भी सूक्ष्म-गंभीर अनुभव को - जड़ न होने देने की कोशिश में प्रभावात्मक संस्पर्श की अपनी अलग विशेषता है । प्रस्तुत छंद में ' नारी निसर्ग सुंदरता ' और ' शिशु की पावन निर्मलता ' के ' तनाव और संश्लेषण से कवि सौन्दर्य को अनुभव का सघन, गत्यात्मक तथा भास्वर बना देता है ।

' कामायनी ' के श्रद्धा ' सर्ग में मनु अपनी जड़ता ग्रस्त स्थिति के लिए कहते हैं : 'शून्यता का उजड़ा-सा राज ।' यहाँ ' शून्यता ' के सूक्ष्म बिंब में ' उजड़ा-सा राग ' के बिंब को आरोपित किया गया है । विनाश के लिए प्रयुक्त इन दोनों बिंबों की सम्मिलित अर्थ-शक्ति मनु के जीवन में गहराये अवसाद, नैराश्य निश्चेष्टता ,विभ्रम को प्रभावोत्पादक ढंग से विवृत्त करती है ।इसी तरह ' इड़ा ' सर्ग में अपने जीवन की अर्थहीनता (जिसमें रचनात्मकता की गुंजाइश नहीं है) से स्तब्ध मनु की स्थिति ' खोखली शून्यता ' की सूक्ष्म और आरोपित बिंब योजना में से प्रत्यक्ष होती है :

खोखली शून्यता में प्रतिपल असफलता अधिक कुलाँच रही ।

श्रद्धा के संपर्क के लिए अधीर मनु के प्रति समर्पित होने को उद्यत श्रद्धा के मन की लज्जा, उत्कंठा, वासना, आशंका का बहुत मार्मिक और संश्लिष्ट अंकन प्रस्तुत छंद में आरोपित बिंबों के माध्यम से हुआ है :

धूम-लतिका सी गगन-तरु पर न चढ़ती दीन,
दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस-भार नवीन ।

झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरुष का नर्ममय उपचार ;

यहाँ लतिका और तरु के स्थूल और परंपरित बिंबों में घूम और गगन के बिंबों को आरोपित किया गया है । शिशिर- निशीथ में नवीन ओस-भार से दबती ; किन्तु गगन-तरु पर चढ़ने का प्रयत्न करती धूम-लता का रूप सलज्ज श्रद्धा की जटिल सुकुमार मन:स्थिति को संवेद्य बनाता है ।

बिंब-योजना से अलग प्रसाद के विशिष्ट प्रयोग काव्यभाषा के रचनात्मक निर्माण में केन्द्रीय स्थान रखते हैं । छायावाद की शब्द-रूढ़ि क्रम के प्रयोग " मधु " और " मलयज " प्रसाद में अभूतपूर्व प्रत्यग्रता से संपन्न हो जाते हैं ।" मधु " का प्रसाद ने बहुत अधिक प्रयोग किया है, लेकिन वह प्राय: हर स्थल पर सार्थक व्यंजनाएँ उद्भूत करता है । मधुचर्या - या और उदात्त रूप में कहें, तो जीवन के ऐहिक पक्ष की समृद्धि - के अनुभव को अदाय रखने की उसमें (और " मलयज " में) अभूतपूर्व क्षमता है ।

प्रसाद की काव्यभाषा के संबंध में यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि वह सामान्यत: तत्समधर्मी है, किन्तु उसमें निराला की तत्सम काव्यभाषा जैसी समासपरकता नहीं है । कभी-कभी प्रसाद ने शब्दों के ठेठ तद्भव रूपों की क्षमता का भी अत्यन्त सार्थक उपयोग किया है । विशेषत: प्रणय और विश्रान्ति के बहुत वैयक्तिक- संवेदनशील अनुभव क्रम में ।" कामायनी " के लज्जा सर्ग में लज्जा के वैकुण्ठपरक प्रबोधन पर श्रद्धा अपनी-व्यापक स्तर पर नारी मात्र की शरीरगत कोमलता और दुर्बलता के साथ मन की विवशता (यानी पुरुष के प्रति समर्पण की उत्कण्ठा) का उल्लेख करती है । इस संपूर्ण स्थिति को कवि का एक प्रयोग " ढीला " रूपायित करता है :

पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ।

" लहर " के गीत " ले चल वहाँ भुलावा देकर " में " ढीले " प्रयोग विश्रान्ति को अधिक मार्मिक और प्रभावशील बना देता है :

जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया
ढीले अपनी कोमल काया
नील नयन से ढुलकाती हो

"संध्या" के बजाय "साँझ" प्रयोग (जहाँ साँझ सी जीवन छाया) अपनी अपेक्षाकृत अधिक घरेलू अर्थ-छाया के कारण जीवन में आत्मीयता और विश्रान्ति की स्थितियों को गहरा देता है।

विशेषणों में - उनकी अलंकरणपरक प्रकृति होने के कारण व्यक्तित्व निखारना अपने में कठिन कार्य है। जटिल जीवन-स्थितियों से जूझने में सुखानुभूति करनेवाली प्रसाद की मानसिकता उस कार्य को पूरा करने का दायित्व लेती है। इसीलिए जब रमेश चन्द्र शाह कहते हैं कि प्रसाद के विशेषण अलंकारधर्मी कतई नहीं होते, वे बात को सूक्ष्म परिभाषा प्रदान करते हैं'- तो बात समझ में आती है।" नृत्य-शिथिल " विशेषण में निहित व्यक्तित्व का यह रूप देखा जा सकता है। दो उद्धरण रखे जा रहे हैं :

प्यार भरे श्यामल अम्बर में जब कोकिल की कूक अधीर,
नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती हो वहन कर रहा उसे समीर,

('लहर')

उन नृत्य-शिथिल निश्वासों की कितनी है मोहमयी माया
जिनसे समीर छनता-छनता बनता है प्राणों की छाया।

(कामायनी -" आशा " सर्ग)

दोनों स्थलों पर " नृत्य - शिथिल " प्रयोग कवि के विशिष्ट भाव वैभव में अधीरता ,मादकता,सुकुमारता, अलसता, मधुरता आदि की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है। जीवन का कोमल-भव्य रूप प्रत्यक्ष हो उठता है।" लहर " के प्रसिद्ध गीत " आह रे, वह अधीर यौवन " में " अधीर " विशेषण यौवन का मूल धर्म बताने लगता है।

" आँसू " का एक छंद है :

---

१) चार छायावादी कविताएँ : और उनके कवि (" कल्पना" ,मार्च, १९७१) पृ० २२४।५१

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन-कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
सुख के सपनों से मेरे ।

यहाँ बिना किसी प्रत्यक्ष आंगिक चेष्टा का अंकन किये कवि ने मधुचर्या में भरी सुखद मादकता को शिथिल अलसायी सोती चाँदनी के रूप में से उभारा है। स्मृति-रूप में होने के कारण यह अंकन और हृदयग्राही बन पड़ा है। चाँदनी के विशेषण " शिथिल " और " अलसायी " मधुचर्या के अन्तर्गत सुकुमार मादक प्रक्रियाओं को अपने में अनुस्यूत किये हुए है ।

काव्यभाषा की संरचना में सामान्य से प्रतीत होनेवाले, लेकिन वस्तुत: अर्थवान, अव्ययों का कुशल प्रयोग कवि ने कहीं-कहीं किया है ।" लहर " के दो गीतों -" आह रे, वह अधीर यौवन " और " अरे,कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करनेवाले को " में क्रमश:" आह " और " अरे " अव्यय यौवन और प्रेमास्पद के प्रति कवि की ललक, अधीरता ,बेचैनी, विह्वलता,तड़प का अत्यन्त सुकुमारता से संस्पर्श करते हैं ।

प्रसाद में वाक्य-विन्यास की मौलिक सूझ-बूझ छायावादी कवियों के बीच उन्हें एक विशिष्ट स्थान देती है । " झरना " की " विषाद " कविता के लम्बे ,जटिल वाक्य-विन्यास से कवि की वाक्य-विन्यास संबंधी आगामी प्रगति का बोध हो जाता है । गीतों में उभरी विशिष्ट मानसिकता अपने गठन में संश्लिष्ट वाक्य-विन्यास के बीच गहरी हो जाती है ।" लहर " के गीत " मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त " में संध्याकालीन उदास सौन्दर्य से आलोड़ित कवि की बेचैनी संयुक्त वाक्य में सटीक ढंग से रूपायित हो सकी है । " कामायनी " के " लज्जा " सर्ग में लज्जा द्वारा सौन्दर्य के विराट्-भव्य रूप का वर्णन दस छन्दों के लम्बे विस्तार में निखर उठता है ।

वाक्य के दूरगामी विस्तार में भाव की आंतरिक एकता अ-

का बना रहना इस बात का सूचक है कि कवि खण्ड चित्रों के निर्माण की सतही उपलब्धि से अलग संश्लिष्ट रचना का प्रस्तुतीकरण कर रहा है। संयुक्त वाक्यों में उनकी जटिल-सम्मिश्रित अनुभूतियों का प्रीतिकर साक्षात्कार हो पाता है।' विषाद में 'कौन प्रकृति के करुण काव्य-सा ' से शुरु हुआ वाक्य एक छंद में-या कि बीच में - नहीं पूरा होता, वह तो कहीं अंतिम छंद में जाकर पूरा होता है। इस तरह विशाल फलक पर पूरा-का-पूरा अनुभव कवि सिरजता है। यह एक रोचक तथ्य है कि वाक्य-विन्यास की यह विशिष्टता बहुत स्थलों पर कवि की नीरस, इतिवृत्तात्मक वाक्य-संरचना की त्रुटियों को महत्त्वहीन कर देती है।

अध्याय - ४

निराला की काव्यभाषा

(क) विकास-क्रम

निराला की गत्यात्मक भाषा-चेतना की पूरी जानकारी उनकी काव्यभाषा में विकास-क्रम के अध्ययन से मिल सकती है । विकास का रूढ़ अर्थ - उन्नति प्रस्तुत प्रसंग में अभिप्रेत नहीं-खास तौर से निराला की काव्यभाषा के संबंध में तो और भी नहीं, क्योंकि वे अपनी पहली प्रकाशित रचना "जुही की कली" की नई रचना-प्रक्रिया से ही पाठक और समीक्षक को भकझोर देते हैं । विकास-क्रम से तात्पर्य है - कवि की विविध रूपा काव्यभाषा की एक ही काल में अथवा विभिन्न कालों में बदलती हुई प्रवृत्तियों का क्रम ।

कवि का प्रथम काव्य-संग्रह "परिमल" (१९२९ ई०) अनुभव और अभिव्यक्ति की अनेकमुखी प्रकृति के कारण उनकी आगामी व्यापक काव्य -चेतना की ओर स्पष्ट संकेत करता है - विशेषत: अन्य समाधर्मा कवियों - प्रसाद, पंत और महादेवी - की प्रारंभिक कविताओं के कच्चेपन की तुलना में "परिमल" के कवि की भाषिक सर्जनात्मकता स्पृहणीय है । यों तो "परिमल" में प्राय: भाषा के तत्सम रूप का उपयोग हुआ है, किन्तु "यमुना के प्रति" जैसी लक्षणा-प्रधान, अलंकारिक कविता के अपवाद के साथ लगभग सभी श्रेष्ठ कविताएँ सायास शिल्प-योजना की आग्रही नहीं है । और "यमुना के प्रति" कविता अपने उक्ति-वैचित्र्य और विशेषण- बहुलता (जो निराला की काव्यभाषा का वैशिष्ट्य नहीं है) के बावजूद वास्तविक जीवन-संवेदन से परिपूर्ण है, जिसमें स्मृति-बिम्बों के माध्यम से भव्य अतीत को पूरी सुकुमारता के साथ भाषा में उतारा गया है ।

छायावादी काव्य के साथ कविता का शाब्दिक अर्थ लेने की परंपरा अनुपयोगी सिद्ध होती है और इस रूप में कविता काव्यभाषा की उत्तरोत्तर कुलनशीलता,

सूक्ष्मता और अनिर्दिष्ट प्रकृति से अधिक आत्मीयता और आत्म विश्वास से जुड़ती है। कविता का शाब्दिक अर्थ न हो सकने की स्थिति में पाठक और कभी--कभी समीक्षक खीझता है, पर श्रेष्ठ कविता की सघन अर्थ-प्रक्रिया शाब्दिक अर्थ न हो सकने की सीधी और सरलीकृत पद्धति से परे होती है। जो छायावादी कविताएँ अपने रचना-संगठन मे प्रौढ़ हैं, उनमें इस गुण की अवस्थिति अधिक महत्त्वपूर्ण लगती है। इस दृष्टि से ' परिमल ' की ' मौन ' कविता पहले आती है :-

बैठ लें कुछ देर,
आओ, एक पथ के पथिक से
प्रिय, अंत और अनंत के,
तम-गहन-जीवन घेर।
मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड़ में,
मन सरलता की बाढ़ में
जल-बिन्दु -सा बह जाय।
सरल, अति स्वच्छन्द
जीवन, प्रात के लघु-पात से
उत्थान - पतनाघात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द

ऐसी कविताओं की भाषा का विश्लेषण (विश्लेषण के प्रचलित अर्थ में) नहीं किया जा सकता, शाब्दिक अर्थ करने की कोशिश तो और भी असफल सिद्ध होगी ; केवल उनके अनुभव में हिस्सा लिया जा सकता है। जीवन की चरमता का साक्षात्कार यों तो कवि बड़ी सहजता से करता है - वाक्यों के सरल विन्यास में, परिचित शब्दों, प्रतीकों में, किन्तु इस सहजता-सरलता में छिपी जटिल सांकेतिकता को नज़रअंदाज़ कर देने पर कविता की उपलब्धि का ही अंदाज़ा नहीं लगेगा। तम-गहन-जीवन घेर कर सरलता की बाढ़ में बहने की, अति-स्वच्छंद सरल जीवन बनाने की अनुनय की गई है - कुछ देर के लिए : ' बैठ लें कुछ देर ' ।

यह कुछ देर ' ही मानवीय जीवन की अधिकांश जटिलता को उभारती है। कुछ ही देर - फिर तो उसी ' तम-गहन -जीवन ' से जूझना है। हाँ, यह अवश्य है कि चरम क्षणों का यह मौन - मधु मौन - संघर्षमय जीवन को रस और अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करेगा। छायावादी काव्य का बहु प्रचलित प्रयोग ' मधु ' जीवन के आत्मीय क्षणों को अधिक भरा-पूरा बनाने की कोशिश में ताजा होकर सारी संवेदना में कोमलता भरता है। भाषा की सरलता में छिपी हुई इस जटिलता की ओर विनिफ्रेड नवनतनी ने संकेत किया है - ' किन्तु सफल कविताओं में ' स्वाभाविक ' और ' सरल ' भाषा गंभीर दृष्टिपात् करने पर सामान्यतया प्रकाशित करती है कि वह उस खास संदर्भ को उपलब्ध करने के लिए अपूर्व संगठन को अपने अंदर छिपाए हुए है।[१] दूसरी कविता ' शेष ' का भाषा-प्रयोग एक दृष्टि में प्राय: सपाट और ऋजु संवेदना के प्रति आग्रही प्रतीत होता है ; किन्तु उसकी दुहरी लय और परिचित प्रतीकों में प्रतिष्ठित जीवन की सार्थकता का एहसास होने पर पूरी कविता मानवीय अपूर्णता, बेबसी और उससे उपजे पछतावे का संश्लिष्ट अनुभव बन जाती है।

विषम-मात्रिक छंद में प्रणीत ' बादल-राग ' खड़ी बोली पर आधारित काव्यभाषा के अनुपम स्वर-विस्तार एवं नाद-योजना की संभावनाएं इस रूप में पहली बार उद्घाटित करता है। अपनी संस्कार-निष्ठ काव्य-भाषा में सांस्कृतिक अनुभवों का रचनात्मक उपयोग करने की प्रवृत्ति निराला में प्रारंभ से रही है।' बादल-राग ' के तीसरे खण्ड में सव्यसाची अर्जुन के पौराणिक रूपक का निर्वाह किया गया है। सव्यसाची अर्जुन के रूप में परिकल्पित बादल का सेवा-रत कर्मठ जीवन विशेष प्राणवत्ता के साथ मुखरित हुआ है। इन तीनों तत्वों-स्वर, विस्तार, नाद- मयता और सांस्कृतिक अनुषंग - का प्रयोग आगामी संकलन ' गीतिका ' के अनेक गीतों में अपनी चरमता पर पहुँच गया है।

---

१) But 'natural' or ' Simple' language in successful poems usually proves, on reflection, to conceal unique arrangements for achieving that very illusion.

The Language Poets use Winifred Nowottny.
p. 105.

मुक्त छंद की शुरुआत करनेवाली " जुही की कली ", " जाग्रति में सुप्ति थी "; " शेफालिका " आदि कविताएँ सौन्दर्य, प्रणय के विविध रूपों को हिन्दी काव्य के संदर्भ में नये ढंग से छूती है। " जाग्रति में सुप्ति थी " की बिंब-प्रक्रिया छायावादी काव्यभाषा के नवोन्मेष का परिचय देती है। यहाँ वस्तु-संवेदन के प्रति वैयक्तिक प्रतिक्रिया व्यक्त करने की प्रवृत्ति है, किसी बँधी-बँधाई लीक पर चलने का आग्रह नहीं -

जड़ नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग-से,
सो गया, सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कंपन-सा निद्रित
सरोवर में।

प्रिया के नयनों में स्वप्न जड़ गये हैं, " जड़ना " प्रयोग ही अपने में नया है। इन स्वप्नों ने विहग की भाँति बहुरंगी पंखों को खोल लिया है। प्रिया का उल्लासमय यौवन, प्रणयपूर्ण चित्र विचित्र जीवन काव्यात्मक उन्मुक्ति के साथ इस बिंब में प्रकट हुआ है। प्रेम-क्रीड़ा में डूबी प्रिया के मौन अधरों पर सुरा स्वर - यानी मादक स्वर (इस रूप में " सुरा " प्रयोग नया है) सो गया है। इस सुकुमार स्थिति को सरोवर में निद्रित एक लघु लहरी के बिंब में कवि रूपायित करता है।

मुक्त छंद में रचित " परिमल " की सभी कविताएँ (पंचवटी प्रसंग के अपवाद के साथ) निराला की नयी विकासशील और जागरूक रचना-प्रक्रिया का बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत करती है। " जागो फिर एक बार ", " शिवाजी का पत्र " जैसी लंबी कविताओं में भाषा की जीवनीशक्ति एक नये रूप में प्रस्फुटित हुई है, जो निराला की आगामी लंबी कविताओं की रचना का संकेत दे देती है। छायावादी कविता के विकास-काल में रची गई " शिवाजी का पत्र " की धारा-प्रवाह प्रबोधन शैली विशेष भास्वर है।

" परिमल " के इस वैशिष्ट्य का उल्लेख करते समय यह नज़रअंदाज़ नहीं किया जा रहा है कि उसकी कुछेक कविताएँ अपनी भाव-भूमि और अभिव्यक्ति में कच्ची है। कहीं तो उनमें रीतिकालीन साज-सज्जा है, कहीं छायावाद की अपनी ही बनती हुई काव्य-रूढ़ि की प्रवृत्ति है। " नयन ", " माया " , " वन-कुसुमों की शय्या " , " रास्ते के फूल से " कविताएँ इसी कोटि की हैं। इस तरह की प्रवृत्ति फुटकल रूप में " अनामिका " संकलन तक में मिलती है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि अन्य छायावादी कवियों को जहाँ अपनी ही लीकों का अधिक मात्रा में और अधिक दूरी तक - संवेदना और भाषा दोनों स्तरों पर - पोषण किया है, वहीं निराला में यह प्रवृत्ति कम है, उन्होंने अधिकतर अपनी बनाई लीकों को खुद मिटाया है।
" परिमल " के बाद कवि का दूसरा संकलन " गीतिका " (१९३६ ई०) छायावादी काव्यभाषा के और निखरने का संकेत देता है। संस्कृत निष्ठ शब्दों का भरपूर और सर्जनात्मक उपयोग करते हुए कवि ने " गीतिका " के गीतों में गंभीर चिन्तन, सांस्कृतिक संदर्भों , विविध प्रणय-स्थितियों को अनुस्यूत करने की सफल चेष्टा की है। संगीतात्मकता के केन्द्र में रखकर रचे गये इन गीतों में कविता के अनुभव को और कविता की रचना-प्रक्रिया को अदात रखने की सजगता है। " गीतिका " की भूमिका में निराला ने लिखा है - " प्राचीन कवियों की शब्दावली, संगीत की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्तर से भी मुखर करने की कोशिश की है। [१]

कवि की शिल्पी रूप " परिमल " की अपेक्षा गीतिका में अधिक उभरा है। उसमें एक तो, संस्कृत के नाद-तत्त्व को, उसकी संगीतात्मकता को, उसकी समास-परकता को हिन्दी के ग्रहणशील रूप में घुलाने - पचाने की कोशिश है खासतौर से सामासिकता के उदाहरण स्वरूप ये अंश रखे जा रहे हैं -

" लता-मुकुल -हार गंध-भार भर , (गीत सं० ३)
नव अपांग शर हत व्याकुल उर , (गीत सं० १३)
तरु गत-विशल्य जीवित मिस-लय, (गीत सं० ८३)

---

१) " गीतिका " भूमिका, पृ० १२

दूसरे, बहुत कम शब्दों में गूढ़ कल्पनाओं की विन्यस्ति है । 'पावन करो नयन' (६) गीत में कवि ने रश्मि से नील नभ पर उतरने की प्रार्थना की है, जिससे कि वह कमल के अश्रुओं (= कमल पर ओस की बूँदें पड़ी हैं, जिन पर कवि-कल्पना है कि वे सूर्य के वियोग में कमल के नेत्र से नि:सृत अश्रु-बिन्दु हैं) को मिटा सके । कवि का शब्द-संगठन इस भाव को समझने में उलझन पैदा करता है -

प्रत्नु शरदिन्दु-वर
पद्म जल-बिन्दु पर
स्वप्न जागृति सुघर
दुख-निशि करो शयन !

'अनामिका' (१९३७) संकलन में तत्सम शब्दावली पर आधारित भाषिक सर्जनात्मकता के प्रति कवि का झुकाव और आत्म विश्वास अधिक मुखरित हुआ है । 'प्रेयसी', 'रेखा' जैसी लम्बी प्रणय-कविताओं में कवि ने धाराप्रवाह रीति से संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है । इन कविताओं की रचना के माध्यम से कवि जैसे इस धारणा का उन्मूलन करता है कि खड़ी बोली में संस्कार और परिष्कार की न्यूनता है । 'अनामिका' में ही 'राम की शक्ति-पूजा' है, जिसके लम्बे सुगठित रचना-विधान में खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा की अभूतपूर्व व्यंजना क्षमता उद्घाटित हुई है । रचनात्मक काव्य व्यक्तित्व भाषा के कितने स्रोतों को उन्मुक्त कर सकता है-यह 'राम की शक्ति-पूजा' में देखा जा सकता है, जिसका आरंभिक तत्सम सामासिक रचनात्मकता का उदाहरण है, जबकि कविता के बीच के अंश में अंजना का हनुमान को सुबोधन भाषा की घरेलू बानगी को उभारता है ।

'अनामिका' की कुछ कविताओं की रचना के साथ निराला दोहरे शिल्प के प्रणेता के रूप में सामने आते हैं - 'दान', 'वनबेला' और 'सरोज-स्मृति' में कोसिकता और यथार्थपरक शिल्प की सह-विन्यस्ति हुई है - खास तौर से 'सरोज-स्मृति' जैसे शोक-गीति का दोहरा रचना-विधान तत्सम और तद्भव पर आधारित भाषिक संरचना - स्पृहणीय है । तत्सम शब्दों के बीच में तद्भव शब्द की निस्संकोच विन्यस्ति 'अनामिका' की अनेक कविताओं में देखी जा

सकती है, इस प्रवृत्ति का और सघनरूप परवर्ती गीतों में विकसित हुआ है ।

" अनामिका " में जहाँ एक ओर " मरण-दृश्य " जैसे सूक्ष्म - गंभीर गीति-रचना है, वहीं खुला आसमान " , " ठूँठ " , " वे किसान की नयी बहू की आँखें " जैसी यथार्थपरक कविताएँ हैं, जिनमें महत्त्वहीन समझे जानेवाले, जन-सामान्य में प्रचलित शब्दों का रचनात्मक उपयोग किया गया है । अभिजातपरक कविताओं के मध्य इस तरह की जन-संवेदना से संबंधित कविताएँ निराला के गत्यात्मक काव्य-व्यक्तित्व का संकेत देती हैं ।" खुला आसमान " का एक अंश उद्धृत किया जा रहा है -

बहुत दिनों बाद खुला आसमान ।
निकली है धूप, हुआ खुश जहान ।
दिखी दिशाएँ झलके पेड़
चरने को चले ढोर- गाय- भैंस - भेंड़
खेलने लगे लड़के छेड़ - छेड़
लड़कियाँ घरों को कर भासमान ।

इतिवृत्तात्मकता के स्तर पर उतर आई यह भाषा यद्यपि किसी नवोन्मेष को जाग्रत करती नहीं लगती, किन्तु कवि के दिशा-प्रयाण का संकेत देती है । सच तो यह है कि जन-साधारण के जटिलता शून्य मानसिक उल्लास के अंकन में ऐसी " सीधी" भाषा ही सक्षम होती है ।" सहज " कविता में तो कवि जैसे प्रकारान्तर से संवेदना और भाषा की सामान्यता, ऋजुता की ओर निर्देश करता है -

सहज सहज पग धर आओ उतर,
देखें वे सभी तुम्हें पथ पर ।
वह,जो सिर बोझ लिये आ रहा,
वह,जो बछड़े को नहला रहा
वह,जो इस उससे बतला रहा
देखूँ वे तुम्हें देख जाते भी हैं ठहर ?

" ठूँठ " कविता अपने रचना-विधान में बेजोड़ है। कवि ने ठूँठ

जैसी मामूली समझी जानेवाली वस्तु का प्रतीक रूप में ग्रहण किया है, और उसके माध्यम से जीवन की उदासी, श्रीहीनता की गहरी व्यंजनाएँ विकसित हुई है। निराला की ऐसी कविताएँ नई कविता की रचना-प्रक्रिया की आधारभूमि निर्मित करती है।" मैं अकेला ", " स्नेह-निर्भर बह गया है " (" अणिमा " में संकलित) की भावभूमि के समानान्तर यह गीत निराला की सतत विकासशील और मौलिक रचना-प्रक्रिया का परिचायक है, जिसे पूरे-का-पूरा ही उद्धृत किया जा सकता है :

ठूँठ यह है आज ।
गयी इसकी कला,
गया है सकल साज ।
अब यह वसंत से होता नहीं अधीर
पल्लवित, फुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं हैं तीर,
छाँह में बैठते नहीं पथिक आह भर,
झरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन-नीर ।
केवल वृद्ध विहग एक
बैठता कुछ कर याद ।

ऐसे गीतों में कवि प्रभावनों के आकर्षण से मुक्त होकर अनुभव को उसकी पूरी गहराई में छूता है। यौवन के ढल जाने से उपजी शोभाहीनता और अनुपयोगिता के बेबस एहसास की मार्मिक स्थिति का संश्लिष्ट अंकन ठूँठ के बिंब में हुआ है।

१९३८ ई० में ही निराला के " तुलसीदास " काव्य का प्रकाशन हुआ। इसमें संस्कृति की सर्वात्मकता के प्रश्न को उठानेवाली " मानसिकता " संस्कारशील शब्दों से मैत्री करती है। छंद की मौलिक प्रकृति और उसका कसाव शब्दों के जटिल रूप, सूक्ष्म-गंभीर कल्पनाएँ इस काव्य को सामान्य की चिंता में विशिष्ट बना देती है। कवि के शाब्दिक स्वेच्छाचार-या दूसरी तरह से कहना चाहें तो भाषा-गत आभिजात्य-का " राम की शक्ति-पूजा " से भी अच्छा उदाहरण " तुलसीदास " में देखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ कवि संस्कृत के कोशवासी शब्दों का भरपूर उपयोग

करता है, इतना ही नहीं, उनमें यथेच्छित अर्थ भी अनुस्यूत करता है ।

शब्दों के अभिजात संस्कार का इतना दूरगामी उपयोग करने के बाद " कुकुरमुत्ता " (१६४२) की रचना अपने आपमें एक सुखद आश्चर्य है । " कुकुरमुत्ता " जन-सामान्य में रसी-बसी भाषा के घोषणापूर्वक रचनात्मक की शुरुआत करता है । जहाँ तत्सम शब्दों के भरपूर और दक्ष उपयोग से कवि ने हिन्दी के अभिजात शब्द-कोश की संवर्द्धना की है, वहीं अकेले " कुकुरमुत्ता " के माध्यम से एकदम साधारण ग्रामीण और कठोर शब्दों में भरा-पूरा आत्म विश्वासी व्यक्तित्व सिरजा है और इस परंपरित धारणा को निर्मूल कर दिया है कि कविता की रचना के लिए संस्कारशील शब्द ही उपयुक्त होते हैं । यहाँ तो उर्दू शब्दों और एकदम ग्रामीण शब्दों में ठेठ मुहाविरेदानी की सर्वथा नयी क्षमता मुखरित हुई है -

पेट में डँड पेल हों चूहे, जबाँ पर लफ़्ज़ प्यारा ।

इस निहायत देसी अंदाज़ में आभिजात्य पर सीधे व्यंग्य किया गया है ।

" कुकुरमुत्ता " के बाद कवि का 'अणिमा' (१६४३ ई०) काव्य-संग्रह प्रकाशित होता है । कुछेक प्रशस्तियों, श्रद्धांजलियों को छोड़ दें, तो " अणिमा " में अभिव्यक्ति के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं । संवेदना एवं भाषा-दोनों ही स्तरों पर यह संकलन कवि-जीवन का संधि-स्थल है, जिसमें एक ओर " गीतिका ", " अनामिका " के तत्सम गीतों की-सी मृदु गीतात्मकता है, दूसरी ओर किसी भी प्रकार की लयात्मक उद्भावना से मुक्त गद्य-कल्प शब्द-प्रधान कविताएँ हैं । लेकिन एक उल्लेखनीय तत्व यह है कि उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति की ऋजुता, और उस ऋजुता में कुशलता से छिपी गहनता की ओर कविका झुकाव होता जाता है । गीत संख्या ३४ का तीखापन अंतिम अंश में खामोश ढंग से विवृत हुआ है -

प्रिय, मुक्ति वह चेतना दो देह की,
याद जिससे रहे वंचित गेह की,
खोजता-फिरता, न पाता हुआ,
　　　मेरा हृदय हारा ।

ऐसी शैली में शब्द बोलते नहीं, अपने मितकथन में अर्थ का तनावयुक्त

संप्रेषण करते हैं । पूर्ववर्ती काव्य के संस्कारनिष्ठ बिंब-विन्यास की प्रवृत्ति घटती चलती है, और बहुत परिचित-साधारण वस्तुओं से कवि प्रतीक-बिंब का काम लेता है ।" मैं अकेला " का कुछ-कुछ तटस्थ-सा अवसाद " छट रहा मेला " और " कोई नहीं मेला " के प्रतीकों में मुखरित होता है -

पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती आ रही,
छट रहा मेला ।

जानता हूँ, नदी-झरने,
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं भेला ।

" मेला " का छटते जाना जहाँ उत्सव-शून्य वृद्ध-जीवन को सामने लाता है, वहीं " भेला " की अनुपस्थिति आत्म-निर्भर, रचनाशीलता व्यक्तित्व को उजागर करती है और " छट रहा मेला " के विषाद को पीछे कर देती है । विषाद और उपलब्धि की ऐसी ही सह-अवस्थिति की जटिलता को कवि ने कितनी सहजता से आम की सूखी डाल के बिंब में अनुस्यूत कर दिया है, यह " स्नेह-निर्झर बह गया है " गीत में देखा जा सकता है ।" गीतिका " के क्लिष्ट शब्दावली में रचे सिद्धि आत्मसाक्षात्कार के गीतों के सामने " अणिमा " का यह गीत द्रष्टव्य है, जिसमें सिद्धि का सारा उल्लास और आत्मीय अनुभव बहुत अनौपचारिक ढंग से अंकित किया गया है -

मैं बैठा था पथ पर
तुम आये चढ़ रथ पर ।
हँसी किरण फूट पड़ी
टूटी जुड़ गई कड़ी
भूल गये पहर घड़ी
आई छवि अथ पर।

उतर बढ़ गयी बाँह
पहले की पड़ी छाँह
शीतल हो गई देह,
बीती अविकथ पर ।

यहाँ " आई इति अथ पर " के मित-कथन में सिद्धि की शुरुआत और परिणति को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी गई है । इसी भावभूमि के या अन्य कोटि के दार्शनिक गीतों में पहले कवि लम्बे-लम्बे रूपकों, समास-पदों की योजना करता था, किन्तु अब उसकी प्रवृत्ति सज्जा (भले ही वह कितनी भव्य क्यों न हो) से उपराम होती जाती है ।

" अणिमा " की कुछेक कविताएँ ठेठ कथात्मक शब्दावली और संरचना की दृष्टि से सफल बन पड़ी है। " यह है बाजार " कविता में गाँव की रईस प्रवृत्ति प्रवृत्ति पर सूक्ष्म और सधा-व्यंग्य किया गया है - वर्णन की नितान्त रूखी समझी जानेवाली किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में बेमिसाल , लय-शून्य भाषा में । " लगेगी न बार ", " बैठाली " , " ब्याही " जैसे गँवार शब्दों का बेलाग प्रयोग देखने योग्य है -

"अच्छा है अगर करो पूरी चली ज्यों-त्यों,
टूटा रुपया खर्च होते लगेगी न बार ।"

और यह अंश - ,

"बैठाली क्या जाने ब्याही का प्यार ?"

रईस के रूप में बसी दुखिया नामक स्त्री से अनबन के बावजूद दुखिया रार नहीं कर सकता । परिस्थिति के आगे घुटने टेक देने की स्थिति को कवि कितनी कुशलता से अंकित करता है -

मगर निकलकर घर तेज कदम बढ़ा चला,
पिछली बातों का अगली बातों ने घोंटा गला,
दुखिया ने सोचा," इसके पीछे बिना पड़े भला ,
बैठा ले दूसरा तो सिंह से हूँ स्यार । "

दुखिया की मानसिकता को उरेहने के लिए देहात की इस टकसाली भाषा से बेहतर कोई अन्य भाषा-रूप नहीं हो सकता था । इसीलिए

जब यह कहा जाता है कि " निराला जिस आदमी की भाषा इस्तेमाल करते हैं, वह आदमी कविता में उतना ही ज़िन्दा है, जितना जीवन में " -[1] तो बात समझ में आती है ।

अणिमा " में प्रयोगवादी ढंग की कविता " चूँकि यहाँ दाना है " अपनी अजीबो ग़रीब संरचना के कारण उल्लेखनीय है । इसकी संवेदना कुछ-कुछ अस्पष्ट और पेचीदी है , तोड़-मरोड़ करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इस कविता में आज की पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग्यात्मक रीति से तीखा कुठाराघात किया गया है, जिसमें सारे संबंध , सारे क्रिया-कलाप यहाँ तक कि निकटतम आत्मीय माँ- बाप का रिश्ता - पैसे के आश्रित है ।" दाना " की यह शान है -

चूँकि यहाँ दाना है,
इसीलिए दीन है, दीवाना है
लोग है महफ़िल है
नग्मे हैं, साज़ है, दिलदार है और दिल है
शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है -

अन्य तीन कविताएँ मेरे घर के पश्चिम की ओर रहती हैं (३८) ," सड़क के किनारे दुकान है " और" जलाशय के किनारे कुहरी थी " भी अपनी संरचना में प्रयोगवाद को पूर्वाशित करती है, किन्तु उन्हें समझने में "चूँकि यहाँ दाना है" की तरह तोड़-मरोड़ नहीं करनी पड़ती ।

" बेला " (१९४६) मूलत: भाषिक प्रयोग है, जिसमें कवि ने उर्दू ग़ज़लों की रवानगी और लोकप्रियता से प्रभावित होकर उन्हें हिन्दी गीतों में ढालने की साहसिक कोशिश की है । लेकिन यह साहसिकता सर्जन के स्तर पर महत्त्वपूर्ण नहीं-ख़ास तौर से कवि की विराट् रचना-प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में । हिन्दी शब्दों की

---

१) कविता : सही भाषा की तलाश - विपिन्द्र
(आलोचना) माह जुलाई-सितंबर, १९७० ई० ।

अपनी विशिष्ट प्रकृति है (और यह बात हर भाषा के संबंध में सच है) , जिससे वे ग़ज़लों की संवेदना को उनके ख़ास ढंग के लोच को वहन करने में फ़ारसी-उर्दू शब्दावली की तरह सक्षम नहीं हो सकते। इतना ज़रूर है कि खड़ीबोली के खड़ेपन को सँवारने में एक खास ढंग से ये गीत कामयाब हुए हैं ; इनमें उच्चारण-संगीत की प्रतिष्ठा हुई है, जो इन गीतों के प्रणयन में कवि का एक विशिष्ट उद्देश्य रहा है (द्रष्टव्य " बेला का आवेदन)। ग़ज़लों की परंपरा से अलग कुछ गीत अपनी प्रकृति में बहुत रचनात्मक बन पड़े हैं-जैसे, बाहर मैं कर दिया गया हूँ , " मिट्टी की माया छोड़ चुके, " या प्रसिद्ध कजली " काले-काले बादल छाये न आये वीर जवाहर लाल । " बाहर मैं कर दिया गया हूँ " गीत में सीधे-सादे शब्दों के सहारे काव्यभाषा ने बाहर और भीतर के तनाव को सटीक अभिव्यक्ति दी है। काव्यभाषा के विकास-क्रम में " बेला के कुछ शब्द-प्रयोगों का उल्लेख आवश्यक होगा - निराला ने उर्दू-हिन्दी शब्दों के समन्वय या समास से नई रचनात्मकता विकसित करनी चाही है, किन्तु वे प्रयोग सफल नहीं बन पड़े हैं, जैसे - सुबहो-शाम ऐसे कामनाओं के चयन देखे (गीत सं० २०) ' दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं / निराशा के डोरे लिये जा रहे हैं " (गीत सं० ५२), " मुक्ति के गुलाब न चटके " (गीत सं० ८०) , " सायास बावले से " (गीत सं० ८२) । इनमें दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं और निराशा के डोरे लिये जा रहे हैं," प्रयोग तो प्रसंग से जुड़कर चामत्कारिकता की सृष्टि करते भी हैं, किन्तु अन्य प्रयोग सफल नहीं लगते। यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि कवि पहले भी फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का समास निर्मित कर चुका है -" परिमल की " परलोक " कविता का यह प्रयोग द्रष्टव्य है -" शत सहस्र-प्लुत-प्यालाकर्षण वीथिका " के पाँचवें गीत में कारुण-काम का समास " कारुण-कामायिये ।" ये दोनों उदाहरण भी सफल नहीं बन पड़े हैं, सिर्फ़ एक कौतुक की सृष्टि करते हैं।

" नये पत्ते " (१९४६) भाषा और संवेदना दोनों संदर्भों में कवि का विशिष्ट संकलन है, जिसमें " कुकुरमुत्ता " के पहले संस्करण की ६ कविताओं के साथ अन्य नवीन कविताएँ हैं। कुत्ते को छोड़कर शेष सभी कविताएँ " कुकुरमुत्ता " से शुरू हुई रचनात्मक सहज-विकास की यात्रा को और आगे बढ़ाती है। प्रयोगशील भाषा का बहुत अच्छा उदाहरण " खजोहरा " में है, जिसे पूर्वाग्रही दृष्टि से परखने पर

उसकी रचनात्मक मूल्यवत्ता नहीं पहचानी जा सकती । यहाँ कवि उन्मुक्त रीति से व्यंग्य की सृष्टि करता है -

दौड़ते हैं बादल ये काले काले,
　　हाईकोर्ट के वकील मतवाले ।
जहाँ चाहिए, वहाँ नहीं बरसे,
　　धान सूखे देखकर नहीं तरसे ।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
　　कल्ले लगाते हुए टूट पड़े ।
फिर भी यह बस्ती है मौद पर
　　नातिन जैसे नानी की गोद पर,
नाम है झिंगी, बनी है भू-तुम्बी
　　जैसी लौकी की लम्बी है तुम्बी ।

इस बेलाग व्यंग्य में शोषण से उपजी जो पीड़ा है, वह 'बेला' की प्रसिद्ध कजली ('काले-काले बादल छाये न आये वीर जवाहरलाल') की याद दिला देती है, यद्यपि उस कजली में व्यंग्य की सीधी मार है। कविता को तमाम बाह्य उपकरणों से मुक्ति दिलाकर उसे स्वायत्त बनाने की चेष्टा 'नये पत्ते' की खास विशेषता है।' कुत्ता भौंकने लगा ' जैसी एक नज़र में बेहद वर्णनात्मक लगनेवाली कविता अपनी कठोर गद्यात्मकता में सार्थक व्यंग्य की सृष्टि करती है। 'कुकुरमुत्ता' में फिर भी निराला व्यंग्य के लिए तरह-तरह के कौशलों का उपयोग करते हैं - ठेठ बिंबों और छंदों का। किन्तु 'नये पत्ते' की इन कविताओं की सपाट बयानी में निहित तल्खी कायम है। बेहद ठंडक पड़ने से सारी फसल नष्टप्राय हो गई है, खेतिहर निराश हो चुके हैं। कवि इस कठोर परिवेश को वर्णन में प्रामाणिक बनाने के लिए उसी से सिरजी भाषा का उपयोग करता है और, तभी उसकी अनौपचारिकता में भरा-पूरा व्यक्तित्व उभरता है -

एक फूटे पलके पाला पड़ा था
अरहर फूल की फूल मर चुकी थी

हवा हाड़ तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठ खड़े हैं,
खेतिहरों में जान नहीं,
मन मारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए
कुहरा छाया हुआ ।

सुखद आश्चर्य तो यह एहसास से उपजता है कि ऐसी बेलौस भाषा 'स्वशब्दवाच्यत्व' से एकदम अलग है, और यहीं पर कविता कविता बनती है - नारेबाज़ी ,प्रचार के बिलकुल विपरीत । अरहर का कुल-का-कुल मरना, हवा का हाड़ तक बेधना, गेहूँ के पेड़ का ऐंठ खड़े होना, बेजान खेतिहरों का एक दूसरे से गिरे गले बातें करना - यह है शब्दों की बनावट, जिसमें पाले की स्थिति सजीव हो उठती है । निराला ने अपने एक निबंध में गद्य को जीवन-संग्राम की भाषा बतलाया है, उसको संदर्भित करते हुए डॉ० नामवर सिंह ने ठीक ही कहा है कि 'निराला की परवर्ती काव्यभाषा की कुंजी वही गद्य है । निराला की परवर्ती कविता की भाषा उसी तराशे हुए गद्य के साँचे में ढलकर निखरी है और आज कवियों ने यदि नई कविता को रूढ़ियों से मुक्त कर एक नई जीवंत भाषा गढ़ने में क़ामयाबी हासिल की है, तो उसमें कहीं-न-कहीं निराला का भी हाथ है ।[2]'

परवर्ती गीतों की लयात्मक उद्भावनाएँ 'गीतिका' के गीतों की-सी ही विविधता को क़ायम किये हुए हैं, अंतर यह है कि अब कवि ने हिन्दी के निजी गीति-सौन्दर्य को विकसित करने की कोशिश की है । कुछ रूपों में तो यह कोशिश 'गीतिका' के संस्कृत निष्ठ गीतों से अधिक प्रीतिकर लगती है । निष्कामता की सूक्ष्म स्थिति के अंकन में कवि एक बिलकुल घरेलू बिंब का प्रयोग करता है । 'आराधना' के [illegible] गीत का यह अंश द्रष्टव्य है -

जिस नभ से आया मन भाया
समझ भी कुछ न समझ पाया,
ऐसे निष्काम हुई काया,
जैसे कोई खाड़ी-कमीनी ।

झीनी साड़ी का बहुत सहज और दक्ष ढंग से बिंब-रूप में उपयोग निष्कामता में निहित स्वच्छता, पवित्रता और पारदर्शिता को गहरा देता है और कामना से ही उपजी निष्कामता की स्थिति संबद्ध हो जाती है, कविता का अनुभव बन जाती है। ' साड़ी ' में जो सौन्दर्य और कामना है, ' झीनी ' जोड़ देने से जैसे वह घुलकर निखर जाती है।

संबंधों के अजनबीपन को कवि ने पहले अनेक गीतों में मुखरित किया है। ' गहन है यह अन्धकार ' (अणिमा) ' बाहर मैं कर दिया गया हूँ ' (' बेला ') जैसे गीत उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में ' अर्चना ' का पृथ्वाँ गीत बहुत ठंडे ढंग से, लय के ठहरेपन में मानवीय विसंगति को - या यों कहें आधुनिक जीवन की विसंगति को—उभारता है :

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को।

चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल, देखो।

भर गया है जहर से
संसार जैसे हार खा कर
देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर,
बुझ गई है लौ पृथा की,
जल उठो फिर सींचने को।

ऐसी इकहरी रचना में संगीत का जो सौन्दर्य (और मार्के की बात यह है कि वह ठेठ हिन्दी का है) पनपा है, वह विशेष रूप से आत्मीय

है। दूसरे शब्दों की खामोश भंगिमा में जो "ट्रेजिक" गहराई है, वह आधुनिक हिन्दी भाषा के स्वतन्त्र, समृद्ध व्यक्तित्व का साक्ष्य देती है। वेदना को रोकने की कोशिश ही वेदना को गहरा देती है। अन्तिम अंश की गहरी बेचैनी को "देखते" क्रिया में किस साफगोई से कवि ने अनुस्यूत किया है -

देखते हैं लोग लोगों को
सही परिचय न पाकर,

यह देखना "सामान्य" देखने" से कितना भिन्न है, इसका एहसास पूरे प्रसंग को समझने पर ही होता है। कहने को ये दो पंक्तियाँ बहुत सादी हैं, बल्कि पूरी कविता में सब से सरल गद्यानुवाद की आवश्यकता नहीं; किन्तु आधुनिक विसंगति से उपजे दमघोंट विषाद और तनाव को कलात्मक खामोशी के साथ ज़ेहन में उकेली है - "सही परिचय न पाकर लोग लोगों को देखते हैं"- यहाँ सारे शब्द परिचित और गद्य-कल्प हैं, मगर कवि के आत्म-मंथन, आत्म-अनुभूति, वैयक्तिक पीड़ा से छनकर आने के कारण बिलकुल ताज़े! काम के शाप-रूप में कवि प्रसाद ने मानवीय जीवन की विडम्बना को इस तरह रखा है - "हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता/पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता।" ('कामायनी')

इस विडम्बना को निराला ने गीत के वैयक्तिक रूप में अधिक मार्मिक और सब से बढ़कर कातरता मिश्रित आक्रोश के साथ मुखरित किया है। युग की विसंगति को, उसके पूरे तनाव में इन परवर्ती गीतों की अनौपचारिक-आत्मीय भाषा खोलती है।

निराला की काव्यभाषा के विकास-क्रम में परवर्ती गीतों की भाषा का महत्व दो कारणों से है - एक तो इनकी रचना के दौरान अपनी रुग्ण मनःस्थिति के फलस्वरूप अथवा चमत्कारिकता से उत्प्रेरित होकर कवि तुकों, अनुप्रासों और लयों से खेलने लगता है, अन्तिम काव्य-संकलन "सांध्यकाकली" (मरणोत्तर प्रकाशन) के कुछ गीतों में यह प्रवृत्ति सब से ज्यादा प्रबल है। दूसरे, बहुतेरे गीतों की भाषिक संरचना कवि की वैयक्तिक रुग्णता के बावजूद भरपूर जीवनी-शक्ति से संपन्न है। इसी कारण कवि आधुनिक परिवेश के तीखेपन को ही

नहीं छूता चलता, अपितु भक्तिकालीन संवेदनाएँ- कातरता, आस्था, स्नेह, वैराग्य भी खड़ीबोली के अपेक्षाकृत गंभीर रूप में ढालता है। आधुनिक जीवन के तनाव और मध्यकालीन आस्था का यह सामंजस्य निराला के समृद्ध, संश्लिष्ट व्यक्तित्व का प्रमाण है।" आराधना " के गीत - कामरूप हरो काम "," अशरण-शरण राम " में " विनय-पत्रिका " की संवेदना मुखरित हुई है।" अर्चना " के " घन आये घनश्याम न आये " और " गीतगुंज " के जिधर देखिये श्याम विराजे " में कृष्णभक्त कवियों की अगाध विह्वलता और एकतानता है।" अर्चना " की " स्वयोक्ति " में कवि ने कहा है -" खड़ीबोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं।"[1] सचमुच विविध भावभूमियों में कवि ने खड़ीबोली का उपयोग किया है,उसे माँजा है।" कुकुरमुत्ता " और विशेषत:" नये पत्ते " की जन-संवेदनापरक कविताओं की रचना-प्रक्रिया के उदाहरण भी परवर्ती गीतों में मिलते हैं। गीतों में यह संवेदना धीरे-धीरे और मार्मिक ,तीखी तथा निर्मम हो गई है।" ऊँट-बैल का साथ हुआ है, " मानव जहाँ बैल घोड़ा है- जैसे", आराधना " के गीत अपनी सपाट बयानी में पूरे-के-पूरे युग की अमानवीयता, शोषण को उघाड़ देते हैं।

कवि की मृत्यु के बाद प्रकाशित " सांध्य-काकली " संकलन (१९६९ ई०) काव्यभाषा में विकास-क्रम के अन्तर्गत अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। यों तो" सांध्य-काकली के आरंभिक २२ गीत पूर्ववर्ती गीत-संकलन" गीतगुंज " से संगृहीत कर लिये गये हैं, और जो नये गीत हैं, उनमें से अधिकांश कवि की रुग्ण मानसिक अवस्था को घोतित करते हैं - कहीं अर्थ के नाम पर पहेली है, जैसे - ३०वाँ गीत। एक अंश इस प्रकार है -

तेरा पानी मरन जानी है, मानी है।
बेला हारी में लासानी है, सानी है।

गीत संख्या ३१ में अकार-भंग और अकार-विपर्यय के अलावा कोई विशिष्टता नहीं, और ये विशिष्टताएँ भी किसी खास कुतूहलात्मकता की ओर इंगित नहीं करती -

ताक कमसिन वारि,
ताक कम सिन वारि,

१) अर्चना, पृ० ४

(हाँ, इनसे यह अवश्य समझा जा सकता है कि निराला के मन में काव्यभाषा को लेकर आरंभ से अंत तक एक रचनात्मक बेचैनी बनी रही । वे उसके किसी एक स्थिर रूप से संतुष्ट नहीं हो गए ।)

पूर्ववर्ती गीतों में कहीं-कहीं चमत्कार की जो प्रवृत्ति रही है (" आराधना " का " हलके हल के पैमाने क्या " द्रष्टव्य है) उसकी चरमता " सांध्य-काकली " के गीतों में देखी जा सकती है । कुछेक गीत अपने समूचे विधान में और शेष कुछ अपने फुटकल अंशों में इस बात का अच्छा संकेत देते हैं कि कवि अपनी स्वस्थ मनोदशा में, सृजन के दौरान , भाषा से भरपूर रचनात्मक कार्य लेता रहा, उसकी भंगिमाएँ बनाता रहा । कवि अब भी जटिल मनोवेगों को, आत्मिक पूर्णता के अनुभव को, जीवन के सूनेपन को गीत की नई भंगिमा में अनुस्यूत करता है यह नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता । इसी गीत में भोगे हुए जीवन की रचनात्मक अवस्था और उसके साथ-साथ वृद्धावस्था एवं आसन्न मृत्यु का एहसास कवि नये ढंग से करता है-

जय तुम्हारी देख भी ली,
रूप की गुण की, सुरीली ।

वृद्ध हूँ मैं, वृद्धि की क्या
साधना की, सिद्धि की क्या,
खिल चुका है फूल मेरा
पंखड़ियाँ हो चलीं ढीली ।

जीवन का पूरा आस्वादन कवि कर चुका है । अब वृद्धावस्था में उसके आकर्षण में क्या नवीनता हो सकती है ? यौवन ढलने की स्थिति के अंकन के लिए वह फिर से फूल का बिंब रचता है - फूल अपने विकास-काल में खिल चुका है, अब तो उसकी पंखड़ियाँ ढीली हो चली हैं । यौवन की अस्थिरता और जीवन की परिवर्तनशीलता के लिए यह बिंब बहुत संगत बन पड़ा है । यौवन और वार्द्धक्य - प्रतीकात्मक रूप में उल्लास और थकन - के परस्पर विरोधी रूपों को कवि भाषा में इस तरह उतारता है -

चढ़ी थी जो आँख मेरी
बज रही थी जहाँ भेरी

वहाँ सिकुड़न पड़ चुकी है
बढ़ रही है रेख नीली ।

" आँख चढ़ी " होने के ठेठपन में जीवन का आनन्द उल्लास मूर्त हो गया है, " भेरी बजने " की स्थिति उसमें सघनता ला देती है । इसकी और आँखों में सिकुड़न पड़ जाने, और - नीली रेख के बढ़ते जाने का उल्लेख उस आनन्द-उल्लास को बिल्कुल पीछे कर देता है । अंत में आसन्न मृत्यु के आभास से जीवन की उष्णता के ह्रास का मार्मिक अंकन हुआ है -

आग सारी फुँक चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
याद करता हुआ जीवन
जीर्ण जर्जर आज तीली ।

ऐसे अंशों में कवि चमत्कार से बिल्कुल परे हटकर जीवन को उसके निकटतम रूप में देखने की कोशिश करता है । सारी आग के फुँकने, रागिनी के रुकने की तेजशून्यता का एहसास अंतिम दो पंक्तियों में मूर्तिमन्त हो गया है -

याद करता हुआ जीवन
जीर्ण जर्जर आज तीली ।

जीवन अपने उपभोग्य रूप में वृद्ध कवि के सामने नहीं है, केवल उसकी याद की जा सकती है । निराला की हस्तलिपि में इस गीत का एक और पाठ है, जो " सान्ध्य-काकली " में संकलित है । वहाँ 'याद करता हुआ जीवन' के बजाय 'स्मरण में है आज जीवन' प्रयोग है, जो स्मृति-रूप में शेष (अन्यथा अपने अधिकार से बाहर) जीवन की ऊष्मा को अधिक मार्मिक तीखेपन के साथ गहरा देता है । पूर्ववर्ती गीतों -" मैं अकेला, " " स्नेह - निर्झर बह गया है ", " मग्नतन रुग्ण मन " की संवेदना से मिलता-जुलता यह गीत अभिव्यक्ति की नई बानगी प्रस्तुत करता है ।

निराला की अंतिम कविता " पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है " बहुत विस्तार से संवरण-समय का अंकन करती है । अंतिम कविता की रचना में कवि ने फिर अपनी असाधारण वाक्य-योजना, एकांत तत्सम और ठेठ तद्भव

शब्दों के मेल से सिरजी सृजनात्मक भाषा, अनुकरण धर्मिता से बिल्कुल मुक्त जटिल रचना-विधान का परीक्षण नये सिरे से किया है, और अपने में यह सुखद अनुभव है कि यह परीक्षण बहुत सफल बन पड़ा है।" पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है " के रूप में कवि राग-द्वेष से अपनी असंपृक्ति का उल्लेख करता है, सारी लांछनाओं, अपमानों का विष बुझ चुका है यानी आसन्न मृत्यु के निकट उसका तटस्थ मानस उनका अनुभव ही नहीं करता। संवरण-समय होने के बावजूद अपने भरे-पूरे व्यक्तित्व के एहसास से वह पराजय का बोध नहीं करता -

आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुन्ज में,
अंधकार-पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है

" सुझा " क्रिया की ठेठ तद्भवता में रसी-बसी घुलनशीलता तत्सम संज्ञा " रश्मि के आलोक का और उन्मुक्त प्रसार करती है। यहाँ अपने जीवन को लीला-भाव से देखने की प्रवृत्ति इस तरह के अंकन की ओर कवि को प्रेरित करती है -

लीला का संवरण-समय फूलों का जैसे
फलों फले या झरे अफल, पातों के ऊपर
सिद्ध योगियों जैसे या साधारण मानव
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।

भीष्म के रूप में परिकल्पित करके कवि इस सारे संवरण-समय के प्रति उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व दृष्टि प्रस्तुत करता है। यह संवरण-समय फलयुक्त फूलों की तरह झरेगी या अफल झर जाएगा, सिद्ध योगियों की भाँति अवसान होगा या साधारण मानव की तरह इसका पता कवि को नहीं। अपने समृद्ध काव्य-सृजन के बोध से उत्पन्न आनन्दानुभूति का अंकन कवि ऋतु-सुखों के सिंहावलोकन के माध्यम से करता है। अंत में, अपनी शक्ति-संपन्न देह (और किसी स्तर पर मन भी) की जीर्णता का ठेठ चित्र प्रस्तुत करने के बाद कवि जीवन के नये प्रभात की आशा करता है -

झूल चुकी है खाल ढाल की तरह तनी थी।
पुनः सवेरा, एक और फेरा है जी का।

निराला की समूची काव्य-सृष्टि का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि उनका विराट् काव्य-व्यक्तित्व सदैव अन्वेषी, बेचैन और उत्साही रहा है। अगर कवि " जुही की कली " को उसकी पूरी सुकुमारता में चित्रित करता है, तो " रानी और कानी " में कानी रानी की कठोर दिनचर्या और उसके मानसिक द्वन्द्व को उभारता है। " राम की शक्ति-पूजा ", " तुलसीदास ", में अभिजात धर्मी कलाकार की बेचैनी मुखरित हुई है, दूसरी ओर " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " के प्रणयन में परिवेश-प्रवण कवि व्यक्तित्व की पूरी सजगता दिखाई देती है। यहाँ तक कि " बेला " की ग़ज़ल परंपरा के अधिसंख्य गीत यद्यपि निराला-काव्य की उपलब्धि किसी भी मूल्य पर नहीं है, लेकिन उनकी रचना में भी कवि का आत्म विश्वास संखलित नहीं हुआ है। उसका कहना है - " प्राय: सभी दृष्टियों से उनको (पाठकों को) फ़ायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है।" (द्र० " बेला " का आवेदन)। यह विश्वास कि वह कुछ दे रहा है, कभी मात नहीं होता और गत्यात्मक व्यक्तित्व में इसकी अवस्थिति उचित भी है - 'पर अनश्वर था सकल पल्लवित -पल " । डॉ० रामरतन भटनागर ने ठीक ही कहा है कि " निराला के काव्य में खड़ीबोली का काव्य संभावनाओं के संसार में विचरण करने लगता है। "[१]

दूसरी बात यह है कि निराला में एक ही काल में विविध रचना- प्रक्रियाएँ जागरूक रही है, " अनामिका " और " अणिमा " संकलन इस कथन का अच्छा प्रमाण देते हैं। अत: निराला की काव्यभाषा के विकास का अध्ययन काल-क्रम में करने से यह परिणाम नहीं निकाल लेना चाहिए कि अमुक भाषा-रूप उनके काव्य में अमुक काल में उभरा और फिर बाद में अमुक भाषा-रूप विकसित हुआ। वास्तविकता तो यह है (और यह उनके निर्बन्ध काव्य-व्यक्तित्व का प्रमाण है) कि वे किसी भी भाषा-रूप से बँधते नहीं है। मोटे तौर पर, समझने की, विश्लेषण की, सुविधा के लिए कहा जा सकता है कि अपने आरंभिक काव्य में वे तत्सम-धर्मी रहे है, परवर्ती काव्य में तद्भव-प्रिय। शब्दावली के रचनात्मक प्रयोग को रेखांकित करने की दृष्टि से उनकी विकास-यात्रा तत्सम, तद्भव से देशज की ओर रही है। लेकिन परवर्ती गीतों के तद्भव रचना-विधान के दौरान भी काफी संख्या

---

१) निराला और नवजागरण, पृ० १-१८

में संस्कार-निष्ठ गीतों की निर्मिति हुई है । और अधिकतर तो एक ही विधान में उन्होंने तत्सम-तद्भव की टकराहट से भाषिक ऊर्जा उत्पन्न की है । कवि की वह प्रवृत्ति उसकी भाषिक उन्मुक्तता और रचना-शक्ति की परिचायिका है । एक ओर उनकी काव्य-भाषा में अतिशय भव्यता, गहन गीतात्मकता, सूक्ष्म परिष्करण है, दूसरी ओर उसमें अक्खड़पन, कथात्मकता और ठेठपन है । दोनों भाषा-स्तर निराला के काव्य-व्यक्तित्व के अभिनन्तम अंग हैं ।

(ख) विविध रूप

निराला के मानस में काव्यभाषा को लेकर गहरी बेचैनी उनके विविधभाषा-रूपों में मुखरित हुई है । उनकी भाषा की विविधरूपता जहाँ उनकी संवेदना की व्यापकता की ओर संकेत करती है, वहीं निराला के उन्मुक्त काव्य-व्यक्तित्व को उजागर करती है, जिसके कारण वे अपने को किसी एक भाषा-रूप से बाँधते नहीं; वरन् काव्यभाषा के विविध स्रोतों से रचनात्मक उन्मेष को गतिशील करते हैं ।

तत्सम शब्दावली पर आधारित निराला की काव्यभाषा का वैशिष्ट्य कई रूपों में देखा जा सकता है । समास-बहुल क्लिष्ट शब्द-योजना में उनका गहरा अध्यवसाय और शिल्पी रूप मुखरित हुआ है । काव्यभाषा के लिए अपेक्षित समाहार-गुण की अवस्थिति निराला ने इस भाषा रूप में बहुत कुछ समास-योजना की सहायता से की है । " राम की शक्ति-पूजा " के ओजस्वी छन्दों में समस्त पदों के कारण विशेष भास्वरता आ गई है । हनुमान का प्रचण्ड रूप ज्वालामुखी पर्वत के बिंब में अंकित हुआ है, लेकिन यहाँ देखने की चीज़ प्रवाहपूर्ण समास-योजना है - " उद्गीरित वह्नि-भीम पर्वत कपि चतुः प्रहर, " जो कवि यह घोषित करता है कि हिन्दी काव्यभाषा के व्याकरणिक क्रम की आवश्यकतानुसार सामासिकता की ओर ले जाया जा सकता है ।

समासों के आग्रह से मुक्त तत्सम-प्रधान काव्यभाषा का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग कवि ने किया है। इस तरह की भाषा के अन्तर्गत कठोर और कोमल दोनों रूपों की रचना में वे सिद्धहस्त हैं। " बादल-राग ", " जागो फिर एक बार "। " राम की शक्ति-पूजा " कविताओं में एक साथ दोनों रूपों का नियोजन हुआ है। विशेषत: जागो फिर एक बार " में कठोर और कोमल दोनों स्तरों पर जागरण की परिकल्पना भाषा के इन दोनों रूपों में बहुत प्रभावी बन पड़ी है।

तद्भव शब्दावली में रचनात्मकता की हर संभावनाएँ विवृत कर निराला ने अपनी काव्यभाषा की नयी दिशा विकसित की है, जिसमें क्लैसिकल भाषा के सभी उपादानों -कलात्मकलय, मुखर छंद, सुघरी शब्दावली को छोड़ दिया गया है। शब्द-प्रयोग की दृष्टि से उन्होंने तत्सम और तद्भव दोनों शब्दावली पर आधारित भाषिक संरचना में मौलिकता और विशिष्टता का परिचय दिया है, किन्तु तत्सम प्रधान काव्य में ये गुण निराला के गहन अध्यवसाय के बल पर समाविष्ट हो सके हैं, जबकि तद्भवधर्मी काव्य में उन्होंने स्वार्जित शब्दों की सृजन-क्षमता का उपयोग किया है। " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " में काव्यभाषा को समस्त आभरणों से मुक्त कर अधिक स्वायत्त और आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश है, ठीक उसी तरह, जैसे इन रचनाओं की संवेदना एकदम ठेठ है, जनपदीय है। " कुकुरमुत्ता " के मुँह से दुनिया भर के ज्ञान-विज्ञान की बातें कहलाकर निराला उसे कोई ज्ञानी संस्कारशील नहीं घोषित करते, वरन् उनका उद्देश्य चौंकानेवाली, व्यंग्यात्मक आधुनिक शैली के माध्यम से सामान्य साधारण (" कुकुरमुत्ता ") की सार्वजनिक प्रतिष्ठा है। परवर्ती गीतों - (अर्चना ", " आराधना ", गीतगुंज, " सांध्य-काकली " में संकलित) में भी निराला ने शब्दावली के तद्भव रूप की ओर अधिक झुकाव रखा है।

" कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " तथा परवर्ती गीतों की तद्भव-प्रियता में सूक्ष्म विवेक किया जा सकता है। " कुकुरमुत्ता " में प्रदर्शन की मुद्रा में ठेठ, ग्रामीण अतस्व तथाकथित " अनौचित्य " शब्दों को ढूँढ-ढूँढकर रखने की प्रवृत्ति है और विशिष्टता यह है कि निराला जैसे कुशल रचनाकार के द्वारा एक अंतरंग आवश्यकता के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण तद्भव की यह प्रदर्शन-प्रियता खटकती बिल्कुल नहीं, बल्कि कुकुरमुत्ता " के गंभीर अध्ययन के बाद वह एक विशिष्ट शैली के निर्माणकर्ता

के रूप में निराला को स्थान देती है। यह दूसरी बात है कि इस प्रकार की घोषित तद्भवता, आग्रहपूर्वक देशज, मदेस शब्दों की नियोजना पहली नजर में पाठक या समीक्षक को असामान्य लग सकती है, ठीक उसी तरह, जैसे पूर्ववर्ती क्लैसिकल काव्य - 'राम की शक्ति-पूजा ', ' तुलसीदास ' - में क्लिष्ट शब्दावली और दुरूह समास-योजना की अधिकता एक दृष्टि में निराला की काव्यभाषा के असंतुलन और पाण्डित्य-प्रदर्शन का एहसास कराती है, किन्तु पूर्वाग्रहरहित होकर गंभीर रीति से विचार करने पर वह संस्कार बहुल तत्सम शब्द-योजना और परवर्ती काव्य की तद्भवता दोनों ही कवि की योजनाबद्ध मानसिकता का प्रतिफलन लगती है ।' कुकुरमुत्ता ' की घोषित तद्भवता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

नहीं मेरे हाड़ काँटे काठ या,
नहीं मेरा बदन आठोंगाँठ का ।
रस-ही रस-में हो रहा,
सफ़ेदी को जहन्नम होकर रहा ।

नये पत्ते ' की भाषिक संरचना तद्भवधर्मी है । पहली कविता ' रानी और कानी ' की क्रियाएँ देखने योग्य है :-

रानी अब हो गई सयानी,
बीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीठे अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी ,

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उपेक्षित इन देहाती क्रियाओं में कवि ने कितना रचाव भर दिया है, यह उल्लेखनीय है । इन रूखी-मैली क्रियाओं में रानी की परिवर्तनशून्य और एकान्त कठोर दैनिक चर्या ग़ैर-रोमान्टिक तटस्थता के साथ उकेरी गई है ।' अणिमा ' की कुछ कविताओं -' यह है बाज़ार ',' चूँकि यहाँ दाना है ',' में भी भाषा के ठेठ रूप का प्रयत्नपूर्वक उपयोग करने की प्रवृत्ति है ।

किन्तु परवर्ती गीतों की तद्भवता अघोषित है, ठीक उसी

तरह जैसे इन गीतों की रचना में प्राय: आयासहीनता का अनुभव होता है। जो प्रयत्न है, जो आग्रह है, वह भी सहजता की ओट में हो गया है। गीतों के अपेक्षाकृत सूक्ष्म और लघु विधान में अनायास रीति से रखे गए तद्भव शब्द पूरे गीत को एक अतिरिक्त निखार और शांत चमक दे देते हैं। निराला की काव्यभाषा की प्रक्रिया के सन्दर्भ में अनेक बार उद्धृत और विश्लेषित "बासी" शब्द " (जग की हुई वासना बासी)" इसका एक अच्छा उदाहरण है। शब्दावली और गठन दोनों स्तरों पर तद्भवता को अपना कर कुशल कवि लोक-मानस की सूक्ष्म-संवेदनशील अनुभूति को पूरी सुकुमारता से गीत में मुखरित कर सकता है, करता है।" अर्चना" का" बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु " गीत इस कथन का व्यावहारिक निदर्शन है, जिसे पूरे का पूरा उद्धृत किया जाता है -

बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु।
पूछेगा सारा गाँव, बन्धु!

यह घाट वही जिस पर हँस कर
वह कभी नहाती थी धँस कर
आँखें रह जाती थीं फँसकर
काँपते थे दोनों पाँव, बंधु!

वह हँसी बहुत कुछ कहती थी
फिर भी अपने में रहती थी
सब की सुनती थी, सहती थी,
देती थी सब के दाँव, बंधु!

सामाजिक संकोच के बंधन में रहकर भी अपने प्रेम का निर्वाह करनेवाली ग्रामीणा प्रेमिका का अंकन इस मर्मस्पर्शी गीत में हुआ है, और गीत की यह मर्मस्पर्शिता परिचित आत्मीय और साथ ही अनायास प्रयुक्त तद्भवता के कारण संभव हो सकी है।" गीतिका " के " संस्कृतनिष्ठ गीत और " अर्चना "" आराधना "गीतगुंज " तथा" सांध्य-काकली " काव्य संग्रहों के ठेठ भाषा-गीत परस्पर विलोम से प्रतीत होते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे" तुलसीदास " और " कुकुरमुत्ता " की क्रमशः शास्त्रीय तत्सम-बहुल योजना।

निराला की काव्यभाषा का एक अन्य रूप (भले-ही वह एक प्रयोग हो)" बेला" में देखा जा सकता है, जिसमें कवि ने हिन्दी काव्य को उर्दू-फ़ारसी काव्य की रवानगी देने की कोशिश की है, यद्यपि इस कोशिश में वह बहुत कम अंशों में ही सफल हुआ है । फ़ारसी छंदों को हिन्दी काव्य में ढालने की प्रवृत्ति किसी रचनात्मक उन्मेष को नहीं जागृत करती । हिन्दी भाषा की सूक्ष्म व्यंजनात्मक प्रकृति उर्दू ग़ज़लों जैसी साफ़गोई, नाज़ुकमिज़ाजी, चामत्कारिकता का वहन नहीं कर पाती । इस रूप में देखने पर प्रयत्न की यह असफलता खुद कवि की अक्षमता को नहीं घोषित करती । इस प्रयोग की नियति यही हो सकती थी । एक उदाहरण इस प्रकार है :-

निगाह तुम्हारी थी,
दिल जिससे बेकरार हुआ,
मगर मैं ग़ैर से मिल कर,
निगाह से पार हुआ ।

उर्दू-फ़ारसी काव्य के वातावरण में इस तरह की संवेदना और कथन-भंगिमा जमती है, किन्तु हिन्दी काव्य के वातावरण में वह अर्थवान नहीं हो पाती । यह उदाहरण कवि की उर्दू शब्दावली और उर्दू-छंद योजना की बानगी दिखलाने के लिए दिया गया । उर्दू छंद में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग और भी असफल हुआ है :-

तुम्हें देखा, तुम्हारे स्नेह के नयन देखे,
पेशी सलिला, नलिनी के सलिल शयन देखे ।
प्रेम की आग बुझी, आग देह की जो लगी,
सुख के साथ जले, दुख के अयन देखे ।
सत्य की आँख बंधी-आँख-मिचौनी के लिए
सुब्हो-शाम रहे कामनाओं के चयन देखे ।

एक नई शैली की कौतूहलपूर्ण महत्वाकांक्षा के सिवाय इस गीत में विधान की प्रौढ़ता, संवेदना की कोमलता या तीव्रता जैसा कोई उल्लेखनीय तत्व नहीं दिखाई देता । अन्तिम पंक्ति में " सुब्हो-शाम " और " कामनाओं के

चयन " जो विशुद्ध उर्दू-संस्कृत प्रयोगों का मेल रचनात्मकता की सृष्टि नहीं करता है। " बेला " के जो गीत अनुभव के नये आयाम विकसित करते हैं- जैसे, बाहर मैं कर दिया गया हूँ (गीत सं० ३८), वे उर्दू-कथन प्रणाली से अलग है। अत: इस प्रसंग में उनका समावेश नहीं किया जा सकता। हाँ, उनकी सफलता कवि की ग़ज़लों के संबंध में उपर्युक्त मान्यता को प्रमाणित ही करती है।

तत्सम तद्भव के एकान्त प्रयोग से अलग दोहरे भाषा-शिल्प की सह अवस्थिति के रूप में निराला ने काव्यभाषा को एक लचीलापन दिया है और इस दिशा में वे आरम्भ से प्रयत्नशील रहे है। भाषा-स्तरों का यह दोहरापन शब्द-संयोजन और संरचना दोनों स्तरों पर तत्सम-तद्भव शब्दावली के सम्मिश्रण से संभव हुआ है। " अनामिका " संकलन की तीन कविताएँ " दान ", " अबेला " और " सरोज-स्मृति " शिल्प के दोहरे रचाव के उदाहरणस्वरूप रखी जा सकती है। " दान मे दोहरे शिल्प - क्लैसिकल और यथार्थपरक - का प्रयोग कवि ने क्रमश: सुकुमार और तीखी मन:स्थितियों को उजागर करने के अभिप्राय से किया हैं। प्रात:-पर्यटन में प्रकृति के मनोरम दृश्यों से प्रभावित कवि-कल्पना इस तरह के अंकन की ओर प्रवृत्त होती है। पहला अंश द्रष्टव्य है -

वासंती की गोद में तरुण
सोहता स्वस्थ मुख बालारुण
चुम्बित सस्मित कुंचित कोमल।
तरुणियों सदृश किरणें चंचल
किसलयों के अधर यौवन-मद
रक्तिम मधु उड़ते षट्पद,
खुलती कलियों से कलियों पर
नव आशा नवल स्पंद भर-भर।

सुखोन्माद में कवि मनुष्य को विश्व-क्रम में सर्वश्रेष्ठ स्थान देता है। कवि की इस कोमल परिकल्पना को आघात तब लगता है, जब वह पथ के एक ओर कृशकाय, कंकालप्राय भिखारी को बैठे हुए देखता है। कल्पना-विलास में रची हुई भाषा सहसा तीखी हो जाती है।-

अति क्षीण कण्ठ, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास
ढोता जो वह कौन-सा शाप ?
भोगता कठिन कौन सा पाप ?
यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर
जो बड़ी दया का उदाहरण
वह पैसा एक उपायकरण ।

मानव की श्रेष्ठता की परिकल्पना को चूर करनेवाले राम भक्त विप्रवर पर कवि की दृष्टि पड़ती है, तो शिव पर सलिल, दूर्वादल , ताण्डुल और तिल चढ़ाकर बाहर आते हैं और कपियों को झोली से पुए निकालकर देते हैं । कंकाल शेष भिक्षु की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती । अंतिम अंश का व्यंग्य देखने योग्य है -

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ।
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं -"धन्य , श्रेष्ठ मानव ।"

"दानव " और" मानव " की तुकों में निहित क्षोभ और व्यंग्य की संश्लिष्ट ध्वनियाँ समाज की विषम स्थिति को सामने लाती है । यद्यपि" दान " कविता में यथार्थपरक शिल्प का आग्रह नहीं है, शब्दावली प्रायः तत्समाधारित है ; किन्तु अपनी प्रकृति में वह कठोर है, यथार्थ निष्ठ है । प्रारंभिक अंश के अभिजातपरक शब्द-संयोजन से वह बखूबी रचनात्मक कुशलता के साथ जुड़ा है ।" वनबेला " में कवि के मानसिक द्वन्द्व-आहतत्व-बोध में निरादर, रचनात्मक व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन न होने से उत्पन्न विषाद को उभारा गया है, जिसका परिशमन उपवन की बेला अपने कर्म-कठोर और निःस्पृह जीवन का उदाहरण देकर करती है । आरंभिक अंश का प्राकृतिक दृश्य

और उससे कवि की मनोभूमि का सानुपातिक संबंध ग्रीष्मताप धरती और उत्तेजित कवि-मानस-विशुद्ध शब्दावली में अंकित हुआ है और उसके बाद कवि के आत्ममंथन (यथा" सोचा न कभी-अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी) की शुरुवात बोलचाल की भाषा में होती है ।" बेला " का उद्‌बोधन भी शुद्ध किन्तु सज्जा से पृथक् और प्रवाहपूर्ण भाषा में व्यक्त हुआ है । इस संदर्भ में एक अंश द्रष्टव्य है :

भाव में हरा मैं, देख मंद हँस दी बेला,
बोली अस्फुट स्वर से यह जीवन का मेला ।
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर ।
त्यों-त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर ।

" सरोज स्मृति " जैसी अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ और सुकुमार-मार्मिक कविता में शिल्प का दोहरा रचाव (और वह भी तत्सम के आभिजात्य से तद्भव के ठेठपन की नाज़ुक और साहसिक टकराहट प्रस्तुत करते हुए) और भी उल्लेखनीय है । अपनी युवा कन्या सरोज के संवरण-काल के दिव्य चित्रण के साथ " सरोज-स्मृति " कविता की शुरुवात करता है । एक ओर कवि कन्या के यौवन और विवाह की सुकुमार स्थितियों का बिना हिले-डुले अंकन करता है, जिसमें मालकौश का बिंब है, ऊषा का जागरण छंद है, भोगावती की उमड़न और बाँध का संश्लेषण है, और है - कवि के वसंत की प्रथम गीति शृंगार-स्वरूप सरोज की मूर्ति -

तू खुली एक -उच्छ्‌वास-संग
विश्वास -स्तब्ध बँध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर,
देखा मैंने, वह मूर्ति-धीति
मेरे वसंत की प्रथम गीति-
शृंगार ,रहा जो निराकार
रस कविता में उच्छ्‌वसित -धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग
भरता प्राणों में राग-रंग
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही.

ऐसे अंकनों के मध्य अपने कवि-जीवन की विडंबना, संपादक की अनीति और सब से बढ़कर काव्य कुञ्ज-समाज की सड़ी गली मनोवृत्ति पर तीव्र कशाघात कवि ने ठेठ, टकसाली भाषा में किया है :

वे जो यमुना के-से कछार
पद-फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते घोर-गंध,
उन चरणों को मैं यथा-अंध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ ऐसी नहीं शक्ति ।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह ।

छायावादी काव्य और निराला की उदात्त-कोमल कल्पना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली "सरोज-स्मृति" कविता में इस तरह के प्रयोगवाद को पूर्वाभासित करने वाले उपमानों - "यमुना के कछार", "उधार खाये के मुख", "चमरौधे जूते से निकलती गंध" - की बेलाग नियोजना निराला के विराट् काव्य-व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है, जिसमें शिल्प के प्रति शुद्धतावादी दृष्टिकोण न होकर भाषा और संवेदना का रचनात्मक रिश्ता क़ायम करने की तत्परता है ।

इन विविध भाषा-रूपों के अध्ययन से एक प्रश्न यह उठता है कि निराला की अपनी ज़मीन कौन-सी है, किस भाषा-रूप की ओर उनका अधिक झुकाव है ? वस्तुतः अपने जीवन की तरह निराला ने अपने काव्य को भी उन्मुक्त रखा है । इसी उन्मुक्तता के कारण वे किसी भी भाषा-रूप से अपने को बाँधते नहीं हैं, कोई भी भाषा रूप-रेखा भी सर्जनात्मक क्यों न हो - उन पर हावी नहीं होता, और सत्यात्मक कवि-व्यक्तित्व की यह प्रतिनिधि विशेषता है । अपनी ही बनाई हुई लीक को तोड़कर चलना रचना के क्षेत्र में अपूर्व सार्थकता का

परिचायक है, और तोड़ते चलने का यह साहस पुराने को हटाने के अभिप्राय से नहीं है, वरन् भाषा और इसी वजह से संवेदना के सतत उन्मोचन ,अन्वेषण और विकास के उद्देश्य से परिचालित है । तत्सम-प्रधान काव्य को हम एक दृष्टि से उनका प्रतिनिधि काव्य कह सकते हैं ; किन्तु रचनात्मकता और कुछ माने में अनुभव के अछूते आयाम तद्भवपरक काव्य में भी उपलब्ध होते हैं । कहना तो यह चाहिये कि उत्तरोत्तर कवि युग संपृक्ति के कारण तद्भव-धर्मी हो गया है । जहाँ उनका क्लैसिकल और रोमांटिक काव्य उनके " जड़िया " रूप (यद्यपि यह " जड़िया " रूप कुल मिलाकर चिंतन की गरिमा से संयुक्त है) को सामने लाता है, वहीं उनके वस्तुवादी काव्य में कविता को छन्द की सुकुमारता , लय के लोच, ध्वनि-आवर्त जैसे उपादानों से मुक्त कर अधिक यथार्थग्राही, आत्मनिर्भर और स्वायत्त बनाने की चेष्टा है ।

तत्सम और तद्भव संरचना के विश्लेषण-प्रसंग में एक कठोर और महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या निराला भाषा के परवर्ती ठेठ रूप में " राम की शक्ति-पूजा ", " तुलसीदास " या फिर " गीतिका " के गीतों जैसा सूक्ष्म - जटिल अर्थ-छवियाँ, अनुस्यूत कर सके हैं ? इस प्रश्न का सही उत्तर निराला की संवेदना के परिप्रेक्ष्य में ही दिया जा सकता है । परवर्ती गीतों में काफ़ी संख्या अस्पष्ट भावभूमि वाले गीतों की है । उनको छोड़कर संवेदना में गहरे-गंभीर कुछेक गीत अपनी तद्भवता और सहजता में बहुत सुन्दर बन पड़े हैं, और उनकी सादगीपरक गहराई में " गीतिका " के कलात्मक सौष्ठव से सम्पन्न गीत भी हल्के पड़ जाते हैं, किन्तु इस कोटि के गीतों से इतर जो अधिकतर गीत हैं, उनमें संवेदना बहुत सीधी है । कहीं प्रकृति का इतिवृत्तात्मक अंकन है, कहीं उत्सवों में उल्लसित जन-मानसिकता को वर्णन के स्तर पर स्वर दिया गया है । इन परवर्ती गीतों से पूर्व की रचनायें- " कुकुरमुत्ता ", " नये पत्ते " में तो खास तौर से सामान्य -साधारण की उनकी बोली-बानी के साथ काव्य में प्रतिष्ठा है । अतः संवेदना के विश्वसनीय अंकन के लिहाज़ से सामान्य -साधारण के जीवन से सिरजी हुई भाषा में जटिल और सूक्ष्म अर्थ-छवियों को पिरोना परिवेश-प्रवण कवि के लिए संगत न होता । लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सर्वत्र का जटिल जीवन तत्सम प्रकृति का आश्रित होता है । तद्भव शब्दावली पर आधारित भाषिक संरचना भी गहरी जीवन-स्थितियों से जूझ सकती है, जूझती है । यह अलग बात है कि निराला ने तद्भव शब्दावली पर आधारित भाषा की

(ग) प्रक्रिया

निराला की कविता में तत्सम शब्दावली की दूरगामी संभावनाएँ- बल्कि लगभग हर संभावना - विवृत हुई है। संस्कृत का यह शाब्दिक अभिजात्य जहाँ हिन्दी शब्द-भण्डार को समृद्ध करता चलता है, वहीं उसे गंभीर चिन्तन-मनन के लिए सूक्ष्म बनाता है। हिन्दी की व्यास-प्रकृति से भिन्न होने के बावजूद अपनी तत्सम-धर्मी काव्य-भाषा में संस्कृत और बँगला पदावली के प्रभाव के कारण साहसिक आत्मविश्वास के साथ-समास-योजना की प्रचुर अवतारणा करके कवि ने जैसे इंगित किया है कि रचनात्मक काव्यभाषा व्याकरण के भाषा-विज्ञान के स्थिरी कृत नियमों की अनुगामिनी नहीं होती। कहना न होगा कि निराला की काव्य-भाषा में अन्तर्निहित ओज और प्रवाह साथ ही गीतों के अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप-निर्माण में सामासिकता का प्रचुर योगदान है।" गीतिका " के अनेक गीत और " राम की शक्ति-पूजा " इस कथन के व्यावहारिक निदर्शन हैं। निराला की निर्माण-क्षमता पर उनके जीवनी-लेखक और निराला साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ० रामविलास शर्मा ने यह टिप्पणी की है : " धातु-प्रत्यय के अनोखे संबंध जोड़कर वह (निराला) नये अर्थ ही न निकालते थे, वह ऐसे अद्भुत ढंग से समास-रचना करते थे कि उनके संस्कृतज्ञ मित्र उमाशंकर वाजपेयी सिहर उठते थे।[१] विवेचन के इस बिन्दु पर यह भी अपेक्षा नहीं किया जा सकता कि निराला की क्लैसिकल काव्य-रचना में पाई जानेवाली दुरूहता जिसे बहुत जगह अर्थ-सघनता कहना उपयुक्त होगा, किसी सीमा तक लम्बे-लम्बे, जटिल समास पदों के कारण है। 'गीतिका' के गीत इस प्रसंग में दर्शनीय हैं।

तत्सम शब्दावली का कुशल प्रयोगकर्ता जिस आत्मविश्वास और कौशल के साथ, युग-अनुभूति का संकेत देता हुआ, तद्भव शब्दों को प्रश्रय देता है, वह उसकी काव्यभाषा के लचीलेपन का परिचायक है। इसी मोड़ पर आकर निराला

---

१) निराला की साहित्य-साधना, खण्ड १, पृ० ३०४।

छायावादी काव्यभाषा की सीमा बनाकर स्वयं उसे लाँघ जाते हैं । यों तो " कुकुरमुत्ता " से इस तद्भव-प्रियता की व्यवस्थित शुरूआत होती है, पर तद्भवों के प्रति कवि का झुकाव और उनका फुटकल रूप में रचनात्मक उपयोग करने की प्रवृत्ति पूर्ववर्ती कविताओं -" मित्र के प्रति "," सरोज - स्मृति " आदि में देखी जा सकती है । आगे चलकर " अर्चना "," आराधना ", " गीतगुंज " के गीतों में कवि ने तद्भव शब्दावली पर आधारित काव्यभाषा का बहुत प्रांजल, सुकुमार और जीवंत रूप प्रस्तुत किया है ।

निराला की एक खास विशेषता , जो उन्हें अन्य छायावादी कवियों से अलग करती है, यह है कि उन्होंने शब्द के बजाय शब्द-प्रयोग-विधि को अधिक महत्व दिया है, जिसका सब से अच्छा प्रमाण उन अंशों में देखा जा सकता है, जहां वे तत्सम शब्दों के बीच में निस्संकोच भाव से तद्भव शब्दों की विन्यस्ति कर देते हैं । तत्समों के बीच में पड़ा हुआ तद्भव शब्द अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता रखता है । " राम की शक्ति-पूजा " के आरंभिक अंश में " हूह " प्रयोग देखा जा सकता है -

राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह - क्रुद्ध कपि विषम- हूह,

परवर्ती गीतों में कवि ने तत्सम- तद्भव का और भी व्यापक और सर्जनात्मक ढंग से सख्य संबंध स्थापित किया है । यह प्रवृत्ति दो रूपों में है - एक है तत्सम संज्ञाओं, विशेषणों के बीच में तद्भव क्रियाओं की साहसिक विन्यस्ति: " आराधना " के प्रथम गीत " पद्मा के पद को पाकर हो " के तत्सम रचना-विधान की अंतिम चार पंक्तियों में क्रियाएँ देखने योग्य हैं :-

मेरी अलक छुटियगा पोंछे,
श्रम शरीर का पलक आँछे
उठे ऊर्ध्व मन से खींचे
मिले निलय में एक प्रखर हो ।

एक अन्य गीत " नाचो हे, रुद्रताल की दूसरी पंक्ति " आँचो का कुच-कराल " में भी तत्सम विशेषणों और तद्भव क्रिया " आँचो " की टकराहट हुई है और इस टकराहट से निखर कर ' आँचो ' प्रयोग सचमुच आँचने लगता है ।" अर्चना " के जागरण गीत " तिमिर दारण मिहिर दरसो " के भव्य संस्कार निष्ठ विधान में

"दरसो", "परसो", "बरसो", "हरसो" जैसी ठेठ क्रियाओं की सहज प्रतिष्ठापना द्रष्टव्य है । क्रिया-पदों का रचनात्मक प्रभाव संज्ञा-पदों की अपेक्षा दूरगामी होता है, उसमें एक सूक्ष्म खुलापन अधिक रहता है । क्रियापदों में तद्भव शब्दावली का प्रयोग जैसे तत्सम नामवाची शब्दों की तुलना में तद्भव क्रिया की श्रेष्ठता की ओर संकेत करता है । "आराधना" के प्रसिद्ध गीत "हिम के आतप के तप झुलसो" में जागरण का संदेश तत्सम संज्ञा, विशेषणों और तद्भव क्रियाओं के साहचर्य में बड़ा प्रभविष्णु हो गया है । कुछ पंक्तियाँ उदाहरण -स्वरूप द्रष्टव्य है :-

भीगे कठिन धरा निष्पावन,
कर चतुर्दिक छल अभिमावन,
बोये बीज सींचकर उलसो ।

"गीतगुंज" के आवृत्ति-परक गीत "जिधर देखिये श्याम विराजे" में और भी घरेलू क्रियाओं "गाजे", "साजे", "माँजे", "आँजे", "निवाजे", "सवाजे" का प्रयोग किया गया है । तत्सम संज्ञा और तद्भव क्रिया का यह आमना-सामना निराला की काव्यभाषा में शक्ति के एक मौलिक उत्स की ओर संकेत करता है। तत्सम-तद्भव के मेल का दूसरा रूप "राम की शक्ति-पूजा" के "छूह" की तरह है । तत्सम पदों की चमत्कारिकता से युक्त गीत में एक मामूली से लगनेवाले, एकदम घरेलू पर वस्तुतः बड़े बेदाम तद्भव शब्द का प्रयोग देखने योग्य है । "बेला" के ७८वें गीत का प्रारंभिक अंश इस तरह है :-

मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो, वे अपना घर फोड़ चुके ।
जग की सुन्दरता से ऊँचे
जीवन के प्राण अब हैं छूँछे
आकर्षण के अभियानी के
गतिक्रम को अब वे तोड़ चुके ।

आत्मिक मुक्ति की स्थिति के अंकन में परिनिष्ठित शब्दावली

के बीच " कुँहे " की सामान्य प्रकृति सचमुच जीवन के क्षणों का छोटापन, ऊनापन उजागर कर देती है । " कुँहे " जैसे ग्रामीण और इसीलिए काव्यशास्त्रीय दृष्टि से वर्जित तथा उपेक्षित शब्द की काव्यात्मक क्षमता यहाँ इतनी अधिक है कि उसकी टक्कर में सारे परिनिष्ठित शब्द फीके पड़ जाते हैं । " कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " के ठेठ देहाती वातावरण में देशज, भदेस शब्दों की काव्यात्मक विन्यस्ति अपनी सारी अर्थवत्ता के बावजूद बहुत साहसिक नहीं लगती (यद्यपि दूधनाथ सिंह ने " कुकुरमुत्ता " की भूमिका में इन उपेक्षित शब्दों के कुशल उपयोग के लिए निराला की बहुत सराहना की है), क्योंकि वहाँ तो संवेदना ही एकदम घरेलू है, जनपदीय है, किन्तु परवर्ती गीतों के इन उद्धरणों में संस्कारशील वातावरण के बीच बड़े बेलाग भाव से सृजन के स्तर पर ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग उपलब्धि की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

" आराधना " के एक प्रौढ़ गीत " तुम से लाग लगी जो मन की " का उल्लेख किये बिना तत्सम -तद्भव के मेल से रचित काव्यभाषा का अध्ययन अधूरा ही रहेगा -

तुम से लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी ।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी ।

अबोधित तद्भवना की ओर कवि का सहज झुकाव यहाँ द्रष्टव्य है, जिसके फलस्वरूप वह " स्नेह ", " प्रेम ", " लगन " के बजाय एकदम घरेलू शब्द " लाग " का प्रयोग करता है और उसके माध्यम से गीत के अनुभव को अधिक आत्मीय बनाता है । " वासना " के साथ " बासी " का प्रयोग बिलकुल नया है । कवि इस ढंग से नहीं कहता कि वासना नष्ट हो गई, मन उपराम हो गया ; वह कहता है वासना बासी हो गई । कहने का यह खास ढंग भाषा की काव्य मुक्ति को संभव बनाता है । " वासना " में उद्दाम आकर्षण है और " बासी " में है घोर उपराम । " बासी " की निपट घरेलू अर्थ-छायाएँ -अनुपयोगिता, शोभाहीनता, गंदगी तत्सम " वासना " के सारे आकर्षण को एक खास किस्म की " ऊब " में बदल

देती है और काम-वासना से मन के उपराम होने की स्थिति में इस ऊब के सन्निवेश के कारण सामान्य निवृत्तिपरक गीतों की तथ्यात्मक रूक्षता से अलग, इस गीत की अनुभव समृद्धि विकसित होती है । इस तरह " बासी " कोई " काशी " के तुक के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है, वरन सही अर्थों में रचनाशील कवि " बासी " की ठेठ गद्यात्मक अर्थ-छायाओं से गहरी काव्यात्मक संभावनाएँ उद्भूत करता है । कविता में शब्दों के गद्य-कल्प चयन को डी०जी० जेम्स ने एक रचनात्मक आवश्यकता के रूप में देखा है - इसके विपरीत, महान् कवि सब से गहरे काव्यात्मक प्रभाव के लिए सर्वाधिक गद्यात्मक शब्दों का अक्सर उपयोग करता है । मैं समझता हूँ, एक महान् कवि इतनी दूरी तक शब्दों के कभी भी अधीन नहीं होता, जिससे कि वह किसी शब्द को अपने कल्पनात्मक संप्रेषण के लिए साधन बनाने में असमर्थ पाए ।[1]

संज्ञा के अतिरिक्त क्रियाओं की बारीक पहचान के निराला की कविताओं से अनेक उदाहरण रखे जा सकते हैं । पहला उदाहरण " राम की शक्ति-पूजा " का है -

> है अमा निशा ; उगलता गगन घन अंधकार ;

यहाँ दैत्य के रूप में परिकल्पित गगन का चित्र है । " उगलता " में वमन क्रिया की व्यंजना है, जैसे गगन अपने अंदर घन अंधकार को आत्मसात न कर पाने की असमर्थता -स्वरूप उसे पृथ्वी पर उगल दे रहा है । ऐसा लाक्षणिक क्रिया प्रयोग एक अमूर्त- भयावह बिंब की सृष्टि करता है । एक दूसरा और सुकुमार उदाहरण इसी कविता के निम्न अंश में देखा जा सकता है -

> लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल-शेष-शयन
> खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन ।

" अतुल-बल-शेष-शयन " राम देवी की भीमामूर्ति से

---

1. On the contrary, the great poet frequently uses the most prosaic words for the most powerful poetic effects. The great poet, is never, I think, controlled by words to such an extent as to find any words incapable of becoming veehicles for his imaginative communications.
(Scheptieism And Poetry) - D.G.James, page 94.

आलोकित हो जाते हैं, उसी समय उनके नेत्रों में प्रिया सीता के " राममय नयन " खिंच जाते हैं । यहाँ " खिंच गये " क्रिया में जो एक बंकिम काव्यात्मकता है, चित्रांकन का भाव है, वह भयावहता को पीछे कर एक सुकुमार परिवेश की सृष्टि करता है । " सुमन भर न लिये " गीत (" परिमल ") में कवि ने क्रिया-प्रयोग में बहुत विशिष्ट जीवन रस भर दिया है -

सुमन भर न लिये
सखि, वसंत गया

सुमन चुने जाते हैं, भरे नहीं । किन्तु यहाँ " भरना " प्रयोग से सुमन की अर्थवत्ता, उसकी अनेक अर्थ-स्तरीय शक्ति व्यंजित होती है । कवि इस क्रिया प्रयोग द्वारा मनुष्य की भूल और मानवीय जीवन की बेबसी की ओर संकेत करता है, सुमन चुनने नहीं थे, भरने थे, उनसे अपना जीवन सार्थक करना था, पर समय रहते ऐसा न किया गया । सुमन इस रूप में फूल मात्र न रहकर संपूर्ण जीवन की सार्थकता का प्रतीक हो जाता है । जुही की कली में 'झकझोरना " क्रिया उद्दाम संवेदना निर्मित करती है -

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली ।

" झकझोर " जैसा ठेठ, ध्वन्यात्मक क्रिया-प्रयोग मलयानिल के रूप में पुरुष की तीव्र प्रसर-वासना, दुर्निवार उत्तेजना की सटीक अभिव्यक्ति करता है । कोमल संदर्भों में ऐसे ठेठ क्रिया-प्रयोगों की नियोजना निराला के साहसिक काव्य व्यक्तित्व की सूचक है । त्वरा और घबराहट की स्थिति के अंकन में कई क्रियाओं का पूर्वापर प्रयोग निराला की भाषा-संबंधी विशेषताओं में परिगणित हो सकता है, जैसे " शक्ति-पूजा " में राम की यह उद्विग्नता और कम्पन -

पश्चात् देखने लगे मुँह बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त ।

यहाँ दो पंक्तियों में पाँच क्रियाओं - देखने लगी ", " बँध गये ", खिंचा ", " बँधा ", " हुआ त्रस्त " - की नियोजना राम की विचलित अस्त-व्यस्त मनःस्थिति से अभिन्न रूप में संबद्ध है । काव्यभाषा के प्रमुख विधायक तत्त्व बिंब का बहुत कुशल और भरपूर प्रयोग निराला के आरंभकालीन क्लैसिकल काव्य में हुआ है । इस दृष्टि से उनकी स्थिति अपने सहयोगी और बिंबों के मंजे प्रयोगकर्त्ता जयशंकर प्रसाद से थोड़ी भिन्न है । जटिल-संकुल मानवीय वृत्तियों के संश्लिष्ट अंकन में प्रसाद की बिंब- रचना बहुत सूक्ष्म और सुकुमार है, और यहीं पर बाह्य सावधानी और सज्जा से उदासीन प्रसाद की काव्यभाषा समीक्षक के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है । निराला में प्रसाद की तरह बिंबों के बहुरूपी प्रयोग तो नहीं है, पर अपनी विराट् बिंब-योजना में शक्ति -उपासक कवि समूचे हिन्दी-काव्य में अतुलनीय है । इस प्रसंग में निराला के " बादल-राग " की विराटता दर्शनीय है, ख़ास तौर से वह अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें कवि बादलों को रणतरी का रूपक देकर एक साथ विशालता, भयावहता और शक्तिमत्ता की अवस्थिति करता है -

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया -
यह तेरी रणतरी
भरी आकांक्षाओं से
घन - - - - -

यहाँ बादल के रूप में रणतरी की परिकल्पना क्रान्ति के लिए विकल कवि-मानस को उभारता है । विराट् बिंब का दूसरा और निराला काव्य में बेजोड़ उदाहरण " राम की शक्ति-पूजा " का यह अंश है -

फूटा जटा-मुकुट, हो विपर्यस्त, प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार ।

राम के दृढ़ जटा-मुकुट विपर्यस्त होकर ,प्रतिलट से खुल पृष्ठ,बाहुओं और वक्ष पर फैल गये हैं, जो प्रकारान्तर से राम की मानसिक पराजय और अस्त-व्यस्तता के परिचायक है । ऐसे द्विधा-ग्रस्त राम की घोर निराशा और उसमें निहित हल्की आशा को कवि ने क्रमश: दुर्गम पर्वत पर उतरते हुए विपुल नैशांधकार और दूर कहीं पार चमकती ताराओं के बिंब में अंकित किया है । दुर्गम पर्वत, विपुल नैशांधकार और दूर चमकती ताराएँ महत्त्वाकांक्षी मानस की बेचैनी और क्षीण आशा को पूरी काव्यात्मक गरिमा के साथ अभिव्यक्ति देती है ।

सुकुमार प्रसंग में नियोजित विराट् बिंब की दृष्टि से 'सरोज-स्मृति' कविता का यह अंश उद्धृत किया जा सकता है -

क्या दृष्टि ! अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार ।
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील
पर बँधा देह के दिव्य बाँध
छलकता दृगों से साथ-साथ ।

अपने यौवन की अनुभूति से उत्पन्न उल्लास और लज्जा की विरोधी तथा साथ ही स्वाभाविक स्थिति को पुत्री सरोज की दृष्टि-अंकन में कवि ने संस्पर्श किया है । अपारभोगावती (पाताल गंगा) की ऊर्ध्व की ओर सवेग उमड़न , किन्तु पृथ्वी की एक निश्चित सीमा-रूपी बाँध का बंधन - यह है विराट् प्राकृतिक सत्य जिसे कवि ने अनजाने हर्ष और लज्जा से परिपूर्ण तारुण्य की मन:स्थिति से जोड़ दिया है ।

यों पर्वत में पार्वती-रूप का कल्पना (राम की शक्ति-पूजा देखा वस्तुतर , सामने स्थित जो यह भूधर ") पत्नी रत्नावली के रूप में शारदा की काल्पनिक अवतारणा ('तुलसीदास' - देखा शारदा नील वसना ") जैसे अंश विराट् बिंबों की कोटि में बड़ी आसानी से परिगणित किये जा सकते है, किन्तु उनमें एक उदात्त-भूत भाव के अलावा कोई द्वन्द्वात्मक मन:स्थिति ,जटिल मानसिकता नहीं उभारी गई है । इसलिए इन बिंबों में विराटता है, पर जटिलता नहीं ।

वस्तु और बिंब का पारस्परिक संघटन निराला के अनेक बिंब-प्रयोगों में देखा जा सकता है । काव्यभाषा की प्रबन्धशीलता ऐसे प्रयोगों में खासतौर से उभरती है । " राम की शक्ति पूजा " और " सरोज-स्मृति " का सद्य: विश्लेषित अंश इस प्रसंग में भी उल्लेखनीय है । दुर्गम पर्वत पर उतरता हुआ अंधकार राम की शारीरिक और मानसिक स्थिति से बहुत स्वाभाविक रूप में जुड़ जाता है और वर्णन की भाषा में संक्रमित होकर वस्तु और बिंब की समरसता प्रस्तुत करता है । ऐसे संघटित बिंब-प्रयोगों में प्रस्तुत-अप्रस्तुत द्वैत का निरसन अनिवार्य परिणति के रूप में समझना चाहिए । यौवन के परिज्ञान से सरोज के दृगों में छलके उल्लास और भीतर छिपी लज्जा की दुहरी अवस्थिति को अपार भोगावती के बिंब में कवि ने संगुम्फित कर दिया है और वर्णन में बहुत दूरी तक जाकर यह बिंब सरोज की सूक्ष्म-स्थिति से एकरूप हो जाता है । वर्ण्य और उसके बिंब की संपृक्ति के प्रसंग में कला-प्रयास और सहजता का बहुत संदीप्त उदाहरण " तुलसीदास " की इस पंक्ति में द्रष्टव्य है -

बोली भाभी, लाना कुंकुम शोभा को ।

बिलकुल बोलचाल के स्तर पर प्रयुक्त हुआ रत्नावली के लिए कुंकुम शोभा का यह बिंब उसके सौभाग्य सौंदर्य और गौरव को हल्के से उभारता है ।

बिंब-विधान के परंपरित उपकरणों को लेने के बावजूद संदर्भ का नयापन उन्हें अभूतपूर्व ताज़गी से भर देता है । निराला काव्य में इसके प्रचुर उदाहरण है । हिंदी काव्य परंपरा में " शतदल " एक बहुप्रयुक्त अप्रस्तुत है, किन्तु अपनी युवा-कन्या की मृत्यु से संतप्त कवि की विचलित मन:स्थिति के अंकन में वह भाषा को नई दीप्ति देता है :

हो इसी कर्म पर वज्रपात्
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के से शतदल ।

कवि अपनी क्षुब्ध मन:स्थिति में व्यर्थ प्रतीत होनेवाले कार्यों के भ्रष्ट होने की कामना करता है - वे ठीक उसी तरह भ्रष्ट हो जाएं, जैसे शीत के शतदल नष्टप्राय हो जाते है । निस्सार लगनेवाले कार्यों के प्रति विक्षोभ और आत्म-विश्वासहीनता को संवेध

बनाने के लिए श्रीहीन शीत के शतदल का बिंब नया और सटीक है। " प्रेयसी " कविता में प्रिय की निरलस दृष्टि का अंकन बिंब-योजना के परंपरित उपकरणों- पुष्प, सूर्य-किरण को लेने के बावजूद ताज़गी से भरपूर है :

कैसी निरलस दृष्टि !
सजल शिशिर-धौत पुष्प ज्यों प्रात में
देखता है एकटक किरण-कुमारी को

इस ताज़गी का एक कारण तो पुष्प के साथ एक भरे पूरे वातावरण की विन्यस्ति है। पुष्प शिशिर-धौत है, प्रात:काल का समय है । ये दोनों तत्त्व आलस्य शून्य दृष्टि को संवेद्य बनाते हैं । फिर शिशिर-धौत पुष्प के किरणकुमारी को एकटक देखने की प्रक्रिया में कवि प्रिय की निरलस दृष्टि में निहित ताज़गी, तल्लीनता, मुग्धता को संश्लिष्ट रूप में छूता है।

विचित्र प्रयोगों के माध्यम से भी काव्य-रूढ़ि तोड़ने की कोशिश निराला की काव्यभाषा को ऊर्जा प्रदान करती है।" गीतिका " का आमुख गीत द्रष्टव्य है -

हूँ दूर -- सदा मैं दूर ।
कल्लोलिनी-कला-कल-कलरव,
कुसुम-सुरभि समीर सुख अनुभव
कुमुद-किरण-अभिसार- के लिए नव
देख रहा तू भूल शर ।
हूँ दूर- सदा मैं दूर ।

यहाँ" कल्लोलिनी-कला-कल-कलरव " कुसुम-सुरभि "" कुमुद-किरण - अभिसार " जैसे प्रयोग छायावाद की शब्द-रूढ़िक्रम के हैं। आत्मिक मुक्ति के संदर्भ में ऐसे रूढ़ प्रतीकों और शब्दों को कवि नये अनुषंगों से संपृक्त कर देता है। छायावादी काव्य में ये शब्द उल्लास, उन्माद, स्वच्छंदता, उन्मुक्तता के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं ; किन्तु निराला इस कविता में इन शब्दों को तुच्छता, खोखलेपन के अर्थ में व्याप्त देते हैं। आगे की पंक्तियाँ इस संदर्भ में देखी जानी चाहिए-

" देख रहा तू मूल - शूर ।" कवि ठंडे व्यंग्यात्मक लहजे में (जो गैर-रोमाण्टिक कविता का गुण है) उन्मुक्त उल्लास के अंकन के लिए छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त " सुमन - सुरभि , कुमुद-किरण-अभिसार केलि " जैसे शब्दों को जीवन की व्यर्थता के रूप में परिकल्पित करता हुआ हल्का तिरस्कार करता है । काव्य-रूढ़ शब्दों को ऐसे नये संदर्भ से निखारने की प्रक्रिया सही अर्थों में सर्जनात्मक काव्य-भाषा की प्रतिनिधि विशेषता है ।

काव्य-रूढ़ि तोड़ने का दूसरा ढंग वह है, जिसमें कवि एक रूढ़ शब्द को लेकर उसके निकट एक ताज़ा शब्द रख देता है, जिसके आलोक से वह रूढ़ शब्द नवीकृत हो उठता है ।" गीतिका " के" स्पर्श से लाज लगी " गीत की यह पंक्ति द्रष्टव्य है -

प्रेम-चयन के उठा नयन नव,

शरीरोल्लास के अंकन में नेत्रों की सुकुमार क्रिया का कवि संकेत देता है । प्रिया के नयनों के लिए वह छायावादी काव्य में बार-बार आनेवाले " नव " जैसे प्रचलित शब्द को विशेषण रूप में प्रयुक्त करता है और यह " नव " विशेषण आश्चर्यजनक रूप से नयनों को" नवीनता " प्रदान करता है, जबकि एक काव्य-रूढ़ शब्द होने की हैसियत से उसको एक भाव-रूढ़ि मात्र जाग्रत करनी चाहिए थी । इस नवीनता के मूल में है -" प्रेम-चयन " का शब्द-विन्यास और उसमें अनुस्यूत ताज़गी । प्रिया के नयन प्रेम-चयन करने वाले हैं, प्रेम को चुनने के लिए तत्पर है अतः शरीर-सुख की इस स्थिति में वे" नव " प्रतीत हो रहे हैं । यहाँ यह संकेत देना संगत रहेगा कि निराला की तरह प्रसाद की कविता में भी छायावाद की शब्द-रूढ़ि-क्रम के प्रयोग (जैसे " मधु ," मलयज "," शिशिर "," शिरीष "," लहर") आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मधु-चर्या वाले आरोप के बावजूद एक नई संवेदना से परिपूर्ण हो जाते हैं, प्रसाद की विशिष्ट वैयक्तिकता ,उनका आत्म-मंथन उनसे एकरूप हो जाता है ।

अपनी काव्यभाषा की प्रक्रिया में कई बार कवि रूढ़ि को विपरीत प्रयोग या" कण्ट्रास्ट " से तोड़ता है, जैसे" आराधना " के प्रस्तुत गीत में -

छूने से अंग लगी जो मन की
तन की छुई वासना बासी ,

" वासना बासी" के इस प्रयोग में तत्सम तद्भव का रचनात्मक मेल अर्थ की दो विपरीत दिशाओं की ओर एक साथ उन्मुख होता है।" वासना " के आभिजात्य में जहाँ आकर्षण है, वहीं " बासी " के ठेठ रूप में उपराम की अवस्थिति है।" वासना " के साथ " बासी " जैसा यह नया और साहसिक प्रयोग कवि की पूरी मानसिकता को (जो इस गीत में उभरी है)," वासना " शब्द के परंपरित संस्कार को एक नयी दिशा में मोड़ देता है, जहाँ कोरी निवृत्ति के बजाय एक विशिष्ट ढंग की उदासीनता की अवस्थिति है।

इसी तरह कभी कवि एक परंपरित तत्त्व को संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर लेने के बावजूद उसमें नवोन्मेष भर देता है।" बेला " का ७८वाँ गीत द्रष्टव्य है :-

मिट्टी की माया छोड़ चुके
जो, वे अपना घट फोड़ चुके।
नभ की सुदूरता से ऊँचे
जीवन के दाग अब हैं छूछे
आकर्षण के अभिमानी के
गतिक्रम को जब वे तोड़ चुके।

सांसारिक माया से निरासक्त मानस के अंकन में नवीनता का एक कारण प्रथम दो पंक्तियों का वाक्य विन्यास है। कवि ने पहले तो मिट्टी की माया छोड़ चुकने का उल्लेख किया है, फिर अपना घर फोड़ने की बात कही है। जिसे मिट्टी में कोई आकर्षण नहीं महसूस होगा, वह स्वभावत: अपना घर फोड़ देगा। घट फोड़ने में शारीरिक मोह-माया से उपराम होने का कलात्मक संकेत है। मध्यवर्ती दो पंक्तियाँ पारस्पर अर्थात " कंट्रास्ट " से आत्मिक मुक्ति के अंकन में जीवन्तता की पुष्टि करती है। मुक्त मानस जहाँ ऊँचाई में नभ की दूरी का भी अतिक्रमण कर गया है (" नभ की सुदूरता से ऊँचे ") वहीं जीवन के दाग उसे अब छूछे लगने लगे हैं (" जीवन के दाग अब हैं छूछे)"। एक ओर आत्मिक मुक्ति की नभ से अधिक ऊँचाई है, दूसरी ओर जीवन के दागों का मामूलीपन है। मुक्त मानस जब नभ की सुदूरता से ऊँचा होता है और जीवन के दागों का छोटापन

महसूस करता है, इसका संकेत आगे की पंक्तियों में है -

आकर्षण के अभिमानी के
गतिक्रम को जब वे तोड़ चुके ।

अभिमानी का यह चित्र नभ की सुदूरता से ऊँची स्थिति के अंकन में नया और साथ ही समीचीन है । आकर्षण के अभिमानी के गतिक्रम को तोड़ने पर यानी आकर्षण जाल को छिन्न-भिन्न करने पर जीवन के प्राणों का " छूँछा " रूप आभासित होने लगता है । निराला का अपनी कविताओं में लय और विराम पर सधा हुआ अनुशासन है । हिन्दी भाषा की सांगीतिक संभावनाओं के दूरगामी विस्तार में, मँजी हुई गीत-रचना में लय और विराम का सूक्ष्म और सुकुमार कौशल कवि ने प्रस्तुत किया है । लय के विविध उपयोग की दृष्टि से उनकी अनेक कविताएं और गीत लिये जा सकते हैं । " परिमल " का " शेष " गीत दो लय-गतियों की टकराहट से भाषा को लचीली बनाता है और जीवनानुभूति को गहरे रंग देता है -

सुमन भर न लिये
सखि, वसंत गया ।
हर्ष-हरण-हृदय
नहीं निर्दय क्या ?

मानवीय जीवन की विडम्बना, लाचारी और अस्थिरता पर वसंत के आ कर लौट जाने के रूप में गहरा पश्चाताप किया गया है । इस जटिल मनःस्थिति को संवेद्य बनाने के लिए कवि लय का मौलिक रीति से निर्माण करता है। छोटी-छोटी पंक्तियाँ और उनमें निहित ठहराव से निर्मित लय बेचैनी और व्यथा की संवेदना से एकरूप हो जाती है । गीत के अन्त में लय का परिवर्तित रूप मिलता है

याद थी बाई
एक दिन जब शांत
वायु था, आकाश
हो रहा था क्लांत ,

ढल रहे थे मलिन मुख रवि, दुःख किरण
पथ-मन पर थी रहा अवसन्न वन,
देखती यह छवि खड़ी मैं साथ थे
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले
एक दिन होगा
जब न मैं हूँगा,
हर्ष-हरण हृदय
नहीं निर्दय क्या ?

बाद की पंक्तियों की अपेक्षाकृत दीर्घता में एक प्रकार की करुणा ढीलापन और ख़ामोश उदासी आ गई है। कवि ने सूर्यास्त के चित्र में प्रेयसी के जीवन के सूनेपन और संसार की अनित्यता को सूक्ष्मता और मार्मिकता के साथ नियोजित की है।

" विधवा " कविता में विधवा की मूक-असहाय मूर्ति के अंकन में काफ़ी दूर तक एक-सी वर्णनात्मक चलती है, जैसे -

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा -सी शांत भाव में लीन,

लेकिन कविता के अंत तक आते-आते कवि के मानस में विधवा के एकान्त दुःखमय जीवन के प्रति इतनी निकट सहानुभूति उद्भूत हो जाती है कि कविता की लय भी बदल उठती है, अब नमित, उदास, मार्मिक :

कौन उसको धीरज दे सके ?
दुःख का भार कौन ले सके ?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु-जल ?
या किया करते रहे सब को विकल ?
ओसकण -सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु भारत का उसी से सर गया।

छायावादी युग के प्रारंभ में लिखी गई ये कविताएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि इन कवियों ने खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में लय और संवेदना का निकटतम संबंध स्थापित करने की कोशिश की। स्पष्ट ही खड़ीबोली के परिष्कार में यह पहला महत्त्वपूर्ण क्रम था। मुक्त छंद की रचना में लय पर सधा हुआ अधिकार निराला की खास विशेषता है, जिसका बढ़िया उदाहरण उनकी प्रथम प्रकाशित रचना " जुही की कली " है। " स्नेह-स्वप्न -मग्न " ," अमल-कोमल-तनु-तरुणी " जुही की कली का अंकन प्रारंभ में अलसाई लय के माध्यम से हुआ है -

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी - स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल -पत्रांक में

ऐसी सुकुमारी प्रिया की बहुत मादक स्मृति दूर देश गए पवन के मानस में उभरती है। यह मादक स्मृति बदलती हुई तेज लय में साकार हो उठी है -

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कांता की कंपित कमनीय गात,

" मैं अकेला " ," स्नेह निर्झर बह गया है ", ऐसी रचनाओं में कवि ने अवसान की थकावट और विषाद को लय की एक अलग विशिष्ट बनावट में अभिव्यक्त किया है। इस भावभूमि की कविता " भग्न तन रुग्ण मन " (आराधना) लय की एकात्मता और खामोशी की दृष्टि से कवि के " भग्न तन रुग्ण मन " का मार्मिक साक्षात्कार संभव करती है। इस संदर्भ में लय के जटिल रचाव का कदाचित सब से अच्छा उदाहरण " अनामिका " का " मरण-दृश्य " गीत है, जिसमें कवि सर्वथा मौलिक लयात्मक अनुभावना के माध्यम से भाषा की मताानुगामिकता से मुक्त करता है। एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है -

विश्व सीमाहीन
बाँधती जाती मुझे कर कर
व्यथा से दीन।

कह रही हो - ' दु:ख की निधि
यह तुम्हें ला दी नयी निधि
विहग के वे पंख बदले -
किया जल का मीन,
मुक्त अम्बर गया, अब हो
जलधि जीवन को ।

विराम की सुकुमार और सतर्क विन्यस्ति निराला की काव्यभाषा की एक सूक्ष्म विशेषता है, जिसका लयधर्मी कवि को पूरा ध्यान रहा है । ' स्नेह-निर्झर बह गया है ' गीत का यह अंश उल्लेखनीय है -

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है - ' अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है । '

यहाँ ' नहीं आते ' और ' पंक्ति मैं वह हूँ लिखी ' के बीच का अंतराल कितनी काव्यात्मक सार्थकता से परिपूर्ण है, यह देखने योग्य है । आम की डाल के मन में अपनी अनुपयोगिता, शोभाहीनता, निरुद्देश्यता के एहसास से उत्पन्न मार्मिक पीड़ा को बीच का यह विराम रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है । ऐसे सुकुमार और सूक्ष्म कलात्मक संकेतों को उनकी पूरी अर्थवत्ता में परखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पाठक की अपनी मानसिक प्रक्रिया भी किसी सीमा तक कवि जैसी संवेदनशील हो, अन्यथा जल्दी पकड़ में न आनेवाली ऐसी सूक्ष्म कला-चेष्टाओं में निहित कविता की रचना-क्षमता का पूरा उद्घाटन नहीं हो पाता ।

अपने निर्वासन से उपजी वेदना और रचनात्मक व्यक्तित्व के एहसास से प्राप्त संतोष की दुहरी मनःस्थिति को ' बेला ' के अपने गीत में अर्द्ध-विराम से विशिष्ट ढंग से संबद्ध बना दिया है -

बाहर मैं कर दिया गया हूँ, भीतर पर भर दिया गया हूँ ।

खास तौर से यहाँ ' भीतर ' और ' पर ' के बाद के अर्द्ध-विराम भीतर भरे जाने की

सुखानुभूति को अतिशय सुकुमार रीति से रूपायित करते हैं ।

बिंब और वस्तु के संघटन की तरह ही निराला ने अलंकार को भाषा में पर्यवसित करने की कोशिश की है, जिसके फलस्वरूप वह कविता में ऊपरी सज्जा के रूप में न रहकर भाषा के साथ घुल-मिल जाता है । इस प्रक्रिया को भाषिक वर्णन में बिंब के पर्यवसान की प्रवृत्ति के समानान्तर रखने से यह तात्पर्य नहीं है कि यह बिंब की घुलनशील स्थिति की तरह ही कविता को अर्थ-समृद्धि प्रदान करती है। वस्तुत: जीवन-स्थितियों को उनके संश्लिष्ट रूप में साक्षात्कृत करने की महत्त्वाकांक्षी कोशिश में बिंब प्रक्रिया की विशिष्टता बिलकुल अकेली और अलग है । शाब्दिक अलंकरण का प्रयोग आधुनिक कवि कला-प्रयास और सहजता का मेल-मिलाने के लिए करता है । खासतौर से परवर्ती गीतों में निराला ने इस तरह के अनेक दक्ष प्रयोग किये हैं, जिसका बढ़िया उदाहरण " भग्न तन रुग्ण मन " (" आराधना ") गीत के निम्न अंश में देखा जा सकता है -

चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दीशरण, दोकारण ।

कुशल कवि दीनता और अनुनय की सीधी-सादी भावभूमि में भी कितनी अपेक्षित कला-चेष्टा के साथ कथन में प्रभावपूर्ण सामग्री ला सकता है, यह " दीशरण ", दोकारण " प्रयोग में द्रष्टव्य है । यमक जैसे ध्वन्यैक चामत्कारिक शब्दालंकार की मार्मिक और कातर प्रार्थना जैसी संवेदना को सीधे संस्पर्श करने की यह शक्ति कवि के सावधान काव्यानुशासन से छनकर आई है । इसी तरह मानव के तन केतन फहरे " (" आराधना ") आवाहन गीत में " के तन " और " केतन " का यमक मानव के विजय-पर्व को अलंकरण और सहजता की संपृक्ति के माध्यम से अंकित करता है । ऐसे प्रयोग भाषा-प्रवाह को गतिशील बनाते हैं, और गीत के विधान में समरस हो जाते हैं । (" आराधना " के एक अन्य गीत " निर्झर केदार के शर के हैं " में " केदार " " के शर " के यमक में यही वैशिष्ट्य देखा जा सकता है ।) " भगवान बुद्ध के प्रति " (" अणिमा " में संकलित) कविता की इन पंक्तियों में भी यमक की घुलनशीलता देखने योग्य है -

फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता - जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके,
छल के, बल के पङ्किल मौलिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित ।

"छलके" "छल के" का आलंकारिक विन्यास भाषा-प्रवाह से बड़ी प्रसन्न मैत्री करता प्रतीत होता है । भगवान बुद्ध की ज्योति से विश्व में समता स्थापित हुई और परिणामस्वरूप मानवता -जल के शत-शत उत्स फूटकर सर्वत्र छलके मानवता जल के छलकने से छल के, बल के निम्न स्तरीय रूप लुप्त हो गये । छलकने में जो प्रवणशीलता है, वही जैसे "छलके- छल के" की यमक-योजना में उभर उठी है । ऐसे अर्थों और ऊपर विश्लेषित "आराधना" के अनेक उद्धरणों के बीच "आराधना" के ही कोरी चमत्कारिकता और अलंकरण से प्रेरित "छल के छलके छलके न हुए" जैसे गीत के प्रयोग एक विचित्र विरोधाभास की सृष्टि करते हैं । पर "अनामिका" की 'सच है' कविता में यमक प्रयोग शब्दों की सामान्य प्रकृति में घुल-मिलकर फिर एक रचाव उत्पन्न करता है -

यह सच है
तुमने जो दिया दान-दान वह
हिन्दी के हित का अभिमान वह,
जनता का जन-ताका ज्ञान वह,
सच्चा कल्याण वह अथच है -
यह सच है ।

हिन्दी भाषा और साहित्य को आत्म-दान से समृद्ध करना निराला के काव्य-जीवन की सब से बड़ी महत्वाकांक्षा रही है । जन-संवेदना से सम्पृक्त अपने काव्य पर गर्व का अनुभव करते हुए कवि "जनता का" "जनताका" के प्रयोग में अलंकरण और बातचीत का सन्तुलन स्थापित करता है । अलंकारिक प्रयोग से कल्पना की अभिव्यक्ति का सौन्दर्य "रेखा" कविता के इस अंश में वक्रता के साथ हुआ है :

तृष्णा ही थी सजग
मेरे प्रति रोम में ।

रसना रस-नाम-रहित

किन्तु रस-ग्राहिका

शारीरिक संपर्क के लिए आकुल, किन्तु वास्तविक प्रणय भाव के संस्पर्श से अछूते युवा-हृदय की सुकुमार संवेदना रस शब्द के विविध प्रयोगों में संश्लिष्ट अभिव्यक्ति पा सकी है। युवक की रसना (जिह्वा) रसनाम रहित (प्रेम के संस्पर्श से अछूती) है किन्तु रसग्राहिका (भोग की आकांक्षिणी) है। यहाँ उल्लेखनीय है - " रसनाम-रहित " और " रस-ग्राहिका " में आये हुए शब्द के दुहरे अर्थ-स्तर जिनमें " प्रेम " और " भोग " का सूक्ष्म विवेक अनुस्यूत है।

गीतों के विधान में यमक-योजना स्वच्छ संगीतात्मकता की सृष्टि करती है। इसके बहुतेरे उदाहरण गीतिका, बेला और परवर्ती गीत - संकलनों में देखे जा सकते हैं, जैसे -

केशर के केश (" गीतिका ", गीत सं० ३)

वासना वासी (" आराधना ", गीत सं० ५०)

दे सकाल काल देश

दिशावधि अशेष शेष (" आराधना " , गीत सं० ६२)

निराला की काव्यभाषा शब्दावली, वाक्य-विन्यास, लय, अलंकरण, छंद प्रायः हर स्तर पर यांत्रिकता से बचने की सफल कोशिश करती है। उनके मुक्त छंद इसका बढ़िया उदाहरण है, जिनके निर्माण में कवि का यह विचार है- "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति है कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।"[१] यह तो मुक्त छंद की बात हुई, निराला ने बँधे-बँधाये छंदों में वाक्य-भंग-पद्धति के प्रयोग से अतिरिक्त-रवानगी ला दी है। एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में कहे उक्त भाव से पहुँचने की प्रवृत्ति उन अंशों में अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ संवेदना बहुत तीव्र प्रखर हो, बंधन तोड़ने के लिए आकुल हो। बादल राग की यह छंद-बंधित पंक्तियों को तोड़ने की प्रक्रिया में जैसे बादल के विराट्-

---

१) परिमल, भूमिका, पृष्ठ १२.

क्रांतिकारी व्यक्तित्व को स्वर देता है -

घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के आशाओं से
नव जीवन की ऊँचा कर सिर
ताक रहे हैं ऐ विप्लव के बादल !

" राम की शक्ति-पूजा " में हनुमान के आकाश-गमन के अंकन में पंक्ति की तोड़-फोड़ साभिप्राय है -

ब्रह्माङ्ग तेज घन बना पवन को महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।

पंक्ति को तोड़ देने से क्षुब्ध और शक्तिशाली पवन-पुत्र हनुमान के त्वरा युक्त आकाश गमन का चित्र सजीव और नाटकीयता से युक्त हो उठता है ।

वाक्य-भंग का प्रयोग करते हुए निराला ने गीत को संगीत - रूढ़ि से मुक्त करने की कोशिश की है। स्नेह-निर्झर बह गया है से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है -

आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है -- " अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है ।

यहाँ पंक्तियों के कहीं बीच में टूट जाने या लटके रहने से अवसाद और सूनेपन की व्यंजना है। विशेषतः दूसरी पंक्ति के टूटने में जैसे सचमुच आम की सूखी डाल के रूप में रिक्त जीवन की मनोव्यथा उजागर हो गई है । पिक या शिखी के न आने का अवसाद पंक्ति के टूटे रूप में केन्द्रीभूत होने से कविता का जो रूप यहां निर्मित होता है, उसकी परख ही सच्ची आस्वादन -प्रक्रिया है ।

विपरीत -भाव के शब्दों की निकट विन्यस्तता भी कवि की भाषा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी । " बादल-राग " (६) का एक अंश है -

घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की ,ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर फिर ।

यहाँ सजग " और" सुप्त " (जो अर्थ की दृष्टि से परस्पर विरोधी है) शब्दों की साथ-साथ नियोजना साभिप्राय है। बादलों के भेरी-गर्जन से सुप्त अंकुर सजग हो गये हैं । अभी तक तो वे सुप्त थे, किन्तु एकाएक सजग हुए हैं।" सजग " के ठीक बाद" सुप्त " के प्रयोग से यह सूक्ष्म ध्वनि निकलती है, और प्रकारान्तर से बादलों के भेरी गर्जन की प्रभावोत्पादकता और बढ़ जाती है ।

इसी कविता में फिर कुछ पंक्तियों के बाद विपरीत भाव की नियोजना से उत्पन्न अर्थ क्षमता का उदाहरण इस अंश में मिलता है -

अशनि-पात से शायित उन्नत शत शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा धीर ।

यहाँ भी विपरीत अर्थवाले शब्दों की सह-अवस्थिति के मूल में बादल की दुर्निवार शक्ति की सशक्त-व्यंजना है । उन्नत शत-शत वीर शायित हो गए हैं, अचल शरीर क्षत-विक्षत हो गये हैं । बादल का अशनि-पात इतना प्रभावकारी है ।" शायित " की शक्तिमत्ता " उन्नत " के बिलकुल पास में रखने से बढ़ गई है, और यही स्थिति" अचल शरीर " के समीप रखे गये" क्षत-विक्षत -हत" पद की है ।

समग्र रूप में शब्द की नाद और अर्थ-शक्ति के प्रति निराला बहुत गंभीर निष्ठा के साथ सजग रहे हैं ।" गीतिका " के एक गीत में उन्होंने वर्ण-चमत्कार की सशक्त व्याख्या की है -

वर्ण-चमत्कार,
एक एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार ।
पद-पद पर बही भाव-धारा,
निर्मल जल-दल में बँध गया विश्व सारा,
छूटी मुक्ति बंधन से बँधी फिर अपार-
वर्ण-चमत्कार ।

यहाँ वर्णों से लेकर कविता बनने तक की प्रक्रिया का सूक्ष्म अंकन हुआ है । निराला की लगभग सभी लम्बी और प्रसिद्ध कविताओं में, सांस्कृतिक गीतों में इस वर्ण चमत्कार का भव्य प्रसार हुआ है ।" राम की शक्ति-पूजा " का आरंभिक समासपरक बंध अपनी कठोरनाद योजना के कारण युद्ध-क्षेत्र का बहुत भयावह और वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है । शब्दों का आपस में भिड़ना भाषा में सीधे ही युद्ध को रच देता है । इस संदर्भ में आंतरिक साम्य की दृष्टि से नियोजित ध्वनि-आवर्तों को भी देखा जाना चाहिए ।" जागो फिर एक बार " का पद अंश प्रस्तुत है -

प्यार जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार-
जागो फिर एक बार ।

" हारे " और " तारे ", " अरुण " और " तरुण " के ध्वनि-आवर्तों से मुक्त छंद में प्रवाह तथा आंतरिक संबद्धता की अवस्थिति हुई है । निराला के काव्य में संगीत का-सा आनन्द मिलने के मूल में उनका विशिष्ट नाद-तत्व और ध्वनि आवर्त है ।" कुकुरमुत्ता " और " नये पत्ते " की सीधी-सादी प्रकृति की तुलना में प्रारंभिक क्लैसिकल काव्य की यह आभरण-परकता उल्लेखनीय है ।

छायावादी कवियों में निराला और प्रसाद की वाक्य विन्यास संबंधी सजगता और संवेदनशीलता ध्यान आकृष्ट करती है । लम्बे और छोटे दोनों तरह के वाक्य निराला काव्य की रचनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । लय पर एकान्त अधिकार होने के कारण वाक्य का विस्तार केन्द्र-च्युत नहीं होता । पहले 'संध्या-सुन्दरी' कविता का दीर्घ वाक्य लिया जाता है -

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा " चुप-चुप-चुप "
है गूँज रहा सब कहीं -
व्योम मण्डल में - जगती तल में -
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी दल में -
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में -

धीर-वीर-गंभीर शिखर पर हिमगिरि अटल अचल में -
उत्ताल-तरंगाघात प्रलय घन गर्जन-जलधि प्रबल में -
क्षिति में - जल में - नभ में - अनिल - अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा " चुप-चुप-चुप "
है गूँज रहा सब कहीं , -

वाक्य के इतने लम्बे विस्तार में, लय की एकात्मता, अनुभव की एकतानता और समासों का गतिशील रूप वज़नदार काव्यभाषा ही नियोजित कर सकती है । नीरवता - और वह भी संध्याकालीन नीरवता - के प्रकृति व्यापी अंकन में इतने लम्बे वाक्य और उसमें इतनी उदग्र शब्दावली की विन्यस्ति भाषा प्रयोग विधि की मौलिक दिशा की ओर संकेत करती है । " बादल राग " का तीसरा भाव-बंध सव्यसाची अर्जुन के रूप में परिकल्पित बादल की लम्बी यात्रा को भी बड़े लम्बे -लम्बे वाक्यों में चित्रित करता है । " बादल-राग " के अन्तिम भाव-बन्ध में छोटे समझे जानेवाले मनुष्यों में क्रान्ति के लिए ललक को हरे-भरे छोटे पौधों के बिंब में अभिव्यक्ति दी गई है । यहाँ छोटी-छोटी पंक्तियों से बने वाक्य की संरचना देखते बनती है -

हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार
शस्य अपार
हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।

वाक्य की कुछ-स्वच्छ प्रकृति में छोटे पौधों का हार्दिक उल्लास उभर उठा है ।

निराला की वाक्य संरचना में बँगला भाषा की सामासिक और विशिष्ट क्रमिक संरचना का यदि कुछ प्रभाव पड़ा हो तो यह स्वाभाविक है । जुही की कली " उनकी पहली प्रकाशित कविता है, जिसमें इस प्रभाव का संक्रमण

देखा जा सकता है । भाषा-वैज्ञानिकों ने परिलक्षित किया है कि हिन्दी की तुलना में बँगला भाषा में संस्कृत का संश्लेषणात्मक स्थिति के अवशेष अपेक्षाकृत अधिक है । संस्कृत की समास-योजना को आधार बनाकर कवि ने 'राम की शक्ति-पूजा' के आरंभिक समास-बंध की रचना की है, जिसमें पूरी अठारह पंक्तियों के बाद एक वाक्य समाप्त होता है । बहुत कुछ बँगला की तरह संज्ञा शब्दों की गति में ही बिना क्रिया-पदों के यह वाक्य चलता है । युद्ध-क्षेत्र की भीषणता, राम और उनकी वानर सेना की संकुल मन:स्थिति, रावण और उसकी राक्षस सेना का दमन-चक्र अपने विधान में जटिल, संश्लिष्ट और सामासिक वाक्य में महाकाव्योचित गरिमा के साथ रूपायित हुआ है । अतएव संस्कृत शब्दों और समास रूपों के प्रति कवि का आग्रह होने के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसे वाक्यों की रचना कवि ने केवल पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए की है । 'शक्ति-पूजा' के इस आरंभिक बंध का भाषिक संरचना की दृष्टि से सर्जनात्मक स्तर पर निश्चित प्रयोजन है ।

'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की ठेठ कविताओं की भाषिक प्रक्रिया बिलकुल अलग है। वहाँ भाषिक आभिजात्य के सभी उपादानों की एकांतिक वर्जना है, जिसे इन रचनाओं के विश्लेषण -क्रम में देखा गया है । इस अध्ययन में यह कहना शेष रह जाता है कि इनकी रचना में कवि ने बोलचाल के स्तर पर प्रयुक्त होनेवाली भाषा को आश्चर्यजनक रूप से काव्यभाषा की गरिमा प्रदान की है । खुरदुरे शब्दों, ठेठ मुहाविरों, एकदम गद्यात्मक लय, अचूक व्यंग्य प्रणाली के प्रयोग से कवि ने इन कविताओं में हिन्दी काव्यभाषा के एक नये और अपेक्षाकृत अकृत्रिम आयाम का संस्पर्श किया है ।

भाषा-प्रक्रिया के संबंध में कवि की यह सतर्क संवेदनशीलता खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा को एक अपूर्व रचना-क्षमता देती है । उसमें जहाँ आरंभिक चरण के परिष्कार प्रयत्नों की पूर्णता है, वहीं आगामी रचना-युग की विद्रोही वृत्ति के बीज भी निहित है । इस प्रसंग में निराला की यह उक्ति अच्छी तरह समझ में आती है -

'अभी न होगा मेरा अंत ।

नामवाची शब्दावली के विविध प्रयोग

(क) " राम की शक्ति-पूजा "

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
६०५	१०	३	= ६१८
९७.१	१.६	.५	

(ख) " कुकुरमुत्ता "

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
३९	१३२	१००	= २७१
१४.४	४८.७	३६.९	

(ग) परवर्ती गीत

" अर्चना " - १) बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु । (गीत सं० ३०)
२) गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को । (गीत सं० ५९)

"आराधना" - १) खड़ा हुआ विश्व कर पसारे (गीत सं० १६)
२) छोटा है तो भी छोटा कर (गीत सं० १८)
३) घुलता रहता है अब जीवन (गीत सं० ३२)

"गीत-गुंज " - १) बादल छाये (गीत सं०)

(१) तत्सम	(२) तद्भव-देशज	(३) विदेशी	
३३	४२	५	= ८०
४१.२	५२.५	६.२	

अ ध्या य - ५

सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यभाषा

छायावादी काव्यभाषा के वैशिष्ट्य के प्रति समीक्षकों और पाठकों का एक बँधा-बँधाया दृष्टिकोण बन गया है। इस वैशिष्ट्य के अन्तर्गत चित्रात्मकता, लाक्षणिकता और कल्पना-समृद्धि को केन्द्रीय स्थान मिला है, जिसका सब से खरा आस्वादन सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यभाषा के माध्यम से किया जा सकता है। इस रूप में छायावादी काव्यभाषा का प्रतिनिधित्व एक स्तर पर पन्त की काव्यभाषा करती रही है। छायावाद के साथ अतिशय कल्पना-मोह और शब्द-क्रीड़ा के असुखद अनुभवों के जोड़े जाने में अपना योगदान देने के बावजूद पन्त ने अपनी पैनी भाषागुण संवेदना का परिचय दिया है, और छायावाद के बाद की काव्यभाषा को अपने काव्य-व्यक्तित्व में समाविष्ट करने की कोशिश की है, इससे पन्त की काव्यभाषा- या कि पन्त की रचना-प्रक्रिया-को लेकर दो तरह की प्रतिक्रियाएँ उद्भूत होती हैं।

यह अपने में एक विरोधाभास है (और इसका अनुभव एकबारगी अटपटा लग सकता है) कि जिस कवि ने ब्रजभाषा की रूढ़ शृंगारिक कविता के प्रति विरोध-भाव अपने समानधर्मियों की तुलना में सब से अधिक जोश के साथ प्रकट किया था (द्रष्टव्य 'पल्लव' का 'प्रवेश' तथा 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन') उसकी खड़ीबोली की छायावादी कविता में रूढ़ियाँ सब से जल्दी विकसित हो गईं। यह भी एक रोचक विडम्बना है - भले ही इसका उल्लेख अप्रासंगिक हो - कि अलंकरण और चमत्कार को महत्त्व देनेवाले परवर्ती ब्रजभाषा-काव्य पर अपना सबसे आक्रोश कवि ने स्वयं बिल्कुल सजी-सँवरी खड़ीबोली में प्रकट किया। एक दृष्टान्त रखा जा रहा है - "ब्रजभाषा के उन्मत्त-माल में इन कविवरों की लालसा के सौंप, इनकी उपमाओं के शाप-भ्रष्ट मधुप, उसके कोमलपदा में इनके अत्याचार के नख-घात, उसके सुकुमार अंगों में इनकी वासना की विरहाग्नि का

असह्य ताप सदा के लिए बना ही रहेगा । उसकी उदार छाती पर इन्होंने पहाड़ रख दिया ।[१]

कविता की श्रेष्ठता की पहचान सब से अच्छे ढंग से इसी तरह हो सकती है कि उसे बनानेवाली काव्यभाषा व्यक्तित्ववान् हो, उसके अन्तर्गत निर्मित होता हुए अनुभव-संवेदन या कल्पना -रूप सही अर्थों में सर्जन लगे, रूढ़ प्रतिक्रियाएँ न उद्भूत करे । कवि पंत, निराला और प्रसाद की तुलना में अपने सारे शब्द-वैभव और कल्पनात्मक समृद्धि के बावजूद भाषा के साथ गहरी संसक्ति नहीं रख सके हैं, जिससे अनुभव-संवेदन में सार्थक उन्मेष रच-पच सके ।

" पल्लव " से पूर्व की रचनाओं में " वीणा " और " ग्रंथि " अपने में कोई महत्वपूर्ण कोशिश नहीं है । उनके द्वारा यह पता चलता है कि कवि अपने प्रारंभिक काव्य-सृजन से पाठक-वर्ग को आन्दोलित करनेवाला नहीं । अलंकरण-चेष्टा यहाँ अधिक है - विशेषतः " ग्रन्थि " में । कहीं-कहीं कवि ने जिन नवीन अप्रस्तुतों की नियोजना की है, वे कवि की कल्पना-क्षमता का परिचय देते हैं :

(इन गढ़ों में - रूप के आवर्त-से -
घूम-फिर कर, नाव से किसके नयन
है नहीं डूबे, भटककर , अटककर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?)

यहाँ प्रिया के गाल पर पड़नेवाले गढ़ों के प्रति आकर्षण को भँवर में पड़ी नाव के अप्रस्तुत में रूपायित कर कवि ने अपने सौन्दर्य -बोध में निहित नवीनता का परिचय दिया है । इसी तरह " वीणा " की " प्रथम रश्मि " कविता अपने विधान में सफल बन पड़ी है । प्रभातकालीन प्रकृति, जागृति और नवोन्मेष -तीनों अनुभव-स्तरों का समान आस्वादन यहाँ किया जा सकता है । छायावादी कविता पूर्व इस तरह का वैशिष्ट्य अनुभव (यद्यपि वह अपनी आरंभिक अवस्था में है) विकसित करने की कोशिश नहीं की गई थी । कवि पद्मिनी को उसके सामान्य रूप में न देखकर जागरण के प्रतीक रूप में देखता है :-

---

१) " पल्लव " प्रवेश, पृ० ६

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ?
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि !
पाया तूने यह गाना ?

" पल्लव " (१६२८ ई०) एक रूप में छायावादी काव्यभाषा के एक पक्ष चित्रात्मकता , नयी कल्पनात्मक छवियों, शब्द-अपव्यय का बढ़िया उदाहरण है । " पल्लव " से कवि पन्त की सीमा और संभावना - दोनों के विषय में कुछ सूत्र हाथ लगते हैं । प्रणयानुभवों के अंकन में वे कभी तो प्रतीकों में इतनी सूक्ष्मता उदात्तता समाविष्ट कर देते हैं (शायद नारी के प्रति रीतिकालीन कवियों की स्थूल दृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप) कि मांसलता टिकने नहीं पाती -

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान ;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि ।
त्रिवेणी की लहरों का गान ।
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय-साँसों में उपचार ।
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार ।

यहाँ एक पंक्ति अवश्य संवेदनशील शृंगारिकता की निर्मिति करती है- सुधामय साँसों में उपचार ।" उपचार की अवस्थिति प्रेयसी की सुधामय साँसों में कर कवि ने प्रणय-भाव को सूक्ष्म स्तर पर आत्मीय बनाया है ।

कभी प्रतीकों की नियोजना अतिरिक्त भावावेश का संकेत देती है, जिसे कुछ-कुछ बच्चन की " मधुशाला " के उन्माद का पूर्वाभास कहा जा सकता है :

कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय, क्या गंगाजल की धार ।।

हृदय ! रो, अपने दु:ख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो, यह जड़-स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर-संचार !

छायावाद की नयी लहर में अपने ढंग से विकसित होनेवाली लाक्षणिकता का प्रतिनिधित्व इस तरह के प्रयोग करते है, जिनकी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संकेत अपने इतिहास में किया है -

ऊषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल-विकास ;
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की साँस !

प्रेमास्पद की रूप-छवि और भाव-छवि के वैशिष्ट्य-ताजगी, मृदुलता, दीप्ति, निर्दोषता और भोलेपन - को इन सूक्ष्म लाक्षणिक प्रयोगों ने नये ढंग से चित्रित किया है। अन्तिम दो पंक्तियाँ विशेषत: मार्मिक बन पड़ी हैं।

" पल्लव " की " वीचि - विलास " संबोधनात्मक कविता है। पंत की मूर्त-अमूर्त अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना-सामर्थ्य का अच्छा परिचय इस कविता से मिल सकता है। " लहर " को कवि तरह-तरह से विविध रूपों में चित्रित करता है। दो-एक अंश उद्धृत किये जा रहे हैं :

गूढ़-साँस सी यति-गति हीन
अपनी ही कंपन में लीन,
सजग कल्पना -सी साकार,
पुन: पुन: प्रिय ,पुन: नवीन ;

तुम शैशव -स्मिति सी सुकुमार,
मर्म-रहित, पर मधुर अपार,
खिल पड़ती हो बिना विचार !

कवि एक के बाद एक नवीन अप्रस्तुतों की रचना करता चलता है। उनका प्रस्तुत लहर के जीवन से क्या संबंध है, कहाँ तक वे उसे सार्थकता प्रदान कर रहे हैं, कवि इसकी चिन्ता करता नहीं प्रतीत होता। इतने नये-नये अप्रस्तुतों की इतने उत्साह के साथ आयोजना इस बात का प्रमाण है कि कवि कल्पना-चित्रों की निर्मिति को अपने में महत्त्वपूर्ण समझता है। इस तरह के खण्ड-चित्र कोई समग्र प्रभाव हमारी चेतना पर नहीं छोड़ते। " लहर " प्रसाद की भी एक कविता है, जिसमें लहर उनके अनुभव-संवेदन में रस-बस जाता है, लहर और मानवीय अनुभूति का संश्लेष हो जाता है। पंत के " वीचि-विलास " में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता, इसीलिए पंत के संबंध में यह मानना होगा कि वे कल्पना के-उसमें भी चित्रात्मक कल्पना के — कवि हैं, उनकी काव्यभाषा को अनुभव की जटिलताओं से जूझना प्रीतिकर नहीं लगता। एक समय था, जबकि समग्र प्रभाव-छवि को आँके बिना पाठक पंत के इन कल्पना-चित्रों पर रीझता था। प्रसाद और निराला के जटिल -सूक्ष्म काव्य से पहचान होने पर यह बात एक रोचक विडंबना लगती है कि किसी समय छायावादी काव्य के केन्द्र में इन कल्पनात्मक चित्रों को ही रखा जाता था।

" पल्लव " की " मधुकरी " और " मोह " शीर्षक कविताओं में कवि ने मध्यकालीन काव्य में स्वतंत्र अस्तित्व न रखपाने वाली प्रकृति के प्रति अपने सहज आकर्षण की अभिव्यक्ति करते हुए जैसे प्रकारांतर से रीतिकालीन एकान्तिक नारी-शृंगार संबंधी दृष्टिकोण की वर्जना की है। यह प्रवृत्ति " मोह " कविता में अधिक उजागर हुई है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को।

रीतिकालीन शृंगार-अतिरेक के विरुद्ध प्रकृति के प्रति उपजे इस निश्छल आकर्षण का सहज आस्वादन इस अंश में किया जा सकता है।

तज कर तरल तरंगों को,
इन्द्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू-भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?

भाषा के इस निखरे रूप में कवि की ऋजु-निर्मल संवेदना प्रभावी बन पड़ी है ।

' पल्लव ' की ' छाया ' कविता कवि की कल्पना- अतिरेक और शब्द-अपव्यय की प्रवृत्तियों का बड़ी दूर तक पोषण करती है । कवि की संवेदनशीलता का यहाँ योग नहीं है । इसे पढ़ते हुए ऐसा लगता है, छाया केवल माध्यम भर है, असल में तो कवि नानाविध कल्पना छवियों की नियोजना करना चाहता है । इसमें संदेह नहीं कि इन कल्पना- चित्रों में से कुछेक अपने में मार्मिक बन पड़े हैं, लेकिन उनका छाया के अनुभव संवेदन से कोई रिश्ता नहीं जुड़ पाता (दमयन्ती और द्रुपद-सुता की बिंब-छवियाँ द्रष्टव्य हैं ।) । कई बार कवि अमूर्त उपमानों की सृष्टि करता चलता है :

तरुवर की छायानुवाद-सी ,
उपमा-सी, भावुकता-सी,
अविदित भावाकुल-भाषा सी,
कटी-छँटी नव कविता-सी ;

पछतावे की परछाईं -सी
तुम भू पर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी, अँगड़ाई -सी,
अपराधी-सी भय से मौन ।

लेकिन ये सारे अप्रस्तुत ' छाया ' से बिलकुल असंपृक्त रहते हैं । उधर ' पछतावे की परछाईं-सी ' कहकर कवि अपनी सूक्ष्मीकृत उपमान-योजना से पाठक को एकबारगी चमत्कृत और विमुग्ध भले कर दे, लेकिन संश्लिष्ट रूप-सृष्टि और भाव-सृष्टि का उसमें की इसमें क्षमता नहीं है । छाया जैसी निपट अमूर्त-सूक्ष्म और काव्य-विषय के स्तर पर प्रतिष्ठित होने में परंपरा से दुर्लभ वस्तु को लेकर कवि मनःस्थिति की प्रकारता या अनुभव की किसी सार्थकता को रूपायित

कर सकता था, उसी रूप में 'छाया' पर रची कविता सार्थक और भव्य बन सकती थी। उपमानों का इस तरह से अंबार लगा देना अपने में कुछ बहुत स्पृहणीय नहीं है। यों छाया से इनके संबंधगत औचित्य का ध्यान अगर न रखा जाए (यद्यपि रचना-प्रक्रिया के समीचीन विश्लेषण की दृष्टि से यह अनवधान ठीक नहीं) और इन कल्पना-छवियों को उनके स्वतन्त्र रूप में देखा-परखा जाए, तो पंत की - छायावादी कवि की - नयी विकसनशील खड़ीबोली में अभूतपूर्व अभिव्यंजना-शक्ति का परिचय मिलता है। यहाँ लोभ और तृप्ति जैसी अमूर्त वृत्तियों को भरपूर क्रियात्मक बनाकर कवि ने प्रस्तुत किया है :

कभी लोभ-सी लंबी होकर,
कभी तृप्ति-सी होकर फिर पीन,
क्या संसृति की अचिर भूति तुम
सजनि ! नापती हो स्थिति हीन ?

विश्व के सारे कार्य कलापों के मूल में छिपी शक्ति की अनिवार्यता के प्रति जिज्ञासा-भावना हर छायावादी कवि में रही है। 'मौन विमन्त्रण' कविता में कवि ने क्रमानुसार सुकुमार-परुष चित्रों की अवतारणा कर इस जिज्ञासा-भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। एक सुकुमार चित्र प्रस्तुत है :

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के - से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

यहाँ पर पंत प्रकृति के यौवन को नये संदर्भ में रखते हैं। ध्वनि और गंध के संश्लेषण से वसंत श्री की मादकता का अनुभव अर्थ के स्तर पर गतिशील बना रहता है। इस तरह का अंकन सिर्फ छायावादी शैली में ही हो सकता था। तीसरी पंक्ति का भी सूक्ष्म-अमूर्त एवं सुकुमार अप्रस्तुत है, वह कली से फूल बनने की क्रिया में सूक्ष्म और कोमल प्रक्रिया का एकदम वदात अंकन करता है

और इसी बिन्दु पर आकर बिंब बन जाता है -

विधुर उर के से मृदु-उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास ;

इतने सुकुमार दृश्य के मूल में किसी विराट शक्ति की अवस्थिति की संभावना उसकी विराटता की ओर भव्य बना देती है :

न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

इसी का पूरक एक भयानक चित्र (वस्तुत: सुकुमार और भयानक दो विरोधी जीवन - दृश्य के रूप में न देखे जाकर एक दूसरे के पूरक समझे जाने चाहिए ।) द्रष्टव्य है -

क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथ कर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल-संसार
बना विथुरा देती अज्ञात ;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

कोमल और परुष दोनों प्रकृति दृश्यों के मूल में किसी सत्ता की अवस्थिति का विश्वास ही उस सत्ता की विराटता को संतुलित और संपूर्ण बनाता है ।

' बादल ' कविता से एक बार फिर पंत की चित्र-विचित्र कल्पनाओं का परिचय मिलता है ।' वीचि-विलास ' और ' छाया ' की तरह यहाँ भी एक समग्र प्रभाव निर्मित नहीं हो पाता । निराला के ' बादल-राग ' के अन्तर्गत निर्मित ६ चित्रों में बादल का एक विराट्-व्यापक स्वरूप अंकित होता है - लेकिन यहाँ तो बादल कवि पंत की कल्पना के अनुसार रूप ग्रहण करते चलते हैं , चित्रों में अन्विति का योग नहीं है । इस तरह पंत के बादल में वायवीयता अधिक है, उसका व्यक्तित्व नहीं बन पाया है । समन्वित प्रभाव और व्यक्तित्व निर्मिति की अपेक्षाओं (जो - एक बार फिर कहना होगा - श्रेष्ठ रचना के आवश्यक गुण हैं) को अलग कर सिर्फ

कल्पना -सामर्थ्य के रूप में इस कविता पर दृष्टिपात् किया जाए, तो कई एक सुन्दर चित्र देखे जा सकते हैं । एक चित्र है -

बुद्बुद-द्युति तारक-दल-तरलित
तम के यमुना जल में श्याम
हम विशाल जंबाल-जाल से
बहते हैं अमूल अविराम ,

दूसरी तरह का कल्पना-वैभव वहां देखा जा सकता है, जहाँ कवि बादल का अंकन करने के लिए सूक्ष्म उपमानों की आयोजना करता है । मानवीय जीवन-स्थितियाँ भी साथ-साथ आलोकित हो उठती हैं -

धीरे धीरे संशय से उठ
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि-भोर ;

इन्द्रचाप सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन चिन्ता से घोर,
घोष भरे विप्लव -भय से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर ।

ये उपमान पहली नज़र में सिर्फ़ चामत्कारिक लग सकते हैं, क्योंकि इस तरह की सूक्ष्म-अमूर्त अप्रस्तुत-योजना (बादलों के अंकन में) परंपरा में नहीं है - लेकिन अगर इनके दृश्य-पक्ष को केन्द्र में रखा जाए, तो इनमें चामत्कारिकता के स्थान पर सार्थकता की प्रतीति होगी । यथार्थतः संशय और बादल में कोई साम्य नहीं । यही स्थिति अपयश, मोह, लालसा, मौन चिन्ता, विप्लव भय की है । लेकिन मानस में उनके उदय की गति आकाश में उदित होते बादल की गति से मिलती-जुलती है । इस सूक्ष्म साम्य को कवि-दृष्टि ने पहचाना है । इस दृष्टि से दूधनाथ सिंह का यह विचार संगत नहीं प्रतीत होता, जो उन्होंने निराला के " बादल-राग " से पंत के " बादल " की तुलना के प्रसंग में रखा है -

" संशय-सा उठना, अपयश-सा बढ़ना " और " लालसा-सा फैलकर छा जाना "

सिर्फ एक मनोवैज्ञानिक वाचन-मात्र बनकर रह जाते हैं ।"[१]

कहीं-कहीं कवि की कल्पना त्रुटिपूर्ण लगती है, जैसे निम्न छंद में कवि के ध्वनिगत विभ्रम के कारण :-

कभी अचानक भूतों का -सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार ,

बादल की गड़गड़ाहट के लिए 'कड़क, कड़क' ध्वनि का प्रयोग त्रुटिपूर्ण है । 'कड़क' ध्वनि बिजली के साथ जितनी जुड़ती है, उतनी बादल के साथ नहीं । दूधनाथ जी ने ठीक ही कहा है -' ध्वनि -मार्दव का इतना उल्लंघन अजीब लगता है ।"[२] यहाँ पर इतना जोड़ देना होगा कि पंत की सूक्ष्म-सुलभ ध्वनि-गंध-संवेदना के परिप्रेक्ष्य में यह त्रुटि आश्चर्यपूर्ण लगती है ।

पन्त की कल्पना-क्रीड़ा का सब से उच्छृंखल रूप 'स्याही की बूंद' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है । 'स्याही की बूँद' के लिए कवि तरह-तरह की कल्पनाएँ करता है, जिनमें से एक अंश को उद्धृत करना उचित रहेगा :

अर्ध-निद्रित-सा, विस्मृत-सा
न जागृत-सा, न विमूर्छित -सा,
अर्ध-जीवित-सा, औ मृत-सा,
न हर्षित-सा, न विमर्षित -सा,
गिरा का है क्या यह परिहास ?

'पल्लव' की 'परिवर्तन' कविता अपने रचना-संगठन में अपेक्षाकृत प्रौढ़ है । पंत की वृत्ति कल्पना-चित्रों में अधिक रमती है, किसी दृश्य या संवेदना का चित्रण, उपमाओं में अंकन उनकी मुख्य-रचना -भूमि है । इस दृष्टि से 'परिवर्तन' जैसी कविता उनके कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में एक सुखद आश्चर्य है, जिसमें

---

१) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० ११७

२) वही, पृ० ११७

कवि ने मानवीय नियति की क्रूरता और फलस्वरूप मानवीय जीवन की विडम्बना को विविध प्राकृतिक दृश्यों तथा मानवीय स्थितियों की सापेक्षता में अभिव्यक्ति दी है। सामान्यत: कोमल अप्रस्तुतों के चयन में पटु छायावादी कवि पंत किस कुशलता से वृहत्तर परुष चित्रों की आयोजना इस कविता में करते हैं, यह द्रष्टव्य है। पंत के छंद-विधान की मौलिकता और कलात्मकता वास्तविक रूप में " परिवर्तन " में उभरी है। इसी कविता में पंत ने कुछ विराट् चित्रों की भी नियोजना की है जो " वासुकि सहस्र फन ", " नृशंस नृप " जैसे बिंबों में देखे जा सकते हैं। सांगरूपक किस तरह कवि के अनुभव -संवेदन में रस-बसकर (इस तरह ब्योरेवार वर्णन से अलग होकर) बिंब में संक्रमित हो जाता है, यह इन अंशों में देखा जाना चाहिए :

अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष:स्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल
दिङ्मंडल !

भयानकता का ताण्डव -नृत्य इस विशिष्ट वर्ण-विन्यास में रचे गए " वासुकि सहस्र फन " के सांगरूपक पर आधारित बिंब में भव्य बन पड़ा है। यह अनुभव स्पृहणीय है (विशेषत: कल्पना प्रेमी कवि पंत के संदर्भ में) कि सहस्र फनवाले वासुकि के बिंब में निहित विराटता जीवन के संघर्ष और विकरालता को पूरी - पूरी अभिव्यक्ति देती है। इस तरह एक ही बिंब में विराटता और जटिलता की सामान्यत: दुर्लभ अवस्थिति का अनुभव रचना के स्तर पर तोषजनक है। परिवर्तन के विकराल रूप से आक्रान्त कवि-मानस इस अंश के अंत तक इतना परिश्रान्त हो जाता है कि छंद की अन्तिम दो पंक्तियों सिर्फ एक-एक शब्द से निर्मित करता है -

वक्र कुण्डल
दिङ् मंडल !

यह साभिप्राय है। पूरे छंद का समग्र प्रभाव इस तरह की योजना के बिना अज्ञात रह पाता, यह कहना कठिन है।

मानवीय जीवन की बेबसी और अधूरेपन तथा उनसे उत्पन्न विषाद का अंकन सामान्यत: पंत की मुख्य रचना-भूमि नहीं है, किन्तु परिवर्तन में उन्होंने इसका संस्पर्श किया है :

जगत की शत कातर चीत्कार
बेधतीं बधिर, तुम्हारे कान।
अश्रु-स्रोतों की अगणित धार
सींचतीं उर पाषाण।

यहाँ " बधिर " जैसे प्रयोग में सिर्फ़ परिवर्तन की निष्ठुरता नहीं व्यंजित हुई है, कवि मानवीय जीवन की असहाय स्थिति, विडम्बना और अधूरेपन को भी अभिव्यक्ति देता है। अन्त तक कवि तत्व-बोधक परिवर्तन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण अपना लेता है। संघर्ष को काफ़ी दूरी तक ले जाकर अन्त में संतुलन प्राप्त करने की कोशिश अनेक छायावादी कविताओं में देखी जा सकती है। अन्तिम छंद में कवि परिवर्तन की " महांबुधि " के रूप में विराट परिकल्पना करता है, जिसकी लहरों के रूप में सारे लोकों का अस्तित्व है। दो पंक्तियाँ रखी जा रही हैं

अहे महांबुधि ! लहरों से शत लोक, चराचर
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,

संतुलित और उदात्त संवेदना के अनुरूप इस चित्र में विराटता है, जटिलता नहीं। यों " परिवर्तन " कविता भाषा-गरिमा के कारण भव्य बन पड़ी है, लेकिन अतिचित्रण का मोह उसमें भी है। एक ही पक्ष-परिवर्तन का आतंककारी स्वरूप - तरह-तरह की कल्पना-छवियों में उभरता है। इसीलिए कभी-कभी अनुभव-संवेदन न्यून लगने लगता है।

अपने अगले काव्य-संकलन " गुंजन " (१९३२ ई०) में पंत ने " पल्लव " के से अप्रस्तुत-विधान का बाहुल्य नहीं प्रदर्शित किया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने काव्यभाषा में कोई महत्वपूर्ण गुणात्मक

उन्मेष भरा है। प्रणय-स्थितियों के अंकन में उनकी काव्यभाषा प्रसाद तथा निराला की तरह मांसल और प्रखर नहीं हो सकी है, जिससे एक संभ्रम या सम्मोहन की अनुभूति के अलावा कोई विशिष्ट ,भरी-पूरी सार्थकता नहीं सिरजने पाती , ' भावी पत्नी के प्रति ' कविता में भाव और अभिव्यक्ति की सुकुमारता और सरसता की एक समय बहुत सराहना हुई थी, लेकिन गहराई में टटोलने पर उसमें प्रगाढ़ता नहीं नज़र आएगी । पंत ने प्रणय-दृश्य के अंकन में भाषा का जिस तरह से उपयोग किया है, उससे लगता है ,जैसे कवि में भाषा को प्रयासपूर्वक काव्यात्मक बनाने का आग्रह है, प्रणयानुभव की उष्णता,मादकता,ताज़गी को भाषा में रसाने-बसाने की ललक उतनी नहीं है । इसीलिए इन चित्रों में वायवीयता अधिक है - पंत की ही कल्पना -अनुसार उन्हें इस तरह समझा जा सकता है :

न जिसका स्वाद-स्पर्श कुछ ज्ञात ;
कल्पना हो, जाने, परिमाण ?
प्रिये, प्राणों की प्राण !

इस वायवीयता के फलस्वरूप उनके शब्द रूढ़ और नवोन्मेष से शून्य लगते हैं। छायावाद की शब्द-रूढ़ि बनाने में महादेवी के साथ पंत के प्रयोगों का विशिष्ट योग है।

इस दृष्टि से 'गुंजन' की 'आज रहने दो यह गृह काज ' कविता अपवाद है । वहाँ शरीर साहचर्य के लिए आकुलता (और वह भी घरेलू वातावरण के परिप्रेक्ष्य में) का बहुत निश्छल-आत्मीय रचाव भाषा में हुआ है -

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज ।
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष ।

यह 'जाने कैसी वातास' ही सारे परिवेश को मादक,प्रीतिकर मैत्री-सख्य्री तथा ताज़ा बना देती है । प्रिया से की जानेवाली यह मनुहार कवि द्वारा खड़ीबोली

में रच-बस गई है ।

पंत के नारी-सौन्दर्य के चित्र संश्लिष्ट नहीं कहे जा सकते । नियोजित प्रतीकों में अतिरिक्त वायवीयता से सौन्दर्य के प्रति (प्रणय की भाँति ही) एक विस्मय-भाव या अधिक-से-अधिक आदर-भाव उपजता है । रीतिकालीन एकान्तिक स्थूल श्रृंगार-दृष्टि के मुकाबले यह भले ही शुरू-शुरू में आकर्षक लगता रहा हो, लेकिन कविता में अनुभव का मात्रा से तादात्म्य नहीं हो पाता ।" रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम " की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं :

तारिका सी तुम दिव्याकार
    चन्द्रिका की फंकार ।
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार
    अप्सरी सी लघु भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार
    प्रणय-हंसिनि सुकुमार ?
हृदय-सर में करने अभिसार,
    रजत-रति, स्वर्ण-विहार ।

यहाँ सिवाय एक उदात्त-मूर्त भाव के (जिसका कविता में अर्थ की द्वन्द्वमयी प्रकृति से कोई संबंध नहीं) किसी भी तरह संश्लिष्ट नारी मूर्ति नहीं बन पाती । अनेक तरह से प्रेयसी के आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व का बखान करने के बाद कवि जिस तरह से कविता का समापन करता है, वह उसकी जटिलता शून्य रचना-प्रक्रिया का परिचायक है :

कल्पना तुममें एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम ;
तुम्हारी छवि में प्रेम-अपार,
    प्रेम में छवि अभिराम,
अखिल इच्छाओं का संसार
स्वर्ण-छवि में निज गढ़ अविराम,
बस गई मानसि ! तुम साकार
    देह धर एक-प्राण !

ऐसा लगता है , कवि प्रेयसी का स्तवन कर रहा है। सारी विशेषताओं की परिणति " देह दो एक प्राण " की तान में होती है, जो संवेदना को परंपरित बनाती है ।

" बादल " की तरह " चाँदनी " पर भी पंत ने कविताएँ लिखी हैं ।" गुंजन " में " चाँदनी " शीर्षक से दो कविताएँ हैं । एक में " चाँदनी " कवि की कल्पना में ढलकर रुग्णा जीवन-बाला बन जाती है । चाँदनी के लिए यह कल्पना बिलकुल नयी और अजीबो गरीब है -

जग के दुख-दैन्य शयन पर
यह रुग्णा जीवन-बाला
रे कब से जाग रही ,वह
आँसू की नीरव माला ।

पीली पड़, निर्बल ,कोमल
कृश-देह-लता कुम्हलाई ;
विवसना, लाज में लिपटी,
साँसों में शून्य समाई ।

अपनी सारी नवीनता के बावजूद चाँदनी का यह चित्र अपने अटपटेपन में न दृश्य-संवेदना में कोई गुणात्मक उन्मेष भरता है, न ही अनुभावन-क्षमता बढ़ाता है ।

" चाँदनी " पर लिखी गई दूसरी कविता खण्ड-खण्ड कल्पनाओं का समुच्चय है। एक कल्पना -चित्र का दूसरे कल्पना-चित्र से कोई संबंध नहीं है । कवि अपनी कल्पनात्मक उड़ान के बहुविध रूप इस कविता में दिखाता है, लेकिन कोई तारतम्य न होने से चाँदनी की सुस्पष्ट रूप-छवि या भावछवि निर्मित नहीं होने पाती । कहीं तो वह नववधू रूप में परिकल्पित है :

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छवि की छुई-मुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर ।

और कहीं लघु परिमल का घन या सुख का उमड़ा सागर बन जाती है :

वह लघु परिमल के घन-सी
जो लीन अनिल में अविकल
सुख के उमड़े सागर-सी
जिसमें निमग्न उर तट-स्थल ।

" गुंजन " की " एक तारा " और " नौका - विहार " कविताओं के प्रकृति-पर्यवेक्षण अपने मार्मिक विधान में पंत की तीव्र प्रखर दृश्य संवेदना का बढ़िया उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।" एक तारा " में आरंभिक सांध्यकालीन वातावरण का अंकन बिलकुल नए ढंग से हुआ है ।, संध्याकालीन निस्तब्धता की व्यंजना ध्वनियों के कोमल संदर्भ में यों उभरती है :

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर ।

संध्याकालीन नीरव वातावरण में वायु की मर्मर ध्वनि के थम जाने की अपने में सूक्ष्म-सुकुमार स्थिति को कवि ने एक उत्कृष्ट ध्वनि-बिंब में ही विकसित किया है -" ज्यों वीणा के तारों में स्वर । " पहली पंक्ति का लाक्षणिक ,कोमल प्रयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य है, जो कवि की सूक्ष्म कल्पना का प्रतिफलन है ।

आगे कवि ने वर्ण-परिवर्तन की प्रक्रिया को संवेद्य बनाने के लिए एक सर्वथा मौलिक बिंब रचा है :

लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील,ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर ।

संध्या समय सूर्य की स्वर्णिम किरणा का नील पड़ जाना स्वाभाविक प्रक्रिया है, अर्थ के स्तर पर उसके उन्मुक्त अंकन के लिए कवि ने वर्ण-परिवर्तन संबंधी मानवीय जीवन से जुड़ा एक बिंब प्रस्तुत किया है - ज्यों अधरों पर अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर ।"

शिशिर में अधरों की अरुणाई में नीलापन आ जाता है, यही

स्थिति संध्याकाल में प्रारंभ होते अंधकार को ग्रहण करती सूर्य की स्वर्ण-रेख की है । वर्ण-रूपान्तरण का यह संवेद्य चित्र बेजोड़ है ।

पंत की काव्यभाषा दृश्य-संवेदना का सही ढंग से पोषण करती है, लेकिन जब अस्तित्व की जटिलता या व्यक्तिगत द्वन्द्व जैसी किसी भावभूमि में वह प्रविष्ट होती है, तो व्यक्तित्व नहीं रच पाती ।" एक तारा " इसका अच्छा उदाहरण है । संध्याकालीन आवश्यक शांत पृष्ठभूमि के चित्रण के बाद कवि जब तारे का अंकन शुरू करता है, तो उसे एकाकी व्यक्ति का प्रतीक मान लेता है :

क्या उसकी आत्मा का चिर-घन स्थिर, अपलक नयनों का चिन्तन ?
क्या खोज रहा वह अपनापन ?
दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन
वह निष्फल इच्छा से निर्धन ।

एकाकीपन का अंकन आगे होता चलता है । यह ठीक है कि यह अंकन अपने में असंगत नहीं है, लेकिन साथ ही दृश्य-संवेदना वाले अंकनों की तरह इसमें कोई गुणात्मक रचाव नहीं पाया जाता । कविता की परिणति तो कवि दार्शनिक रीति से करता है, तारा उसे अंततः ब्रह्म-स्वरूप लगता है । दार्शनिक परिणति से उद्भूत गरिमा का विभ्रममय मोह कविता के समूचे प्रभाव को क्षति पहुँचाता है ।

पंत की चित्रात्मक कल्पना का दूरगामी निर्वाह " नौका विहार " के कविता में हुआ है । प्रारंभ में गंगा का तापस-बाला के रूप में मानवीकरण हुआ है । नौका-विहारकाल में दृष्टि-केन्द्र में टिके एक-एक प्राकृतिक दृश्य को कवि चित्रात्मक रीति से अंकित करता है, लेकिन " एक तारा " की ही तरह इस कविता की भी नियति है। अंत तक पहुँचते - पहुँचते कवि दार्शनिक निष्कर्ष निकालने लगता है -

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार ।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम ।

इस तरह एक विशुद्ध प्राकृतिक कविता से निर्मित होनेवाला प्रभाव विखण्डित हो जाता है। प्रकृति-चित्रण और दर्शन के भाषा-स्तर एक दूसरे में घुल-मिल नहीं पाते, फलतः कविता समग्र रूप में नहीं बन पाती।

" गुंजन " के बाद पंत का काव्य-स्वर बदल जाता है, उनकी चेतना क्रमशः वस्तुवादी हो जाती है। " युगांत (१९३६ ई०) " युगवाणी " (१९३९ ई०), " ग्राम्या " (१९४० ई०) की रचनाएँ इसका प्रतिनिधित्व करती है। " युगांत " में स्वयं पंत जी के अनुसार " पल्लव " की कोमल कला का अभाव है।[1] ' द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र ' कविता में प्रखर-ओजस्वी चेतना कवि की तेजपूर्ण भाषा में व्यक्त होती है। जागरण की कामना सूक्ष्म-उदात्त होकर मुखरित हुई है :

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क जीर्ण।
हिमताप पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन ।।

कुछ समीक्षकों ने बहुत स्थूल ढंग से इस तरह की कविताओं को छायावादी काव्य से अलग प्रगतिवादी काव्य की कोटि में स्थान दिया है। इस तरह का वर्गीकरण छायावाद को केवल प्रेम और सौन्दर्य की कविता मानने वाली दृष्टि का प्रतिफलन है। कोमलकांत पदावली के अलावा छायावाद के अन्तर्गत भाषा के अन्य स्रोत भी उन्मुक्त हुए हैं, इसे वे नज़रअंदाज़ कर देते हैं। यहाँ जीर्ण पत्र का प्रतीकात्मक प्रयोग और उसका दूरगामी निर्वाह छायावादी सूक्ष्म काव्य-बोध का परिचायक है। " जीर्ण पत्र " पुरातन विचारधारा और सांस्कृतिक रूढ़ियों का सटीक प्रतिनिधित्व करता है। आगे कवि ने इन सूखे पत्तों को " मृत विहंग " संबोधन देकर उनके जीवन की व्यर्थता, रचना-शून्यता का बहुत मार्मिक भाव चित्र प्रस्तुत किया है :

निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग !
जग-नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,

---

1) युगांत - दो शब्द

च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनंत में हो विलीन ।

इस तरह का प्रखर क्रान्ति-भाव पंत की सामान्यत: सुकुमार-वायवीय कल्पना के परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट स्थान रखता है । क्रान्ति के कठोर आवाहन के पश्चात् नये सृजन की चाह ताज़े, मांसल शब्दों में विवृत्त हुई है :

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली ।
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मासल हरियाली ।

" युगवाणी " में संकलित " दो लड़के " शीर्षक कविता की भाषा में निहित बोलचाल का प्रवाह छायावादी काव्यभाषा के एक विशिष्ट मोड़ की ओर संकेत करता है । बोलचाल में भी कविता का संप्रेषण हो सकता है, इसका अच्छा प्रमाण " दो लड़के " से मिलता है । पासी के बच्चों का अंकन करने के लिए कवि में जो आत्मविश्वास और आत्मीयता होनी चाहिए, वह इस कविता में देखी जा सकती है :

मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे ।

सामान्यत: कोमल- सुकुमार चित्रण के लिए प्रसिद्ध पंत इन दो लड़कों के अंकन में एकदम बोलचाल की भाषा पर उतर आते हैं :

मेरे आँगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लड़के आ जाते हैं अक्सर,
नंगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले पर फुर्तीले ।

" ग्राम्या " अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी प्रयत्न है । यद्यपि 'निवेदन' में कवि ने कहा है - " इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है । ग्राम-जीवन में मिलकर, उसके भीतर से ये अवश्य नहीं

लिखी गई है ।" -- लेकिन कविताओं को पढ़ने के बाद इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता । ग्रामीण जीवन की करुणा और विडम्बना कविताओं में मुखरित हुई है । विशेषत: वे आँखें " जैसी कविता का शब्द-चित्र बहुत मार्मिक बन पड़ा है । किसान की अगाध विवशता, भयावह, दयनीयता उसमें से विवृत होती है :

अंधकार की गुहा सरीखी
 उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
 दैन्य दु:ख का नीरव रोदन ।

अधिकतर या कहें निरंतर दु:खों के थपेड़े सहते-सहते एक स्थिति ऐसी आती है, जिसमें भयानकता का समावेश होता है ; जीवन अपने नग्न-कठोर रूप में एकदम भयावह लगने लगता है । यहाँ " अंधकार की गुहा " जैसी विशिष्ट मानचित्र कठोर-जीवन का निर्मम साक्षात्कार कराता है ।" विज्ञापन " जैसे सामान्यत: अकाव्यात्मक समझे जानेवाले, गद्य शब्द को पंत विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त कर अर्थवान बना दिया है, जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

मानव के पाशव पीड़न का
 देती वे निर्मम विज्ञापन !

मानव की शोषण-वृत्ति पर इतना तीखा- और वह भी संयम की मुद्रा बाँधते हुए - व्यंग्य " विज्ञापन " प्रयोग के माध्यम से कवि कर पाया है । इस तरह पूरी कविता स्वाधीन किसान के आहत स्वाभिमान, पुंजीभूत असहायता का संवेदनशील अंकन करती है ।

" ग्राम्या " की " ग्रामयुवती " शीर्षक कविता में गाँव की युवती का जो चित्र पंत उतारते हैं, वह विशिष्ट है । रूप का चपल-मनोहर रूप यहाँ देखा जा सकता है । ग्राम युवती की अकृत्रिमता-युक्त जीवन- स्थिति उल्लसित शब्दों और थिरकती छंद गति से एकरूप हो जाती है :

उन्मद यौवन से उभर
 घटा-सी नव असाढ़ की सुन्दर,

अति श्याम वरण
श्लथ मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम्युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर ।

ग्राम्य-यौवन का अकुंठ-उन्मुक्त अंकन विशिष्ट भंगिमा से संपन्न भाषा में हुआ है । शब्दों की संवेदना से संपृक्ति इस रूप में देखी जा सकती है कि उनमें से उल्लास का उत्स फूटा पड़ रहा है। पंत के वायवीयता प्रधान पूर्ववर्ती सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रों के बीच यह तरल-स्वच्छ सौन्दर्यांकन उल्लेखनीय है :

सरकाती पट
खिसकाती लट
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट ।
हँसती खलखल
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनों से अधरों के तार

पंत ने धोबियों और चमारों के नाचकेचित्र भी कविता में उतारने की कोशिश की है । काव्य-विषय बनाने के ये बढ़िया और साहसिक प्रयास है ।" चमारों का नाच " यों प्रस्तुत किया गया है :

अ र र र
मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंग
धमक धमाधम रहा मृदंग
उछल कूद, बकवाद, झड़प में
खेल रही खुल हृदय उमंग
यह चमार चौदस का ढंग ।

गीत-नृत्य के साथ प्रहसन भी चलता है, जिसमें नगण्य चमार जमींदार पर 'फबती कसता' है। निराला के 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की रचनाओं में निहित व्यंग्य-विनोद-भाव के समानान्तर ये पंक्तियाँ हैं :

जमींदार पर फबती कसता,
बाम्हन ठाकुर पर है हँसता
बातों में वक्रोक्ति काकु औ'
श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
कह काँटा को कह कलकत्ता

'ग्राम्या' में संकलित 'वह बुड्ढा' कविता पंत की शब्द चित्र-निर्माण की क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है। भिखारी का बुढ़ापा पंत के चित्रों में साकार हो उठा है। उसके अंग-प्रत्यंग का सहानुभूतिपरक अंकन अपने में अभूतपूर्व है :

उभरी ढीली नसें जाल-सी
सूखी ठठरी से हैं लिपटी
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों
सूनी अमरबेल हो चिपटी।

सूखी ठठरी से लिपटी ढीली नसों के सादृश्य संवेदन को कवि ठूँठे तरु से चिपटी सूनी अमरबेल के अप्रस्तुत में से विकसित करता है। यह चित्र बहुत करुण बन पड़ा है। इस तरह बुड्ढे का शब्द-चित्र प्रस्तुत करने के बाद कवि उससे अपनी प्रतिक्रिया को अंत में यों रखता है -

काली नारकीय छाया निज
छोड़ गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक सा कुछ, दुःखों से
मनुज गया शायद उसमें मर।

'काली नारकीय छाया' के प्रयोग द्वारा कवि बुड्ढे की भिखारी की दयनीय स्थिति से सम्पृक्त अभिजातवर्गीय मानसिकता को सटीक स्वर देता है - अभिजात वर्ग को उसमें मनुष्यत्व नहीं दिखाई देता। वह अन्तस् तक मनुष्यता का नारा लगाकर

प्रभावहीन सृष्टि होने के संभावित खतरे से बचकर मनुष्य की कटु यथार्थ से अलगाव की प्रवृत्ति पर गहरा व्यंग्य करता है । उस बुड्ढे भिखारी के प्रति दया-सहानुभूति दिखलाना तो दूर रहा, उससे तथाकथित सुरुचिसंपन्न मानस की सुकोमल भावनाओं को बाधा पहुँचाती है, क्योंकि वह उसके सुन्दर और सुकुमार स्वप्नों पर आघात करता है :

काली नारकीय छाया निज
छोड़ गया वह मेरे भीतर

इस तरह पंत ने आधुनिक मनुष्य की तथाकथित शिष्टता का यहाँ कौशल पूर्वक पर्दाफाश किया है। यह पूरी कविता अपनी संरचना में, ठेठ शब्द-विन्यास में बेजोड़ है । निराला की " भिक्षुक " (परिमल में संकलित) और पंत की " वह बुड्ढा " कविताएँ अपनी-अपनी संवेदना में सफल बन पड़ी हैं । " भिक्षुक " में दीनता से तादात्म्य करने की साफ झलक है, " वह बुड्ढा " में यथार्थ जगत की कुरूपता से तादात्म्य करने में संकोच करनेवाले मानस का उद्घाटन कर कवि जैसे उसकी-या अपनी ही-सुरुचिसंपन्नता पर व्यंग्य करता है ।

ग्राम्या के बाद के काव्य-संकलन-स्वर्ण धूलि ", " स्वर्ण किरण ", उत्तरा ", " अतिमा ", " वाणी " आदि - में अन्तर उद्बोधन का केन्द्रीय स्थान है । इनके बाद " कला और बूढ़ा चाँद " (१९५९ ई०) " किरण-वीणा " (१९६६ ई०) " पुरुषोत्तम राम (१९६६ ई०) " पौ फटने से पहले " (१९६७ ई०) जैसे अन्य काव्य-संग्रह हैं । " लोकायतन " के रूप में बृहद् काव्य की रचना करने का श्रेय भी पंत को प्राप्त है । विषय की सीमा (छायावादी काव्यभाषा) से बाहर होने के कारण इनका विश्लेषण यहाँ नहीं किया जा रहा है । इतना कहा जा सकता है कि ये सारी रचनाएं पंत के सतत विकासशील कवि-व्यक्तित्व का परिचय देती है। " कला और बूढ़ा चाँद " में तो पंत प्रयोगशील कवि के रूप में उभरे हैं ।

पंत की काव्यभाषा का स्वरूप प्रसाद और निराला की तुलना में दूसरी तरह का है । विश्लेषित कविताओं के अन्तर्गत यह देखा जा सकता है कि जटिल और व्यापक अनुभव-संवेदन को रचाना-पचाना उनकी काव्यभाषा की सामर्थ्य से बाहर की बात है, उसकी वृत्ति उनको फैलने में, अपने

व्यक्तित्व में उनको आत्मसात् करने में नहीं रमती ।

लेकिन इसकी क्षति-पूर्ति बहुत कलात्मक रूप में उनकी सूक्ष्म-दुर्लभ चाक्षुष कल्पनाएँ करती हैं । यह ठीक है कि जटिल-सूक्ष्म अनुभव संश्लेषण कुशल कवि के भाषा-प्रयोग द्वारा अर्थ के स्तर पर गतिशील और उन्मुक्त बनकर कविता को समृद्ध बनाए रहता है । चाक्षुष कल्पना-प्रधान छवियों में अर्थ के स्तर पर इतनी उन्मुक्तता और संचरणशीलता नहीं रहती, फिर भी वे कविता का एक विशिष्ट पक्ष हैं और कवि की कल्पना सामर्थ्य की पहचान हैं । पंत की चित्रात्मक कल्पना में निहित पैनेपन और मर्मज्ञता के उदाहरण-स्वरूप " एक तारा " में सांध्य प्रकृति का चित्र देखने योग्य है । जहाँ उन्होंने जन-संवेदना को स्वर दिया है, वहाँ भी शब्द-चित्रों की अवस्थिति है । ग्रामयुवती का बेलौस तरल अंकन, धोबियों और चमारों को नृत्य का आत्म विश्वासपरक चित्रण, ग्रामश्री के देसी वैभव की अभिव्यक्ति , बुड्ढे भिखारी का अपूर्व रेखांकन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । जनसामान्य का उन्मुक्त निश्छल जीवन इन शब्द-चित्रों में ही मुखरित हो उठा है ।

अ ध्या य - ६

महादेवी की काव्यभाषा

महादेवी की काव्यभाषा आरम्भ से अन्त तक एकरूप और एकरस रही है, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रसाद की एकरूप और एकरस भाषा से उद्भूत होनेवाली जटिल-सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं की संभावनाएँ नहीं विवृत करती। महादेवी की काव्यभाषा में कुल मिलाकर समूचा अनुभव रचने का आग्रह कम है, समग्र प्रभाव निर्मित करने की आकुलता थोड़ी है ; रूपकात्मक और चित्रात्मक छवियों को उकेरने तथा लयात्मक मृदुता (निराला की तरह लयात्मक उद्भावना के स्तर पर नहीं) को बार-बार माँजते रहने की प्रवृत्ति अधिक है।

छायावाद के कवि चतुष्टय में निराला और पंत भाषा के अनेक स्रोतों को उन्मुक्त करते चलते हैं। यह दूसरी बात है कि निराला हर स्रोत को उन्मुक्त करने में समान और सहज रूप से लगा रहे हैं। दोनों कवियों की काव्यभाषा कविता के विविधरूपा विधान का निर्वाह करती है। एक ओर " जुही की कली "," बादल-राग "," संध्या सुन्दरी "," स्नेह -निर्झर बह गया है "(निराला)," प्रथम रश्मि "," बादल ", " मौन निमंत्रण " (पंत) जैसी कविताएँ हैं, दूसरी ओर " तुलसीदास "," राम की शक्ति-पूजा "," सरोज-स्मृति "(निराला) ," परिवर्तन " (पंत) की तरह लम्बी, सुगठित कविताएँ हैं। प्रसाद की स्थिति भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक साहसिक है, क्योंकि उनमें भाषा के एकरूप को ही तरह-तरह के विधानों के अनुरूप ढालने की अद्भुत क्षमता है, यद्यपि मूलतः सभी विधानों में वही गीतात्मक सूक्ष्मता है। इसी कारण 'आह रे, वह अधीर यौवन " जैसी तीव्र प्रखर ,मांसलगीत सृष्टि के साथ वे " कामायनी " जैसा लम्बा, बौद्धिक उन्मेष से युक्त प्रबन्धात्मक काव्य तक रचने में सक्षम हुए। महादेवी की भाषा का समस्त रूप विधान के क्षेत्र में वैविध्य अथवा किसी तरह के परिवर्तन की गुंजाइश नहीं रख पाया है। वही गीतात्मक विधान पहले संकलन

नीहार "(१६३० ई०) में मिलता है, उसी का पोषण अन्तिम संकलन " दीपशिखा" (१६४२ ई०) तक होता गया है । यह दूसरी बात है कि रचना-प्रक्रिया उत्तरोत्तर प्रौढ़ और सक्षम होती गई है ।

नीहार " से ही इस बात का आभास मिल जाता है कि महादेवी में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है, संवेदना को कविता के स्तर पर विश्वसनीय बनाने की ओर रुभान नहीं है । इसीलिए महादेवी की कविता में मांसलता के बजाय वायवीयता अधिक है । छायावादी काव्यभाषा को लाक्षणिक बनाते चलने की प्रवृत्ति पंत और महादेवी में सर्वाधिक है ।" नीहार" से अनेक उद्धरण इस स्थापना की पुष्टि स्वरूप रखे जा सकते हैं -

निशा की धो देता राकेश / चाँदनी में जब अलकें खोल ('विसर्जन')
नीरव नभ के नयनों पर / हिलती है रजनी की अलकें ('अतिथि से')
रजनी ओढ़े जाती थी / फिलमिल तारों की जाली ।
उसके बिखरे वैभव पर / जब रोती थी उजियाली ('मेरा राज्य')

यह लाक्षणिकता किसी सार्थक भाव-छवि या कि रूप-छवि ही - की रचना करने पर महत्वाकांक्षी कोशिश बन जाती है, जैसे लज्जा की स्वरूप छवि आँकते हुए प्रसाद इस तरह की लाक्षणिकता का निर्माण करते हैं-

वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए

अंतिम दो चरणों में निपट लाक्षणिकता है, लेकिन वह चमत्कार के स्तर पर नहीं है । मधु-ऋतु (वसंत) की मादकता, सरसता और तारुणी का अनुभव लज्जा के अनुभव से एकरूप हो जाता है, आँखों में पानी भरे हुए प्रयोग की लाक्षणिक भंगिमा शालीन और मृदु मादन-भाव का रूपायन करती है । महादेवी की लाक्षणिकता कथन-भंगिमा से आगे कम बढ़ पाती है ।" नीहार के इन उद्धरणों में कहने का नया ढंग भर है, उक्ति वैचित्र्य का निर्वाह है, भिन्न प्रभाव उद्भूत करनेवाली नवीन कल्पनात्मकता है (उसके बिखरे वैभव पर / जब रोती थी उजियाली,); संवेदना को सम्प्रेषण से भरने की कोशिश नहीं है ।

एकान्तिक रूप से वेदना की साधना में रत रहने की प्रवृत्ति महादेवी के हर काव्य संकलन में देखी जा सकती है। 'नीहार' की 'निश्चय' कविता में उन्होंने अपनी वेदना का प्रकृति-व्यापी अंकन किया है, जो किसी भी तरह अनुभावन-क्षमता को विकसित करने की कोशिश नहीं करता। केवल खण्ड-चित्रों की रमणीक कल्पना (जिसमें किसी ठोस अर्थ-छवि की संभावना नहीं है) को उपलब्धि समझने की बात और है, जैसे -

कितनी रातों की मैंने
नहलायी है अँधियारी
धो डाली है संध्या के
पीले सेंदुर से लाली ;

नभ के धुँधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे
इन आहों पर तैराकर
रजनीकर पार उतारे।

इस तरह की अलंकरण-प्रवृत्ति (जिसमें बिंबात्मकता की अपेक्षाकृत अधिक गंभीर और संवेदनशील रचना-प्रक्रिया नहीं है) यह संकेत देती है कि यहाँ कवयित्री वेदना के माध्यम से किसी सार्थकता का अनुभव नहीं कर पा रही है। कहीं-कहीं इस अलंकरण से कविता बनने की स्थिति संभव होती है, जैसे- पीड़ा मेरे मानस से / भीगे पट-सी लिपटी है।

यहाँ भीगे पट का बिंब चित्रात्मकता, उक्ति-वैचित्र्यपरक कल्पनात्मकता से आगे की स्थिति का सफल अंकन करता है, पीड़ा से संपृक्त मानस की आर्द्र स्थिति को भीगे पट के उल्लेख द्वारा सजीव बनाया गया है। इसी तरह अंत के अंश - बिना किसी बिंबात्मकता के - बहुत नाजुक, निर्दोष ढंग से पीड़ित मानस की सूक्ष्म-कोमल स्थिति का संस्पर्श किया गया है -

ठहरो बेसुध पीड़ा को
मेरी न कहीं छू लेना
जब तक वे आ न जायें
बस सोती रहने देना !!

कुछ-कुछ इसी भावभूमि पर प्रसाद की " विषाद " कविता का यह अंतिम अंश है, जिसमें छंद की ढीली-ठहरी गति के कारण अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादकता है :

किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ
करुणा का विश्रान्त चरण है।

" नीहार " में महादेवी की प्रक्रिया मितकथन की नहीं है, पुनरावृत्ति की है। यह प्रवृत्ति गीत की सूक्ष्म प्रकृति से मेल नहीं खाती। आगामी संकलनों में भी यही प्रवृत्ति है, भले ही उनमें उत्तरोत्तर रचना के स्तर पर कसावट आती गयी हो। " नीहार " की " नीरव भाषण " कविता इस संदर्भ में उल्लेख्य है। कवयित्री मौन की अवस्थिति के संबंध में कहना चाहती है, लेकिन वह निराला की " मौन " कविता (परिमल) की तरह कोई संश्लिष्ट अनुभूति नहीं उपलब्ध कर पाती, सिर्फ एक बात को कहने के लिए कई ढंग अपनाती है। यहाँ दो अंश रखे जा रहे हैं :

जहाँ बनती पतझार बसन्त
जहाँ जागृति बनती उन्माद
जहाँ मदिरा देती चैतन्य
भूलना बनता मीठी याद
जहाँ मानस का मुग्ध मिलन
वहीं मिलता नीरव भाषण।

जहाँ विष देता है अमरत्व
जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत
अश्रु है नयनों का शृंगार
जहाँ ज्वाला बनती नवनीत,
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण।

अनुभव से सार्थक सर्जनात्मक रिश्ता जुड़ने पर अपनी सपाटता में, बेलौस तीव्रता में, इस तरह की कविता उपजती है, पूरे-का-पूरा उद्धृत किया जा रहा है :

जो तुम आ जाते एक बार

कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार ।

हँस उठते पल में आर्द्र नैन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित विराग,
आँखें देती सर्वस्व वार ।

यहाँ सचमुच उपलब्ध उल्लास नहीं है बल्कि मन की साध के पूरा होने की संभावना से उद्भूत उल्लास है और यही इसकी विशिष्टता है। इस संभावना जन्य उल्लास का निर्दोष वहन अनावश्यक स्फीति-मुक्त शब्दावली करती है, जो लय के घुले-मिले रूप में से अधिक भास्वर बन पड़ा है ।

" नीहार " के बाद " रश्मि "(१९३२ ई०) महादेवी का दूसरा काव्य संकलन है । यहाँ भाषा और संवेदना का कोई ऐसा रचाव नहीं मिलता, जिससे कहा जा सके कि " नीहार " की तुलना में " रश्मि " महत्वपूर्ण गुणात्मक विकास की गुन्जाइश रखती है । उनकी भाषा में अभी वह ऊर्जा नहीं आ सकी है, जो रहस्यात्मकता और वेदना के प्रति निष्ठा को किसी सार्थक रचनात्मकता से संपृक्त कर सके । " स्मृति " कविता का उपक्रम तो ऐसा लगता है, जैसे कवयित्री कोई जटिल गंभीर बात कहने की कोशिश कर रही है, अन्तर्मन को समझने का साक्ष्य कर रही हो । लेकिन पूरी कविता का अनुभव सरलीकृत होकर रह जाता है, उसका समग्र

प्रभाव बहुत सीधा पड़ता है। शुरू में कुछ उम्मीद बँधती है -

कहाँ से आई हूँ कुछ भूल
कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती-सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लाता,
    विस्मृति सरिता के कूल ?

लेकिन बाद में परंपरित कथन-प्रणाली और चिर-परिचित प्रतीकात्मकता अभिज्ञान के अनुभव को बिलकुल जड़ कर देती है। एक अंश रखा जा रहा है -

किसी अमूल्य धन का हूँ कन,
टूटी स्वर लहरी की कम्पन,
या ठुकराया गया धूलि में
    हूँ मैं नभ का फूल ।

रूपकात्मकता के पूर्ण निर्वाह की चिन्ता छायावादी कवियों में महादेवी को रहती है। रश्मि की 'सुधि' कविता इसका अच्छा उदाहरण है। प्रिय की स्मृति से उद्भूत प्रतिक्रियाओं को वसंत के रूपक में अभिव्यक्ति मिली है। सुधि और वसंत के पदों का ब्यौरेवार उल्लेख अपने में इस बात का सूचक है कि महादेवी स्मृति के अनुभव को कविता के स्तर पर अधिकाधिक भरा-पूरा, गतिशील बनाने की कोशिश न करके भाषा के रूप-तंत्र की सजावट में क्रियाशील रहती है।

'रश्मि' में महादेवी की प्रतीक-योजना, शब्द-चयन सब इस कोटि का है, जो वैचित्र्यमयी कल्पना का संवहन कर सके। इसी कारण (और यह बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है) मनःस्थिति की जटिलता को रूपायित करने का उपक्रम करने के बावजूद महादेवी कवि-मानस की कल्पनात्मक-छवियाँ भर निर्मित करती हैं, जैसे 'उलझन' कविता में। प्रिय को न प्राप्त कर सकने के मूल में जो विवशताएँ हैं, वे वास्तविक जीवन-स्थितियों से नहीं उपजी हुई हैं, वे तो निश्छल, कारुणिक कल्पनाओं का प्रतिफलन है, जैसे इस अंश में -

अलि कैसे उनको पाऊँ ?
वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलकों के बंधन में,
मैं बाँध बाँध पछताऊँ ।

यहाँ प्रिय का व्यक्तित्व संपूर्ण प्रकृति में समाहित होकर व्यापक हो जाता है । पर यह प्रक्रिया किसी तरह की सघनता से संपृक्त होती, तो बड़ी उपलब्धि संभव होती । प्रकृति संबंधी बिंब-माला का एक अंश इस प्रकार है -

मेघों में विद्युत -सी छवि
उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में,
जिसमें मैं आँक न पाऊँ ।

' नीरजा' (१९३४ ई०) में पिछले दो संकलनों की तुलना में कहीं महत्त्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन परिलक्षित किया जा सकता है । भावनाओं में कुल मिलाकर संयम का समावेश है । भाषा में अभिजात गरिमा का विकास देखा जा सकता है ।' नीरजा' से यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि महादेवी की कविता रूपकात्मक अधिक है, बिंबात्मक कम । इसे यों कहना चाहिए कि रूपकात्मकता उनकी काव्यभाषा की विशेषता है । नीरजा में बड़ी संख्या इस तरह के सांगरूपकपरक गीतों की है (गीत सं० १२, ३६, ५३, ६८, ९९, १०१, १०४)। ' मैं बनी मधुमास आली' गीत में महादेवी अपने जीवन पर मधुमास का आरोप करती हैं । प्रारंभ से ही प्रस्तुत और अप्रस्तुत पक्ष परंपरा से चले आए हुए दो तत्व आगे बढ़ते जाते हैं, जिनके अन्तर्गत विषाद की करुण यामिनी है, सुधि के ऋतुराज का वर्णन है, पुलक की चाँदनी की छिटकन है, दृगों के आँसुओं की कालिन्दी की उमड़न है, इत्यादि । इस तरह दोनों पक्षों के ब्यौरेवार अंकन की कोशिश में मधुर विषाद से अपनी सार्थकता का आह्वान कविता के अनुभव में संश्लिष्ट होकर रस-व्यक्त नहीं पाता । यह तो है मधुमास का रूपक,प्रसाद के एक प्रणय-गीत में ऊषा का चित्र है, लेकिन उनकी प्रक्रिया महादेवी से भिन्न है । महादेवी की

रूपकात्मकता प्रसाद की कविता में नहीं रम पाती, वहाँ एक तो रूपक-तत्व रहता ही नहीं, विशुद्ध बिंबात्मकता रहती है, और अगर कभी रूपक की संभावना विवृत भी होती है, तो उसे बहुत कुशलता से कवि बिंबात्मकता की तरफ खींच ले जाता है।' आह रे, वह अधीर यौवन ' की शुरूआत में यौवन और घन दोनों पक्षों का अंकन है, लेकिन फिर रचनात्मक सावधानी के साथ कवि घन-पक्ष का ब्यौरेवार अंकन करना छोड़ देता है और अपना पूरा ध्यान अधीर यौवन की उद्दाम मांसलता के अनुभव को अर्थ के स्तर पर अधिकाधिक उन्मुक्त बनाने में लगाता है, घन-पक्ष के अवयव उसी में अन्तर्मुक्त रहते हैं या यों कहें, उसके अनुभव को और ज्यादा सघन करते चलते हैं। रचना के दौरान में अर्थ के अद्वैत [illegible] की व्यापक परिकल्पना डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने की है,[१] वह ऐसी ही प्रक्रिया में संभव हो पाता है। महादेवी की गीत में ब्यौरेवार द्विपक्षीय अंकन के कारण मधुमास कवयित्री के आह्लाद से घुल-मिल नहीं पाया है। फलत: अर्थ के अद्वैत की स्थिति संभव नहीं हो पाती।

सांगरूपक का वैभव महादेवी के इस गीत में देखा जा सकता है, जिसमें एकान्तिक साधना को दीपक के रूप में मुखरित किया गया है -

> क्या पूजन क्या अर्चन रे ?
> उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे।
> मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

इस तरह सांगरूपक की श्रृंखला अन्त तक क़ायम रहती है। सूक्ष्म साधना की यह पद्धति अपने में अनूठापूर्ण है, लेकिन यहाँ इतना ज़रूर जोड़ना होगा कि महादेवी की यह सांगरूपक-प्रणाली इस सूक्ष्म साधना के अंकन में अपनी तरफ़ से कोई नवोन्मेष नहीं कर पाती। इसीलिए इस गीत की परंपरागत संवेदना से भिन्न कोई विशिष्ट प्रतिमा नहीं निर्मित हो पाती।

कभी-कभी महादेवी गीत के संक्षिप्त कलेवर में भी विराट् बिम्ब निर्मित करती हैं।' लय गीत मदिर, गति ताल अमर, मैं सृष्टि की मूल शक्ति के स्वरूप का उसके कार्यकलाप का अंकन है। यह विराटता किसी द्वन्द्वमयी अनुभूति का बोध नहीं कराती, केवल एक बिम्ब रचना में दीप्यमान अक्षरता का, भले ही वह कितना विराट् क्यों न हो -

आलोक-तिमिर सित असित चीर ।
सागर गर्जन, रुनझुना मंजीर ;
उड़ता झंझा में अलक-जाल,
मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर ।
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।

अक्सर ऐसा लगता है कि कुशल चित्रकर्त्री होने के कारण महादेवी कविता में चित्रात्मकता की नियोजना सावधानी से करती है । " धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी' में वसंत-रजनी को रूपमात्र प्रदान किया गया है, मानवीकरण से आगे बढ़कर रजनी के माध्यम से किसी सार्थक नयी भाव-सृष्टि करने की प्रवृत्ति नहीं है । इस सांगरूपक में शब्दों का सतर्क, कलासम्मत चयन है, लय की मनोहारिता है, लेकिन निराला की " संध्या-सुन्दरी " जैसी मानवीय अनुभूति की उष्णता नहीं है । महादेवी की संध्या का जीवन मानवीय अनुभूति से अलग है । एक अंश द्रष्टव्य है -

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी ।
विहँसती आ वसन्त-रजनी ।

सिवाय कर्ण-प्रिय ध्वनियों और मध्यकालीन ब्रजभाषा-काव्य की-सी बाह्य लयात्मकता के और कोई विशिष्टता (जो उपलब्धि कही जा सके) नहीं उपजती । सांगरूपक को न तोड़ पाने की विवशता कवयित्री की रचना-प्रक्रिया को आधुनिकता से अलग करने के मूल में बहुत हद तक मानी जानी चाहिए ।

इसी तरह एक अन्य रात्रि-चित्र जो विभावरी " में महादेवी विभावरी को फिर सखी-सँवरी, प्रिय-प्रतीक्षा-रत नायिका के रूप में परिकल्पित करती है । भाषा संवेदना को कितने गहरे स्तरों पर प्रभावित करती है, यह केवल

उत्कृष्ट कविताओं के माध्यम से ही नहीं समझा जा सकता, अपेक्षाकृत हल्के स्तर की कविताएँ इस तथ्य की पहचान और वस्तुनिष्ठ ढंग से कराती है। महादेवी का यह गीत अपनी प्रकृति में मध्यकालीन भाषा-प्रयोग के कारण ब्रजभाषा काव्य की वासकसज्जा नायिका जैसी रूप-छवि ही निर्मित कर पाता है, विभावरी का रूप कवयित्री के अनुभव-क्षेत्र के किसी नवीन स्तर का संस्पर्श कर सका हो, ऐसा कुछ नहीं है। पहला अंश रखा जा रहा है -

ओ विभावरी !
चाँदनी का अंगराग,
माँग में सजा पराग,
रश्मि-तार बाँध मृदुल
चिकुर-भार री !
ओर विभावरी !

कहीं-कहीं शिल्पकारिता से मुक्त होने पर महादेवी ने अत्यन्त सुकुमार ढंग से तीव्र प्रखर भावना को अभिव्यक्त किया है -

तुम्हें बाँध पाती सपने में।
तो चिर जीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में।

एक क्षण की-भले ही वह सपने का क्षण क्यों न हो और यही तो उसकी विशिष्टताई- सार्थकता सारे जीवन को किस तरह कहीं गहरे जाकर रसात्मक बना देती है, यह इस सुन्दर गीत में देखा जा सकता है। इसी कारण यह प्रतीकात्मकता अतिरंजना की सूचक नहीं प्रतीत होती, अपितु " उस छोटे क्षण " की अद्भुत रचनात्मक ऊर्जा का बोध कराती है -

पावन-घन सी उमड़ बिखरती,
शरद-दिशा-सी नीरव घिरती,
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !

नीरजा " का एक अन्य गीत " तुम हो कायों में पाऊँ ", नये ढंग की आत्मीय

अनुनय का पोषण करता है । इस गीत की संगीतात्मकता संवेदना को अधिक आत्मीय और सुकुमार बनाती है -

तुम सो जाओ मैं गाऊँ ।
मुझको सोते युग बीते
तुमको यों लोरी गाते,
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ ।

गीत के अन्तिम अंश में 'अंजन' प्रयोग प्रेमास्पद के प्रति निष्ठा को घरेलू ढंग की रागात्मकता प्रदान करता है -

पथ की रज में है अंकित
तेरे पदचिन्ह अपरिचित,
मैं क्यों न इसे अंजन कर
आँखों में आज बसाऊँ ।

आँखें शरीर का सब से मूल्यवान् तथा सुकुमार अवयव है । उनमें प्रिय के पद-चिन्ह का अंजन लगाने की लालसा न केवल इस अंतिम अंश को, अपितु समूचे गीत को भावपूर्ण गरिमा से संपृक्त कर देती है । ऐसे गीतों की संगीतात्मक लय संवेदना को प्रभावित करती चलती है ।

'सांध्यगीत' (१९३६ ई०) महादेवी का चौथा काव्य-संकलन है-रचना-प्रक्रिया का चौथा याम । चूँकि वे शुरू से ही अपनी संवेदना में एकरूप रही है, इसीलिए 'सांध्यगीत' में भी एक से प्रतीक और चित्रों की नियोजना है, एक ही बात को विविध संदर्भों में रखकर कहने की प्रवृत्ति है । एक महत्वपूर्ण गुणात्मक विकास इस रूप में परिलक्षित किया जा सकता है कि महादेवी की चित्रात्मक क्षमता 'सांध्यगीत' में अधिक सूक्ष्म, कलात्मक और प्रौढ़ हो गई है चित्र-निर्माण में वे अधिक दक्ष तथा उस्ताद बन गई है ।' शशि मैं हूँ अमर सुहाग भरी ' का यह अंश द्रष्टव्य है -

अरुणा ने यह सीमन्त भरी
संध्या ने दी पद में लाली,

मेरे अंगों का आलेपन
करती राका रच दीवाली ।
जग के दागों को धो धोकर
होती मेरी छाया गहरी ।

लेकिन अधिकांश गीतों की प्रभाव-छवि एक सी ही ही है- वही सरलता से परिकल्पित सार्थकता के अनुभव को अधिकाधिक प्रतीकों, चित्रों के माध्यम से ग्राह्य बनाने की कोशिश यहाँ भी है । कहना न होगा कि काव्यभाषा के इस रूप में अर्थ की गूँज-अनुगूँज व्युत्पन्न करने की क्षमता विकसित नहीं हो पाई है । कभी-कभी कवयित्री के मानस में कोई जटिल रचनात्मक उन्मेष होता है, लेकिन द्विपदीय अंकन का मोह उसको पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं होने देता । सांध्य गीत " का पहला गीत " प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन " इस कथन का अच्छा उदाहरण है । कवयित्री के मानस में एक सृजनात्मक अनुभव जन्म लेता है, तभी तो वह संध्याकालीन चित्र में से अपने जीवन के किसी सत्य को उरेहना चाहती है -

प्रिय । सांध्य गगन
मेरा जीवन ।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि-भीने स्वप्न रंगीले घन ।

लेकिन इस तरह के द्विपदीय अंकन की जो पद्धति कवयित्री प्रारंभ करती है, उसका अंत तक निर्वाह करने की चिन्ता उसे इतना ग्रस्त कर लेती है कि वह संध्या के अनुभव से अपने जीवन के रहस्य को संपृक्त कर अर्थ के स्तर पर उसे सुकल्पनीय बनाने की कोशिश नहीं कर पाती । इसीलिए यह कहना पड़ता है कि महादेवी में अलंकरण है, रंगों की सजावट है;पर उदासी का अनुभव रचाने-पचाने की पूरी क्षमता ऐसी प्रक्रियाओं में नहीं होती ।

" दीपशिखा "(१६४२ ई०) महादेवी का अब तक प्रकाशित अन्तिम काव्य-संकलन है । यहां तक उनकी काव्यभाषा की भंगिमाएँ बदली नहीं हैं —

एक से प्रतीक, विशिष्ट ढंग के शब्द, रूपकात्मकता की वही चिर-परिचित प्रणाली। नाम के अनुरूप 'दीपशिखा' में दीपक का प्रतीक अधिकांशतः नियोजित हुआ है। लेकिन उल्लेखनीय यह है कि जिस साधना का महादेवी बार-बार अंकन करती है, जिस दृढ़ता, मनस्विता को स्वर देती है, वह अर्थ के स्तर पर कोई सार्थक रचाव नहीं पैदा करती। उनकी भाषा उनकी आत्म-स्थितियों में रची-बसी नहीं प्रतीत होती, वेदना के माध्यम से सार्थकता उपलब्ध करने का उनका दृढ़ निश्चय अनुभव की श्रेणी में नहीं आ पाता, क्योंकि वह शब्दों की अतिशय कलात्मकता में एक विभ्रम उपजाता है। इस विश्लेषण के आलोक में महादेवी के वेदना-भाव पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा की गई कड़ी टिप्पणी की सच्चाई खुलकर सामने आती है: "इस वेदना को लेकर इन्होंने (महादेवी ने) हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी है, जो लोकोत्तर है। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ है, और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।[१] शब्दों की सतर्क, सुरुचि सम्मत नियोजना कवयित्री के व्यक्तित्व में रची-पची कलात्मक सुघरता की द्योतक है, जिसमें जीवन-स्थितियों की व्यापक विषमताओं, जटिलताओं से उपजी प्रतिक्रियाओं को फेलने की सामर्थ्य नहीं है।" 'पथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला' का एक अंश द्रष्टव्य है -

घेर ले छाया अमावन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ' पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला।

महादेवी ने मृत्यु की परिकल्पना जिस रूप में की है, वो 'तू धूल भरा ही आया' गीत में देखी जा सकती है। इस विशिष्ट सहिष्णु संवेदना

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६३८

को अनुभव के स्तर पर गुणात्मक नवोन्मेष देने के लिए महादेवी जननी और बालक के बिंब को अधिक सार्थक कलात्मकता के साथ रच सकती थी, किन्तु अनावश्यक प्रतीक-मोह उनको वैसा नहीं करने देता । फलत: मृत्यु के साथ जीव के नये रचनात्मक संबंध का अनुभव संश्लिष्ट न बनकर कवयित्री का एक सरलीकृत दृष्टिकोण मात्र रह जाता है । प्रतीकों में अपनी बात कहने की प्रवृत्ति महादेवी को इस तरह के प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है -

साधों ने पथ के कण मदिरा से सींचे
झंझा आँधी ने फिर-फिर आ दृग-मींचे
आलोक-तिमिर ने क्षण का निछाया

इस तरह एक के बाद एक प्रतीकों का क्रम चलता रहता है, फलस्वरूप जननी और बालक का बिंब (" ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु-जननी ने अंक लगाया") कवयित्री के दृष्टि-केन्द्र में कभी नहीं आता ।

घटा के मिट चलने में महादेवी साधना की गरिमा को एक बार फिर नये सिरे से स्वर देना चाहती है, लेकिन यहाँ फिर सांगरूपक का व्यौरेवार निर्वाह - और वह भी स्थूल चित्र के स्तर पर - मिट चलने में निहित व्यथा,वेदना, समर्पण-भाव की मिली-जुली अनुभूतियों को पीछे कर देता है, वे उभरने ही नहीं पाती । एक अंश प्रस्तुत है -

मिट चली घटा अधीर
चितवन तम-श्याम रंग
इन्द्रधनुष भृकुटि-भंग
विद्युत का अंगराग
दीपित मृदु अंग-अंग,
उड़ता नभ में अछोर मेरा नव नील चीर ।

महादेवी की काव्यभाषा के अध्ययन से एक रोचक निष्कर्ष यह निकलता है कि उनकी कविता में सम्पन्नता और विशुद्धता कम है । भाषा के रूप-रंग के प्रति आसक्ति कम है, उनकी भाषा की प्रवृत्ति अपने में इस तथ्य का प्रमाण

है कि उनकी वेदना सायास उपलब्ध की गई अनुभूति है, शब्दों का जीवन चूँकि जटिलता से छनकर नहीं सामने आया है, अत: उनकी वेदना-साधना में प्रसाद जैसी गहराई नहीं नज़र आती । भाषा में वह योजना नहीं है, जिससे वेदना से प्राप्त आनन्द का अथवा शुद्ध वेदना का सालता हुआ, तीखा अनुभव हो सके ।

महादेवी का काव्य प्राय: संगीतमय रहा है, अत: खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा में अधिकाधिक मार्दव लाने के लिए उन्होंने ब्रजभाषा के शब्दों का भी यत्र-तत्र पुट दिया है ।" पाती "," बाती "," आली " , मनुहार ", " आँसू "," बलाएं ," दुलराने "," रीते (" नीरजा ")," निठुर ",(दीपशिखा ") जैसे न जाने कितने प्रयोग उनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं ।

महादेवी के प्रतीकों में अस्पष्टता बहुत जाह है । प्रतीक बहुधा वास्तविक जीवन-संवेदन से संपृक्त नहीं लगते, इसीलिए उनकी कविता में रहस्यवादिता की झलक जगह-जगह दिखलाई देती है । प्रतीकों और रूपकों की अधिकता में सार्थक-संश्लिष्ट बिंब-सृष्टि संभव नहीं हो पाती, जो अनुभव को उभारे पर सघन बनाये । वस्तुत: महादेवी की काव्यभाषा चित्रात्मकता और संगीतात्मकता का पोषण करती है और इस स्तर पर छायावादी काव्यभाषा की एक प्रमुख प्रवृत्ति को उभारती है ।

अ ध्या य - ७

छायावादी काव्यभाषा का स्वरूप

आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी में रचनात्मक व्यक्तित्व उद्भूत होता है छायावादी काव्यभाषा के साथ। इसके पूर्व द्विवेदीयुगीन अर्थ-छाया-शून्य, इतिवृत्तात्मक खड़ीबोली रचना के स्तर पर ब्रजभाषा की तुलना में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं कर सकी थी। अतएव छायावादी कवियों के लिए यह ज़रूरी हो गया कि वे सर्जनात्मकता को नये ढंग से अभिव्यक्त करने की दिशा में प्रयत्नशील काव्यभाषा की खोज करें। रीतिकालीन स्थूलता के स्तर पर उतर आये हुए एकांतिक श्रृंगार-काव्य और द्विवेदीयुगीन अनुभव से असंपृक्त अतएव अविश्वसनीय प्रतीत होनेवाले सुधारात्मक काव्य की भावभूमियों से अलग नयी रचनात्मक भावभूमि पर छायावादी काव्य का विकास हुआ, जिसे बहुत बार समीक्षकों ने प्रतिक्रिया-श्रृंखला के रूप में देखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि यही रही -" यह पहले कहा जा चुका है कि छायावाद का चलन द्विवेदी -काल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था।"[१]

यह ठीक है कि कोई साहित्यिक धारा निरपेक्ष रूप से नहीं विकसित होती, अपने पूर्ववर्ती और समकालीन वातावरण से किसी-न-किसी स्तर पर प्रभावित अवश्य होती है। छायावाद के संबंध में स्वयं महादेवी वर्मा ने कहा है : " उस युग (द्विवेदी युग) की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं।"[२] इसके बावजूद यह ध्यान रखना चाहिये कि केवल प्रतिक्रिया या विद्रोह स्वरूप कोई साहित्यिक धारा रचनात्मक नहीं होती। छायावाद के संदर्भ में प्रतिक्रिया या विद्रोह-भाव का उल्लेख करते समय यह नहीं भूलना चाहिये कि यह छायावादी कविता की सर्जनात्मकता को

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८१

२) आधुनिक कवि, पृ० ६

उत्तेजना भर देनेवाला था, बाकी इससे यह अर्थ लगाना कि छायावादी काव्यभाषा पूर्ववर्ती, बँधे-बँधाये स्थिरीकृत नियमों के विरुद्ध प्रतिक्रिया मात्र थी, उसके माध्यम से विकसित हो रही हिन्दी काव्यभाषा की नयी और महत्वाकांक्षी जीवनी-शक्ति को उचित महत्त्व न देना है।

छायावादी काव्यभाषा की सामान्य व्याख्या अब तक - चाहे सोच-समझ कर या अनायास भाव से - पंत और महादेवी की काव्यभाषा के आधार पर की जाती रही है। इस रूप में इन दोनों कवियों की काव्यभाषा छायावादी काव्यभाषा का प्रतिनिधित्व मानी जाती है। परिणामत: छायावादी काव्यभाषा के केन्द्र में चित्रात्मकता, लाक्षणिकता और खण्ड चित्रों को रखा जाता रहा है। यह व्याख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास से ही आरंभ हो जाती है, " चित्रभाषा " या अभिव्यंजन-पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया, तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने " छायावाद " का नाम ग्रहण किया।"[१]

चित्रात्मकता छायावादी काव्यभाषा की एक प्रमुख विशिष्टता है-इसमें दो राय नहीं हो सकती, लेकिन उसे केन्द्र में रखकर की जानेवाली छायावादी काव्यभाषा की व्याख्या किसी तरह के ठोस निष्कर्ष नहीं प्रस्तुत कर सकती। छायावादी काव्यभाषा का वृहत्तर स्वरूप उसके माध्यम से देखा-समझा नहीं जा सकता। काव्यभाषा अपने श्रेष्ठ अंशों में अर्थ-संश्लेषण है और छायावादी काव्यभाषा के लिए भी, उसके सर्जनात्मक अंशों में, यह बात सही है। इस तथ्य का अनुभव आश्चर्य की सृष्टि करता है कि अर्थ-संश्लेषण की प्रक्रिया का साक्षात्कार छायावादी कविता से पूर्व हिन्दी कविता में, खास तौर से द्विवेदी-युगीन काव्य में प्राय: नहीं संभव होता।

पहली बार हिंदी कविता में छायावाद के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार, आत्म-दाय, आत्म-प्रवंचना के अनुभवों को खुलकर स्थान मिला है। इसी तरह, उदासी के अनुभव में एक विशिष्ट तरह का सुख हो सकता है, जो बहुत

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८२

सहजता से, विरोध के स्तर से अलग हट कर, रचाया-पचाया जा सकता है, इसका आस्वादन प्रसाद और निराला की कविताएँ कराती हैं । इस दृष्टि से ये दोनों कवि हिन्दी पाठक और समीक्षक की अनुभावन-क्षमता को प्रशस्त करते हैं । इस स्थापना की व्यावहारिक पुष्टि " विषाद " " ले चल वहाँ भुलावा देकर "," मधुर माधवी संध्या " में जब रागारुण कवि होता अस्त " (प्रसाद)" ," ठूँठ ", " स्नेह -निर्झर बह गया है " (निराला) जैसी अनेक कविताएँ करती है । इस तरह के अभूतपूर्व और जटिल-सूक्ष्म अनुभवों को अर्थ के स्तर पर संचरणशील बनाने की कोशिश में संलग्न हिन्दी काव्यभाषा एक अछूते आयाम का संस्पर्श करती है, क्योंकि किसी नये और साहसिक अनुभव-खण्ड को साक्षात्कृत कर सकने का अर्थ ही है - भाषा के किसी अछूते और रचनात्मक स्तर का संस्पर्श ।

हिन्दी कविता की इस नई धारा को " छायावाद " नाम से अभिहित कर भले ही आलोचकों ने उसका परिहास किया हो, उसके केन्द्र में अस्पष्टता दोष को रखा हो ; लेकिन छायावादी काव्यभाषा की अर्थ-प्रक्रिया का विश्लेषण करते समय यह " छायावादी " नाम एक आश्चर्यपूर्ण सार्थकता का एहसास कराता है - अर्थात् वह काव्यभाषा, जिसके अन्तर्गत अर्थ की अनेक छायाओं का पोषण हुआ हो । अपने "यथार्थवाद और छायावाद" शीर्षक निबन्ध में " छायावाद " शब्द की व्याख्या करते हुए प्रसाद ने " छाया " को मोती के भीतर निहित रहनेवाली कांति की तरलता से संपृक्त किया है, जो उनकी सूक्ष्म और साथ-ही सटीक कला-दृष्टि का सूचक है :" अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतरस्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति-छाया कान्तिमयी होती है ।[१]

छायावादी काव्यभाषा के गठन में आधुनिकता की ओर झुकाव की प्रवृत्ति है, यह उसके सूक्ष्म-जटिल बिंब-प्रयोगों के माध्यम से देखा जा सकता है । मध्यकालीन काव्य अपनी अर्थात्मकता किसी-न-किसी स्तर पर अलंकरण की अर्थ-छवियों में व्युत्पन्न करता था । अलंकार के क्रम में सांगरूपक का निर्दोष निर्वाह करने की प्रवृत्ति वहाँ अधिक थी, अप्रस्तुत को संप्रेषण के स्तर पर बिंब में पर्यवसित करने की रचनाधर्मिता कम थी । तुलसीदास जैसे श्रेष्ठ रचनाकार 'रामचरितमानस'

---

१) काव्य और कला तथा अन्य निबंध,पृ० १२६

के अयोध्याकाण्ड में (जो वस्तुत: 'रामचरितमानस' का हृदय है) बहुत दूर तक सांगरूपकों से काम लेते रहे हैं । इसे मध्यकालीन काव्यभाषा की एक सीमा और विशिष्टता भी - माना जा सकता है । छायावादी कवियों में महादेवी को भी सांगरूपक का विधान बहुत प्रिय रहा है । इसी कारण वे अपने गीतों में सांगरूपक की आयोजना, पूरे विस्तार में, सुरुचि बोधक तल्लीनता के साथ करती हैं । मैं बनी मधुमास आली "," ओ विभावरी" , जैसे अनेक गीत इस संदर्भ में रखे जा सकते हैं । महादेवी के समानधर्मा कवि प्रसाद , पंत और निराला सांगरूपक के लम्बे और ब्यौरेमूलक विधान को तोड़कर बिंब-रचना की ओर उन्मुख होते हैं ।" इस उन्मुखता से छायावादी कवियों की, संप्रेषण के प्रति, विशेष चिन्तना का बोध होता है । प्रसाद का प्रसिद्ध गीत" आह रे वह अधीर यौवन " सांगरूपक के बिंब में पर्यवसान का बढ़िया उदाहरण है । पर्यवसान की इस प्रक्रिया के कारण ही यौवन की उद्दाम आकांक्षाओं का अनुभव अर्थ के स्तर पर सुकुमार और अक्षत रह सका है । कवि ने अनावश्यक सज्जा नहीं की है । पंत ने" परिवर्तन " के भयावह विराट् रूप के ओजस्वी अंकन के लिए नृशंस नृप, वासुकि सहस्र फन, के रूपकों की आयोजना की है, लेकिन अपने संप्रेषण को उन्मुक्त करने के लिए वे प्रस्तुत -अप्रस्तुत का सांगोपांग अंकन न कर इन रूपकों के बिंब में संक्रमित करने का प्रयत्न करते हैं ।

छायावादी काव्य के बिंब प्राय: प्रस्तुत और अप्रस्तुत के द्वैत को लेकर निर्मित हुए हैं, लेकिन विशिष्टता यह है कि वहाँ से आरंभ करके उनमें अर्थ-संश्लेषण की प्रक्रिया क्रमश: संभव होती है । कवि अप्रस्तुतों का इस तरह से संयोजन करता है, जिससे उसके विभिन्न तत्वों में द्वन्द्वात्मकता उभरी रहे, अलंकार के अप्रस्तुत विधान की तरह वे एक और निर्दिष्ट अर्थ न उद्भूत करें, वरन् बिंब में अनुस्यूत विभिन्न तत्वों के रचाव को स्थान दें ।" कामायनी " से एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

और उस मुख पर वह मुस्क्यान
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।

यहाँ श्रद्धा की मुस्कान प्रस्तुत है और अरुण की अम्लान किरण अप्रस्तुत है, लेकिन पाठक की दृष्टि इस द्वैत पर नहीं टिकने पाती (वस्तुत: कवि इसकी गुन्जाइश ही कहाँ रख रहा है ?) । इसके कारण की खोज करना समीचीन रहेगा । अरुण की एक अम्लान किरण का अप्रस्तुत कई तत्वों से बना है -किरण अम्लान है, रक्त किसलय पर विश्राम कर रही है और अलसा गई है । यहाँ चाक्षुष संवेदन उतना नहीं है, जितना श्रद्धा की मुस्कान में निहित ताज़गी, मोहकता, सौन्दर्यजन अलसता को अर्थ के स्तर पर विकासशील बना रहने देने की रचनाधर्मिता । इसी मोड़ पर आकर यह अप्रस्तुत सर्जनात्मक काव्यभाषा में पर्यवसित हो जाता है, अलंकरण के अप्रस्तुत विधान की औदाया शिल्पकारिता से एकदम असंपृक्त ।

प्रस्तुत-अप्रस्तुत के द्वैत को छोड़कर सामान्य वर्णन में से ही बिंब रचने की प्रक्रिया साधारणत: छायावादी काव्यभाषा की नहीं है । बाद के नये कवियों ने - विशेषत: समसामयिक कवियों ने - काव्यभाषा के इस अपेक्षाकृत अधिक खुलनशील रूप से अपनी संसक्ति दिखलाई है,पर इसके बावजूद प्रसाद और निराला के काव्य में इस तरह की बिंब-प्रक्रिया की शुरुआत देखी जा सकती है । प्रसाद की " प्रलय की छाया " में कृष्णा गुरुवर्तिका का बिंब इसी कोटि का है,जिसके माध्यम से रूपगर्विता कमला की पश्चातापपूर्ण मन:स्थिति को कवि रूपायित करता है । " स्नेह-निर्झर बह गया है " में निराला वर्णन के स्तर पर एकदम आत्मीय भाव से टिके आम की सूखी डाल के बिंब में से अपने जीवन की रचनात्मक पूर्णता और अवसाद को एक साथ विवृत करते हैं ।

इस प्रसंग में छायावादी काव्यभाषा के एक अन्य वैशिष्ट्य का उल्लेख करना संगत रहेगा । वह है - उसकी अप्रस्तुत योजना की सूक्ष्म प्रकृति । पंत के काव्य से तो एक लंबी सूची इसके उदाहरण स्वरूप रखी जा सकती है । बहुत बार ऐसा लगता है कि कवि पंत केवल कल्पना-वैचित्र्य का प्रदर्शन कर रहे हैं, जैसे " छाया " कविता के ये अप्रस्तुत -

१) पहचाने की परछाईं-सी

२) दुर्बलता-सी अँगड़ाई -सी

कहीं-कहीं जैसे " स्याही की बूँद " कविता के सूक्ष्म अप्रस्तुत अनुभव की सूक्ष्मता के बजाय महज़ वायवीयता घोषित करते हैं । जहाँ ये सूक्ष्म अप्रस्तुत सम्मिश्रित और जटिल सूक्ष्म अनुभवों को अंकित करते हैं, वहाँ इनकी योजना महत्वाकांक्षी लगती है । लहर के लिए प्रसाद ने इस तरह के अप्रस्तुत रखे हैं :

करुणा की नव अँगराई-सी
मलयानिल की परछाई-सी

इस रूप में लहर एक चाक्षुष प्रतिमा-मात्र की निर्मिति ~~नश्वर परन्तु सुन्दर~~ से अलग होकर जीवनानुभूति से संपृक्त हो जाती है । नश्वर परन्तु सुन्दर जीवन की अनुभूति और लहर एक दूसरे में घुल-मिल जाते हैं ।" करुणा की नव अँगराई" में जहाँ जीवन की सुकुमारता, कारुणिकता और आकर्षण की व्यंजनाएँ हैं, मलयानिल की परछाईं के माध्यम से उसकी सूक्ष्म,अनिर्दिष्ट प्रकृति का रचना के स्तर पर एहसास होता है ।

छायावादी काव्यभाषा का दूसरा रूप उसकी चित्र-योजना में देखा जा सकता है ,विशेषत: पंत और महादेवी की काव्यभाषा का स्वरूप ऐसा ही है । बादल को लेकर की गई विविध कल्पनाएँ कवि पंत की कल्पना-पटुता का उत्कृष्ट साक्ष्य प्रस्तुत करती है । जहाँ चित्र योजना सूक्ष्म है - जैसे " एक तारा " के संध्याकालीन नीरवता के चित्र में - वहाँ पंत की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का आभास मिलता है । कुशल चित्रकवी होने के कारण महादेवी ने बहुत तन्मय रागात्मकता के साथ काव्यभाषा को चित्रात्मक व्यक्तित्व प्रदान किया है, जहाँ चित्रात्मकता है, पर अर्थ का संचरण नहीं हो पाता । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को चित्रभाषा कहा था" [१] यह बात पंत और महादेवी की काव्यभाषा के लिए ही अधिक लागू होती है ।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि छायावादी काव्यभाषा इतनी जल्दी प्रायः दो दशकों में रूढ़ कैसे हो गई ? इसके मूल में बहुत कुछ हाथ छायावादी काव्यभाषा की अतिशय चित्रात्मकता का है,जिसके कारण वह स्थिर लगने

---

१) हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ० ६८२

लगी । कल्पना -मोह, चित्रमोह, शब्दमोह - जिन्हें पंत की कविताओं के विश्लेषण-क्रम में देखा गया है - उसे रूढ़ बनाने में बहुत हद तक जिम्मेदार है । इसी तरह महादेवी की रचना के स्तर पर अक्सर अविश्वसनीय लगनेवाली प्रतीक-योजना से पाठक का तादात्म्य नहीं हो पाता । निराला भाषा की काव्यमुक्ति के लिए बराबर प्रयत्नशील रहे हैं ।" कुकुरमुत्ता" की रचना के माध्यम से उन्होंने हिन्दी भाषा की एक सर्वथा नयी क्षमता का उद्घाटन किया है । उन तक की छायावादी कविता में विशेषतः" गीतिका" के गीतों में - दुरूह और अस्पष्ट प्रयोग मिलते हैं । इस दृष्टि से प्रसाद की स्थिति विशिष्ट है । उनका शायद ही कोई प्रयोग छायावाद की शब्द-रूढ़ि बनाने में सहायक हुआ हो । उनमें जो कुछ कठिनता और दुरूहता है, वह उनके सम्मिश्रित और सीधे पकड़ में न आ सकनेवाले जटिल सूक्ष्म अनुभवों के साक्षात्कार की प्रक्रिया में इतनी रस-बस जाती है कि पाठक न समझ में आनेवाली जैसी शिकायत नहीं कर पाता ।

भाषा यथार्थ से अलग होकर सार्थक चेष्टाएँ नहीं कर पाती । वह स्वायत्त तथा व्यक्तित्ववान् तभी हो पाती है, जब उसमें यथार्थ के प्रति कुछ प्रतिक्रिया का योग हो । छायावादी काव्यभाषा युग के बदलते यथार्थ के साथ जूझने में असमर्थ हो गई, इसीलिए बाद के कवियों को नये सिरे से यथार्थ की व्याख्या करने के लिए भाषा में नई भंगिमाएँ गढ़नी पड़ीं । या यों भी कह सकते हैं कि भाषा रूढ़ हो जाने के कारण इन कवियों को नये युग का यथार्थ ही अग्राह्य हो गया । और तब नये भाषा-स्तर की खोज आरंभ हुई ।

छायावादी कवियों ने शब्दावली की दृष्टि से तत्सम को केन्द्रीय महत्त्व दिया है। तद्भव और देशी शब्दावली उनके शब्द-कोश में प्रायः महत्त्वहीन रही है । इसके मूल में बहुत कुछ पुनर्जागरणकालीन सांस्कृतिक चेतना हो सकती है । एक कारण यह भी हो सकता है कि छायावादी कवियों ने तद्भवों की सर्जनात्मक संभावनाओं पर गौर नहीं किया था, बोलचाल की भाषा में भी संप्रेषण हो सकता है-इतनी दूरी तक वे नहीं सोच सके । बाद में निराला के उन्मुक्त-विद्रोही कवि व्यक्तित्व ने इस सूत्र पर अपने ढंग से सोचा-समझा, फलस्वरूप "कुकुरमुत्ता" "नये पत्ते" की रचना हुई । दूसरे छायावादी कवि पंत ने भी - न सही निराला जैसी भाषिक क्षमता के साथ - बोलचाल में संप्रेषण विकसित करने की बात सोची।

कुकुरमुत्ता ' के भी पहले प्रकाशित 'ग्राम्या' इसका अच्छा उदाहरण है।

छायावादी कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों के प्रचुर प्रभावों को लेकर श्री विजयदेव नारायण साही ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना रखी है : " छायावाद ने जिस तरह संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया, वह हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है। साही जी के अनुसार " हिन्दी काव्यभाषा की केन्द्रीय गति तुलसीदास और सूरदास की भाषा में है। "[१]

यह ठीक है कि हर भाषा की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, जिसके अनुसार वह अनुभव-संवेदन को अपने व्यक्तित्व में रचा-पचा पाती है। उर्दू काव्यभाषा की हल्के मुहाविरों पर आधारित चमत्कारिक और नफ़ीस भाव-संवेदना हिन्दी की व्यंजना-प्रधान काव्य भाषा में घुल-मिल नहीं पाती।

लेकिन संस्कृत और हिन्दी भाषाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से एक दूसरे के बिलकुल निकट हैं, दोनों का केन्द्र मध्यदेश रहा है। अतएव हिन्दी काव्यभाषा में सर्जनात्मक संचरण के लिए अगर छायावादी कवियों ने संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया, तो वह असंगत नहीं कहा जा सकता। निराला ने सब से ज्यादा संस्कृत के वाक्-तत्त्व को, उसके संगीत को, उसके अर्थगत औदात्य को हिन्दी में घुलाने की कोशिश की है। " गीतिका " , " तुलसीदास " और " राम की शक्ति-पूजा " इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। निराला के गीतों में, उनकी लंबी रचनाओं में जो एक भव्यता और उदात्तता है, उसके मूल में बहुत कुछ उनके संस्कृत प्रयोगों का हाथ है। फिर तुलसीदास और सूरदास ने - विशेषतः तुलसीदास ने - शुद्ध संस्कृत की अभिजात शब्दावली का भरपूर उपयोग किया है। यह अलग बात है कि मध्यकालीन भाषिक परंपरा के अनुसार उस शब्दावली का किसी सीमा तक अर्द्ध-तत्समीकरण किया गया हो - " अमिय मूरि मय चूरन चारु " जैसे प्रयोग इसी प्रकार के हैं, जहाँ " अमिय " अथवा " चारु " तद्भव नहीं, अर्द्धतत्सम रूप है।

एक बात और है। तत्सम शब्दावली के माध्यम से सर्जनात्मकता को विकसित करने की दिशा में प्रयत्नशील छायावादी कवियों ने मितकथन में जटिल-

---

१) हिन्दुस्तानी एकेडेमी के काव्यभाषा विषयक परिसंवाद-संगोष्ठी में पढ़े गये प्रवचन भाषण : अंग्रेज़ी का दबाव " और हिन्दी कविता की भाषा " से उद्धृत।

सम्मिश्रित अनुभवों को उरेहा है, प्रसाद की "कामायनी" और निराला का "तुलसीदास" इसके भव्य उदाहरण हैं। काव्यभाषा के इस आयाम का संस्पर्श मध्यकालीन कवि नहीं कर सके हैं। वस्तुत: काव्यभाषा के निर्माण की प्रक्रिया में शब्द 'शब्द' न रहकर कवि का विशिष्ट प्रयोग बन जाता है। इस रूप में ये प्रयोग संस्कृत की शिष्ट, क्लासिकल कविता में नहीं है। छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त होकर ये संस्कृत शब्द हिंदी काव्यभाषा के अपने प्रयोग हो गये हैं।

हाँ, छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली वहाँ रूढ़ लगने लगती है, जहाँ वह यथार्थ के प्रति सही प्रतिक्रिया नहीं कर पाती अथवा अपनी अतिशय चित्रात्मकता को आवृत्त करने लगती है। तब वह अलग से जड़ी दिखती है। "पल्लव" और "गुंजन" में संकलित पंत की कुछ कविताएँ महादेवी के अनेक गीत और निराला के अस्पष्टता-दोष पर उतर आए तत्सम-गीत (विशेषत: "गीतिका" के) इस संदर्भ में उदाहृत किए जा सकते हैं। यहाँ एक विचित्र कृत्रिमता और यान्त्रिकता की प्रतीति होने लगती है। शब्दों को प्रयत्नपूर्वक काव्यात्मक बनाने की प्रवृत्ति कविता नहीं रचती, काव्याभास निर्मित करती है।

छायावादी प्रभाव-क्षेत्र के उत्तरवर्ती कवियों में रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति के नाम लिये जा सकते हैं। ये कवि छायावादी काव्यभाषा को अर्थ के स्तर पर कोई गुणात्मक समृद्धि नहीं प्रदान करते, बल्कि कहना तो यह चाहिए कि छायावाद के कवि-चतुष्टय में से किसी जैसा भी व्यक्तित्व इनमें नहीं बन पाया है। हाँ, यह ज़रूर है कि सूक्ष्मता को क्रमश: वायवीयता का रूप देने की ओर अग्रसर छायावादी काव्यभाषा में इन कवियों ने मांसलता का प्रेक्षण किया है। विशेषत: अंचल के प्रयोग उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने यौवन की उद्दाम अनुभूतियों का खुलकर अंकन किया है। यहाँ तक कि अक्सर यह खुलापन अर्थ के स्तर पर उन्मुक्तता और संचरणशीलता को प्रश्रय न दे कर अपेक्षाया हल्के ढंग के वासना-चित्र की रचना करने लगता है। "अपराजिता" का "भर लो आज महासागर अधरों में वो अपनी की मधुवाली" गीत एक उदाहरण है। मितकथन की प्रणाली का अंचल में प्राय: अभाव है, इसीलिए यौन अनुभूतियाँ फलस्वरूप रचना के स्तर पर विश्वसनीय नहीं हो पातीं। कल्पनात्मक संयम-भी काव्यभाषा का

अनिवार्य गुण है - अंचल की कविताओं में पूरी तौर से निर्वाह नहीं हो पाता।

"चित्ररेखा" में रामकुमार वर्मा ने छायावाद के प्रिय वर्ण्य चाँदनी रात के परिवेश को बहुत जीवन्त बना दिया है :

यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभ की
बरसी हुई उमंग
आत्मा-सी बन कर छूती है
मेरे व्याकुल अंग।
आओ चुंबन-सी छोटी है यह जीवन की रात।

यहाँ विशिष्ट प्रयोग दो हैं - 'आत्मा' और 'चुंबन'। ज्योत्स्ना का आत्मा बनकर व्याकुल अंगों को छूना ऐन्द्रिक लालसा को एक आत्मीय-गंभीर अनुभव का रूप दे देता है। इसी तरह 'चुंबन - सी छोटी रात' प्रयोग के द्वारा कवि ऐन्द्रिक लालसा में निहित प्रखरता और तीव्रता का सटीक रूपायन करता है। ये दोनों अमूर्त बिंब छायावाद की सूक्ष्म कला-चेष्टा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भगवती चरण वर्मा की कविताओं में रूमानी मस्ती ज़रूर है, लेकिन उसके माध्यम से कवि किसी रचनात्मक सार्थकता की उपलब्धि कर रहा हो, ऐसा नहीं लगता। प्रतीकों की नियोजना अधिक है, लेकिन छायावादी प्रतीक-योजना में अन्वेषण करने की प्रवृत्ति नहीं है। यह ज़रूर है कि उनकी काव्यभाषा में वायवीयता और अस्पष्टता नहीं है। "मधुकण" संकलन में यह विशेषता देखी जा सकती है।

नरेन्द्र शर्मा ने जगह-जगह आधुनिक मनुष्य की आंतरिक रिक्तता को उकेरने की कोशिश अपनी कविताओं में की है। प्रसाद ने मनु के माध्यम से विडंबनामयी शून्यता का उद्घाटन इन्हीं बिंबों में किया है। दो उदाहरण रखे जा रहे हैं -

१) शून्यता का उजड़ा-सा राज
२) खोखली शून्यता में प्रति पग असफलता अधिक कुलाँच रही।

नरेन्द्र शर्मा ने एक नये 'कुर्सेटना' प्रयोग से आधुनिक जीवन की विराट् रिक्तता, अनथोर एकरसता को चित्रित किया है उदाहरण 'घड़ी घड़ी गिन "

(" आधुनिक कवि " में संकलित) कविता का है :

~ कुछ तो हो, दुर्घटना ही मेरे इस नीरस जीवन में ।

कवि दुर्घटना का जोखिम संवरण करने को तैयार है, क्योंकि एक-सा शून्यता का जीवन- बिताते-बिताते वह ऊब गया है । छायावादी काव्यभाषा में मानो बदलाव लाने की आकांक्षा भी यहाँ सांकेतिक रूप में देखी जा सकती है । आधुनिक रचना-प्रक्रिया के संकेत इस तरह के प्रयोगों में मिल जाते हैं ।

छायावादी काव्यभाषा की जीवनी-शक्ति उसके पुनर्जागरणकालीन चेतना से समरस रूप में पूरी भव्यता के साथ मुखरित हुई है, जिसे प्रतिनिधि छायावादी कवियों का " शक्ति-काव्य " माना जा सकता है । मध्यकालीन विशेषत: रीतिकालीन श्लिष्ट आलंकारिक काव्यभाषा का एकदम प्रत्याख्यान कर और द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को पीछे छोड़कर अर्थ की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को परिचालित करने की महत्वाकांक्षी कोशिश छायावादी काव्यभाषा की गहरे अर्थों में रचनात्मक संसक्ति का प्रमाण है ।

अ ध्या य - ८

निराला की कविताओं का अध्ययन

("जुही की कली")

जुही की कली " (१६१६ ई०) के माध्यम से हिन्दी कविता समग्र रूप में पहली बार अकुंठ उन्मुक्तता का अनुभव करती है - विशेषतः शृंगारिक कविता के संदर्भ में इस अकुंठ उन्मुक्तता का अनुभव और भी प्रीतिकर लगता है । छायावादी काव्यभाषा में अनुस्यूत होती नई और सघन अर्थ-छवियों का सशक्त साक्षात्कार " जुही की कली " कराती है । निराला ने इसकी रचना के माध्यम से हिन्दी कविता के संदर्भ में छंदमुक्त कविता में पहल की ; अतएव यह रचना अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है ।

जुही की कली" और मलयानिल के स्वच्छंद शारीरिक व्यापार का अंकन कर कवि ने उन्मुक्त मानवीय प्रणय व्यापार को स्वर दिया है । प्रणय-स्थिति के अंकन में इस तरह का वातावरण ताज़गी से भरपूर है :

> विजन-वन-वल्लरी पर,
> सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह -स्वप्न मग्न
> अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
> दृग बंद किये, शिथिल - पत्रांक में,

यहाँ "सुहाग-भरी", "स्नेह - स्वप्न मग्न", "अमल-कोमल-तनु-तरुणी" जैसे प्रयोग इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि जुही की कली का चित्रण ही कवि का मूल अभिप्रेत नहीं है, वह ऊष्मामय मानवीय संवेदन को व्यंजित करने का माध्यम भी है । कोमल पद-विन्यास से अनुप्राणित इस अंश में संस्कृत शब्दावली के बीच एक विशिष्ट प्रयोग कवि ने रखा है - "सुहाग-भरी" , जो इस मानवीय ऊष्मा में गहरी आत्मीयता भर देता है -

आगे मलयानिल का चित्रण हुआ है:

वासंती निशा थी ;
विरह-विधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ।

अंतिम पंक्ति में एक प्रयोग मुक्त छंद की प्रकृति के अनुकूल एकदम अयांत्रिक ढंग से कवि ने रखा है -" जिसे कहते हैं मलयानिल । बातचीत के ढर्रे का यह प्रयोग भाषा-मुक्ति के आरंभिक सिलसिले में उल्लेखनीय है ।

आगे एक स्मृति-चित्र आता है, जो प्रिया से बिछुड़े मलय के मानस में निर्मित होता है :

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात
आई याद कांता की कंपित कमनीय गात,

लय का यह अकस्मात् परिवर्तन संयोगकालीन स्मृतिपरक संवेदना को अनुभव के धरातल पर विश्वसनीय बनाता है । इन तीन तीव्र-मुखर पंक्तियों में संयोगात्मक उत्तेजना की स्मृति बहुत जीवन्त बन पड़ी है । चाँदनी रात के लिए " चाँदनी की धुली हुई आधी रात " का प्रयोग गत्यात्मक वातावरण की सृष्टि करता है । इस मादक स्मृति से परिचालित मलय की सक्रियता को कवि शब्दों में यों उतारता है :

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित् गहन गिरि कानन
कुञ्ज-लता-पुञ्जों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली-खिली-साथ।

उपवन-सर-सरित की अबाध गति पवन की अदम्य उत्कण्ठा को रूपायित करती है । मलय के इस आलिंगनव्यापार को बंधन-विहीन छंद ही अभिव्यक्ति दे सकता था । छंद की ऊँची-नीचाई गति ही इस स्वच्छंदता के स्वरूप को आभास पहुँचाती । भाषा, छंद और संवेदना की परस्पर संश्लिष्ट प्रवृत्ति का रहस्य

निराला ने शुरू में ही पहचान लिया था ।

इसके बाद के अंशों में कवि ने मलय के उद्दाम प्रणय-का बेलौस चित्रांकन किया है, जो अपने सारे खुलेपन के बावजूद हल्केपन का आभास नहीं होने देता -

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिए गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती -
चकित चितवन निज चारों ओर फेर ,

प्राकृतिक व्यापार को प्रणय-व्यापार में समग्रत: रूपांतरित या कि संक्रमित कर सकने की यह क्षमता छायावादी काव्यभाषा में विकसित होती है, इसीलिये इस सारी प्रक्रिया को मानवीकरण भर न कहकर प्रकृति और जीवन का संश्लेष कहा जाएगा ।

यहाँ छंद-मुक्ति की प्रक्रिया संवेदना के आंतरिक स्तर पर जुड़ी हुई है या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है । निराला के संवेदनशील समीक्षक दूधनाथ सिंह ने छंद-मुक्ति की प्रक्रिया को बहुत स्थूल धरातल पर ही देखा है, तभी वे कहते हैं-"छंद से मुक्त हो जाने पर कविता अपनी छंदानुशासन की परंपरा से मुक्त हो सकती है, लेकिन मात्र इसी से उसमें संवेदनागत मुक्तता कैसे आ जाएगी ।"[१]

विचार के इस धरातल पर तो छंद और संवेदना को अलग-अलग तत्व के रूप में मान लेना पड़ेगा, जिससे रचना को उसकी संश्लिष्टता में नहीं देखा-परखा जा सकता । वस्तुत:"जुही की कली" की मुक्त छंद-पद्धति भाव-मुक्ति से सीधे संबद्ध है, मलयानिल का स्वच्छंद प्रणय-व्यापार मुक्तछंद की रचना में सजीव,

---

१) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० ३०८

उन्मुक्त हो उठा है । निराला ने भाव और छंद की संपुक्त स्थिति को समझा है । "परिमल" की भूमिका में छंद-मुक्ति की प्रक्रिया को उन्होंने इसी बिन्दु से देखा है । इस पक्ष को थोड़ा विस्तार देते हुए यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या "जुही की कली" में निराला का भाषा प्रयोग, उनका मुक्त छंद-विधान प्रणय के नये स्तर का संस्पर्श करता है । इस संदर्भ में पहले तो कवि की विशिष्ट रचना-प्रक्रिया को देखना होगा । पूरी कविता में जुही की कली और मलयानिल प्रतीक रूप में लिए जाकर फिर अपने में एक संश्लिष्ट बिंब विकसित करते हैं, जिसे कहीं बीच से तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता । उल्लेखनीय यह है कि संरचनागत यह कसाव परंपरित सांगरूपक के ढंग का नहीं है, क्योंकि तब तो प्रणयानुभव और शरीर सुखानुभव का एक साथ उन्मुक्त संचरण न हो पाता । प्रकृति और प्रणय के अनुभव यहाँ महज़ प्रस्तुत-अप्रस्तुत न होकर एक दूसरे से संश्लिष्ट हो गए हैं ।" जुही की कली " या इस जैसी अपनी अन्य छोटी कविताओं की संपूर्ण कला " का उद्घाटन निराला ने उचित ही किया है :" यह ऐसी रचना नहीं कि सूक्ति-रूप-इसका एक अंश उद्धृत किया जा सके । मेरी छोटी रचनाएँ (लीरिक्स) और गीत (सॉन्ग्स) प्राय: ऐसे ही हैं । इनकी कला इनके संपूर्ण में है, खण्ड में नहीं ।"[1]

लेकिन दूधनाथ सिंह ने इस तरह की कविता को छंद-मुक्ति की कोशिश भर माना है, संवेदना का यहाँ कोई नवोन्मेष हुआ है, ऐसा वे नहीं मानते । उनके अनुसार " सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली "," मसल दिये गोरे कपोल गोल " या " बंद / चुकी के सब खोल दिये प्यार से / यौवन उभार ने " जैसी पंक्तियाँ नितान्त रीत्यात्मक है । मैथिली शरण गुप्त की " सखि, वे मुझसे कहकर जाते " के सामने ये पंक्तियाँ भले ही नयी लगें - बिहारी, देव, घनानन्द की रचनाओं के आगे इनकी कोई अलग से विशिष्टता नहीं बतायी जा सकती ।[2]

वस्तुत: इस तरह से दो तीन पंक्तियाँ उद्धृत करके कोई संगत निर्णय नहीं किया जा सकता (स्मरणीय निराला का उपर्युक्त उद्धरण)। इस तरह की पंक्तियाँ हिन्दी की रीतियुगीन कविता में है, इसमें संदेह नहीं ।

---

१) वही, पृ० २८४

२) निराला : आत्महंता आस्था, पृ० २०८

लेकिन " जुही की कली " की पूरी जो एक भाव-प्रतिमा बनती है - सुकुमार-स्वच्छंद प्रणय का संश्लिष्ट चित्र वह रीति-युग में नहीं । वहाँ शरीर-सुख के प्रति ऐसी अकुंठ भावना भी नहीं है । निराला की " धारा " कविता (परिमल में संगृहीत) में दुर्दमनीय यौवन-आकांक्षा देखी जा सकती है ;

बहने दो,
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है,
यौवनमद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है ?

इसका सटीक प्रतिनिधित्व करता है " जुही की कली " का मलयानिल । समूची कविता में आवेग, उत्तेजना, उन्माद की जो तीव्रता है, वह अपनी अखण्ड बिंब-प्रक्रिया में द्विवेदीयुगीन अति नैतिकता और रीतिकालीन चमत्कारपरक श्रृंगार-चित्रण से अलग धरातल पर विकसित है । रीतिकाल के कवित्त-सवैया -दोहा जैसे बँधे-बँधाये छंद में यौवन-जन्य आवेग और उन्माद का ऐसा बेलौस और स्वच्छ अंकन नहीं हो सकता था ।

(" संध्या-सुंदरी ")

छायावादी काव्यभाषा का स्वरूप बनाने में " संध्या-सुंदरी " (१९२१ ई०) जैसी कविताओं का विशिष्ट योग रहा है जिसमें द्विवेदीयुग तक कुल मिलाकर इतिवृत्तात्मकता के सोपान पर आरूढ़ खड़ीबोली के संस्करण और परिष्करण की भरी-पूरी कोशिश है ।

प्रकृति छायावादी कवियों का प्रिय विषय रही है - विशेषतया उनके प्रारंभिक रचना-काल में । प्रकृति में भी संध्या के प्रति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण इन कवियों को रहा है - और प्रसाद तथा निराला ने तो उसमें से अपना रचनात्मक उन्मीलन भी किया है (द्रष्टव्य - ' विभाव '(मकरंद) ; मधुर

माधवी संध्या में जब रागारुण कवि होता अस्त (लहर)-प्रसाद ; संध्या-सुंदरी, अस्ताचल रवि छलछल (गीतिका) -निराला)। इसका कारण यही हो सकता है कि संध्या की प्रशांत-उदास भव्यता छायावादी कवियों के आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व को गहरे में छूती है, इस प्रक्रिया में भाषा की आंतरिक परतें खुलती हैं। यों खड़ीबोली कविता में छायावादी काव्य से पूर्व भी संध्या को बराबर काव्य-विषय बनाया जाता रहा है, पर वहां संध्या अनुभव नहीं बन पाती, कवि उसमें से अपनी रचनात्मक मुक्ति नहीं ढूंढ पाता। हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में संध्या-संबंधी अनेक चित्र हैं प्रसिद्ध पंक्तियाँ [illegible] आरंभ की है -

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरुशिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

यहाँ संध्या के ब्यौरे हैं, पर यह चित्र प्रकृति के प्रति कवि की किसी अनुभवपरक प्रतिक्रिया को नहीं उभारता। इसके आगे 'संध्या-सुंदरी' का सांध्य-चित्र खड़ीबोली के संवेदनात्मक विकास का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें एक संश्लिष्ट चित्र रचने की कोशिश विद्यमान है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे

कवि आसमान से उतरती परी के रूपक में संध्या को परिकल्पित कर आगे बिंब को विस्तार देता है, जिसमें सौन्दर्यात्मक चित्र-योजना है, लेकिन यह विशिष्टता अनदेखी नहीं की जा सकती कि परी के अप्रस्तुत का सांगरूपक की ब्यौरेवार वर्णन-प्रणाली के ढंग पर निर्वाह नहीं किया गया है, जैसा कि महादेवी के एक रजनी-गीत ('धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी') में देखा जा सकता है। एक बार परी का उल्लेख कर निराला अपने दृश्य-विषय में

फिर रम जाते हैं और विषयगत वर्णन से तटस्थता की यह प्रवृत्ति ही उनके संध्या-चित्र को स्वच्छ-तरल बनाये रहती है ।

आगे कवि ने संध्याकालीन नीरवता, अलसता, छायामयता, सूक्ष्मता को या यों कहें कि संध्या के अमूर्त छायामय व्यक्तित्व को एक संश्लिष्ट और कल्पनात्मक चित्र में उतारा है :

अलसता की सी-लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अंबर-पथ से चली ।

इतनी सूक्ष्म ऐन्द्रिक विशेषताओं में भी निराला ने संध्या को मानवीय ऊष्मा से संपृक्त कर दिया है, संध्या के मौन की व्यंजना के लिए तीसरी पंक्ति का विशिष्ट प्रयोग " सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह " मानवीय संपृक्ति का समावेश कर देता है, संध्या असंपृक्त दृश्य-विषय नहीं रह जाती । प्रकृति-बिंब और मानवीय बिंब की घुली-मिली स्थिति ऐसे अंशों में देखी जा सकती है । इस बिन्दु पर दूधनाथ सिंह का यह कथन संगत नहीं लगता-" स्वयं जुही की कली " या " संध्या सुंदरी " की मात्रिक संरचना छायावादी है और वे किसी खास संवेदनागत नवीनता की कविताएँ नहीं है ।' धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी " और " संध्या-सुंदरी " की " सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँहें " की रूपकात्मकता में कोई विशेष फ़र्क नहीं है । सखी का प्रसंग ही रीतिकालीन है ।"

एक तो संध्या के संदर्भ में इस तरह का सूक्ष्म मानवीय गुणों से समन्वित संश्लिष्ट-सुकुमार चित्र अपने में नया है, फिर सखी के उल्लेख-मात्र से रीतिकालीन चित्र संस्कार नहीं बनता, और उस पर भी सखी नीरवता की । दूसरे अपनी यत्किंचित् रूपकात्मकता के बावजूद यह चित्र महादेवी के " धीरे - धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी " गीत की शिल्पकारिता और प्रसाधन-प्रियता से अलग है । महादेवी के गीत में शुरू से अंत तक सज्जा की सतर्क आयोजना है, काव्यात्मक शब्दावली का सुरुचि-सम्पन्न विन्यास है । आरंभिक अंश प्रस्तुत है -

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत रजनी ।

तारकमय नव वेणी बंधन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन
मुक्ताफल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ वसंत-रजनी ।

दूसरी ओर निराला अपने चित्र को अर्थ की नयी संभावनाएँ प्रदान करते हैं, रूपकात्मकता के आकर्षण में नहीं आते । यह प्रवृत्ति ठीक बाद के अंश में देखी जा सकती है, जहाँ कवि संध्याकालीन नीरवता की व्यंजना करता है :

नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा
नहीं होता कोई अनुराग -राग-आलाप
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा" चुप-चुप-चुप"
है गूँज रहा सब कहीं -

नीरवता की अमूर्त,सूक्ष्म और सुकुमार स्थिति के अंकन के लिए कवि बहुत प्रखर आवेग के साथ, लयात्मक विस्तार में," चुप-चुप-चुप " की गूँज को उल्लिखित करता है । वीणा का न बजना अनुराग-राग-आलाप का न होना और नूपुरों में रुनझुन -रुनझुन का अभाव" संध्या-सुंदरी" के प्रशांत सादे,व्यक्तित्व को ध्वनित करते हैं । फिर बचा क्या है " सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा" चुप-चुप-चुप" जो सब तरफ़ गूँज रहा है ।

इसके बाद कवि संध्याकाल में गहराती हुई निस्तब्धता का विराट् चित्र प्रस्तुत करता है । इस अंश में छायावादी काव्यभाषा की जीवनी शक्ति भी विवृत हुई है :

व्योम-मण्डल में - जगतीतल में -
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में -
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में -
धीर-वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में -

उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में -
क्षिति में -जल में नभ में अनिल अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द -सा" चुप, चुप, चुप "
है गूँज रहा सब कहीं -

लय के इतने भव्य प्रसार में नीरवता का यह प्रकृति-व्यापी अंकन बेजोड़ है । प्रकृति के सुकुमार और भयानक दोनों क्षेत्रों में " चुप, चुप, चुप," की गूँज परिव्याप्त है ।" उत्ताल तरंगाघात के दीर्घ और कठोर वर्ण स्तब्ध वातावरण का सशक्त चित्र निर्मित करते हैं । क्षिति में जल में नभ में अनिल-अनल में उसी चुप,चुप,चुप" की गूँज -अनुगूँज को प्रतिष्ठापित कर निराला इस विराट् चित्र को गरिमा प्रदान करते हैं अर्थात् पंच तत्त्व भी संध्याकालीन नीरवता से परिव्याप्त है । निस्तब्धता का सर्वग्रासी प्रभाव अर्थ के सूक्ष्म स्तर पर कदाचित् सर्वत्र एक तत्त्व की व्याप्ति की व्यंजना करता है । निराला ने अपने एक निबंध में कहा है, " काव्य में साहित्य के हृदय को विगत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है ।" [१] अपनी आरंभिक कविताओं से ही निराला इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं ।" संध्या-सुंदरी" का यह अंश एक अच्छा उदाहरण है । विशिष्टता यह है कि" चुप, चुप, चुप" की गूँज-अनुगूँज इस विराट् अंकन को प्रखर गतिशीलता और द्वन्द्वात्मकता प्रदान करती है । नीरवता अपने में सुकुमार स्थिति की सूचक है, उसको कोमल संदर्भ में ही कवि संस्पर्श करता है ।" एक तारा " में कवि पंत ने संध्याकालीन प्रशांति को बहुत सुकुमार, अछूते बिंब में अंकित किया है :

पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर ।

इस दृष्टि से निराला का विराट् चित्र उनके पौरुष-दीप्त काव्य-व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है ।" संध्या-सुन्दरी " के इस अंश की कठोर शब्द-योजना को लेकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने एक अच्छी टिप्पणी की है : प्रशांत प्रकृति के चित्रण के संबंध में इस प्रकार की प्रचण्ड ध्वनिमयी शब्दावली का

---

१) प्रबंध-पद्म, पृ० ७०२

प्रयोग उचित है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है । परन्तु ऊपर उद्धृत कविता में विवादी स्वर का यह संधान अपूर्व सामर्थ्य के साथ किया गया है, इसमें संदेह नहीं ।[१] प्रचण्ड ध्वनिमयी शब्दावली का यह प्रयोग प्रशांत प्रकृति के चित्रण के संदर्भ में असाधारण है, किन्तु विपरीत भाव की प्रक्रिया में अर्थ की व्यापकता और प्रखरता को कायम किये हुए है । कवि निराला का क्रांतिकारी व्यक्तित्व जैसे इस परंपरित धारणा को यहाँ निर्मूल सिद्ध करता है कि प्रशांत प्रकृति का चित्रण कोमल शब्दावली ही कर सकती है ।

दृश्य-संवेदन के इस विराट्-भव्य चित्र के बाद वाले अंश में निराला संध्या के दूसरे तत्त्व विश्राम का अंकन करते हैं । इस स्थल पर वे संध्या को सहज मानवीय जीवन से बिलकुल संपृक्त कर देते हैं , छायावादी कवि का आत्मनिष्ठ स्वर यहाँ मुखरित होता है :

और क्या है ? कुछ नहीं
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने,
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

"और क्या है ? कुछ नहीं " का शब्द-प्रयोग बोलचाल की उन्मुक्तता बनाये रखता है । निराला की "संध्या-सुंदरी" मदिरा की नदी बहाती हुई आती है । यह चित्र ("मदिरा की नदी बहाती आती") प्रगाढ़ होते संध्याकाल में प्राणियों के विश्राम, क्लांति-मुक्तता और कलता की व्यंजना करता है ।

---

१) कवि निराला, पृ० १०८

अर्थ के अधिक सूक्ष्म-स्तर पर एक सुकुमार-तन्मय परिवेश निर्मित होता है - संध्या-समय अपने आवास में लौटे हुए प्राणियों को प्रेयसी के सान्निध्य-सुख का। जो संध्या प्रारंभ में परी सी प्रतीत हुई थी, वह मनुष्य लोक में आकर उनके जीवन में हिस्सा लेती है। अपने कर्तव्य की समाप्ति के बाद वह अर्द्धरात्रि की निश्चलता में लीन हो जाती है।

इस पूरे शृंगारपरक बिंब से जैसे कवि की चेतना खुद-भी प्रभावित होती है। वह उससे तादात्म्य का अनुभव करने लगता है -

> कवि का बढ़ जाता अनुराग,
> विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
> आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

" विहाग " की निःसृति कवि की बेचैनी, खोज, उत्कंठा की सूचक है। संध्या का मौन भाव कवि के कण्ठ से विहाग बनकर फूटता है। इस रूप में संध्या एक जीवंत अनुभव बन जाती है, उसमें से कवि अपना रचनात्मक उन्मोचन करता है, उसके साथ एक जीवन जीता है। संध्या और रचना का भी सार्थक संबंध जुड़ता है -" विरहाकुल कमनीय कण्ठ से / आप निकल पड़ता तब एक विहाग। "

(" बादल - राग ")

बादल-राग " से संबद्ध कुछ भाव-बंध हिन्दी की अपनी अंकना-क्षमता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और इस प्रकार कवि के " राग अमर " संबोधन को सार्थकता प्रदान करते हैं। कविता का आनन्द उसके अर्थ विस्तार में निहित होता है। जितनी बार उसका विश्लेषण किया जाए, उतनी ही बार वह किसी-न-किसी संवेदना से हमारा परिचय कराए, कवि का मूल अभिप्रेत भाषा की विकासशील और लगाव-युक्त प्रकृति के बल पर किसी न किसी जटिलता से हमें समीपता का बोध कराए।" बादल-राग " की विविध कविताएँ बहुमुखी जीवना-

नुभूतियों को तादात्म्कृत करती चलती है ।

पहले भाव-बंध में कवि अमर राग के गायक बादलों का आवाहन करता है । पंक्तियों की विशिष्ट लयात्मकता कवि के आह्लाद, उन्माद को, उसके मुक्तिकामी प्राण को पूरी अभिव्यक्ति देती है :

झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर ।
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर ।
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित्गति -चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में, रव घोर कठोर-
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर ।

निराला-काव्य की विशिष्ट श्रुतिधर्मिता का परिचय यह पूरा गति-चित्र संभव करता है । मुक्त-गीत में प्रवाह और आंतरिक गठन के लिए ध्वनि-आवली की आवश्यकता का अनुभव रचनात्मक उपकरण के रूप में करना संवेदना के गहरे स्तरों का संस्पर्श करने का सूचक है । श्रावणिक तथा चाक्षुष बिंबों की सृष्टि तो होती ही है, अर्थ के सघन स्तर पर यह शब्दावली उन्मुक्त, अबाध प्राण के संचरण को भी स्वर देती है । कवि का अभिप्रेत वह अमर राग है, जो प्रकृति में ही नहीं, मानव-मन में भी, आनन-आनन में अपनी अकृत्रिम मनोवृत्ति, स्वच्छन्द आनन्द को स्थान दे । " राग अमर " की पुन: आवृत्ति उसकी संश्लिष्ट गूँज-अनुगूँज को विस्तार देती है । शब्दों की तथाकथित सरलता अपने विशिष्ट क्रम में, लय और अनुभूति की संगति में एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है ।

आगे की पंक्तियों में कवि का बादल के लिए " ऐ वर्ष के हर्ष " का प्रयोग अपनी निश्छल प्रकृति से कवि की " राग अमर " के प्रति नितान्त आकुलता को व्यंजित करता है । यह संबोधन जीवनानुभूति में से उदीर्ण होकर निकला है । आवेगमय व्यापारों में सीधे-सपाट कथन भी अपनी उद्बोधक शक्ति के

माध्यम से अभिप्रेत के प्रति ईमानदारी का निर्वाह करते है :

पार ले चल तू मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव-संसार !
उथल-पुथल कर हृदय -
मचा हलचल-
चल रे चल,—
मेरे पागल बादल !

ये पंक्तियाँ कवि और बादलों के बीच घनिष्टता को घोषित करती है। निराला की कविताओं की उत्कृष्टता का एक कारण उनमें रचनाकार के अनुभूतिशील हृदय का संश्लेषण है। केवल दृश्य विषय को चित्रित करनेवाला (फिर वह चित्र-निर्माण कितनी भी बारीकी से क्यों न किया गया हो) कवि वलिष्ठ संवेदनाओं को प्रश्रय नहीं दे सकता। निराला या प्रसाद अपने अभिप्रेत के साथ गहरे स्तरों पर जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।" पागल-बादल " न केवल बादल के, बल्कि कवि के भी स्वातन्त्र्य-कामी मानस को अभिव्यक्ति देता है।

रसधार बरसाने वाले बादल ने प्रकृति-जगत और कवि-हृदय में जो प्रतिक्रियाएं उत्पन्न की, उनका संश्लेषण प्रस्तुत ध्वन्यात्मक चित्र में दर्शनीय है :

धँसता दलदल,
हँसता है नद खल्-खल्
बहता, कहता कुलकुल कल-कल कलकल
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल-बेकल,

शब्द-शब्द से उल्लास का उत्स फूट रहा है, जैसे कवि की मुक्ति के लिए विकल आन्तरिक ललक मूर्तिमन्त हो उठी हो। आगे की तीन पंक्तियों का विन्यास अर्थ-समृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है :

इस मरोर-से-इसी शोर से -
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे- गगन का दिखा सघन वह छोर

अपनी विशिष्ट लयात्मकता से ये पंक्तियाँ न केवल बादलों के साथ निकटता की चाह करने वाले कवि मानस को अभिव्यक्ति देती है, अपितु सीमाओं में न बँधकर असीमता का संस्पर्श करने को व्यग्र उसकी आत्मा को भी स्वर देती है। "मुक्ति" गगन का दिखा सघन वह छोर-वह छोर, जो सघन है, जो निराला के - या अधिक व्यापक स्तर पर हर सर्जनशील व्यक्तित्व के - विकास के लिए उचित दिशा-निर्देश कर सके।

"बादल-राग" का दूसरा भाव-बंध ओजस्वी संबोधन, लय की उन्मुक्तता तथा शब्दों की अनेक अर्थ-स्तरीय शक्ति के कारण उदात्त क्रान्तिकारी व्यंजना संभव करता है :

ऐ निर्बन्ध !
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छन्द !-
मंद-चंचल-समीर रथ पर उच्छृंखल।

यहाँ कवि की भाषा किसी निश्चयात्मक उक्ति की ओर संकेत न करके अपनी द्वन्द्वात्मक प्रकृति से बहुमुखी अभिव्यक्तियाँ संभव करती है, जैसे कवि मानस ने बंधनमय राह का प्रत्याख्यान किया हो। निराला की ही एक कविता याद आ जाती है :

बाज नहीं है मुक्ति और कुछ चाह
अर्ध-विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिय, छोड़ कर बंधनमय छंदों की छोटी राह।

जैसे कवि ने पूर्ववर्ती हिन्दी काव्य परंपरा की संकुचितता एवं गतानुगतिकता का अतिक्रमण किया हो, समस्त सामाजिक, राजनीतिक जड़ निरोधों का विरोध कर उन्मुक्त विकास की व्यंजना की हो, या अधिक सूक्ष्म स्तर पर (और वस्तुतः जो निराला की उदात्त कवि-मनोवृत्ति का सूचक है) अंधकार की शक्ति से जूझते हुए ओजस्वी, जिजीविषाशक्ति-संपन्न व्यक्तित्व को रूपायित किया हो। "अंध-तम-अगम अनर्गल बादल" का क्रान्तिकारी प्रवाह बादलों की दुर्दम्य शक्ति को व्यंजित करता है। वह विलक्षण यथार्थ का डटकर मुकाबला करनेवाले

पौरुष-दीप्त व्यक्तित्व का जीवन्त चित्र उतारता है। कालिदास ने जिसे " सूचीभेद्य अंधकार " कहा है, या निराला की ही " राम की शक्ति पूजा " में " है अमा निशा; उगलता गगन घन अंधकार " की जो व्यंजना है, वही अंध तम बादलों की दुर्धर्ष शक्ति के द्वारा अतिक्रमित हो जाता है। इसी अपराजेय शक्ति की अभ्यर्थना में कवि ने " राम की शक्ति-पूजा " के नितान्त मानवीय राम का भी यों चित्रण किया है :

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य नहीं जानता विनय,

राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों स्तरों पर आत्म-विश्वास से रहित, बँधी लीक पर चलनेवाली तत्कालीन भारतीय आत्मा को ये संबोधन जैसे उद्बोधित करनेवाले हैं :

ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा रहित विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर गगन के
ए सम्राट !

किन्तु काव्यभाषा की अपनी उन्मुक्त और उदार प्रकृति के कारण ये पंक्तियाँ सामयिक परिवेश के प्रति सजगता के साथ-साथ सार्वभौम अर्थ को भी लेकर चलती हैं। रचना की प्रासंगिकता इसी रूप में संभव होती है। विश्रृंखलित और चेष्टा-शून्य जीवन को इस संबोधन की वाणी झकझोरने वाली है।

अपार कामनाओं के प्राण !

" बाधा रहित विराट " संबोधन स्पष्ट रूप से निराला के ही अजेय व्यक्तित्व की ओर इशारा करता है। बादल कोरा बादल नहीं है, निराला की संकेतात्मक भाषा में ढलकर प्रबल जीवन आकांक्षा, मुक्त आदर्शों का पोषक बन गया है।

आगे की पंक्तियों में निराला ने बादल के रौद्र रूप को चित्रित किया है । जो बादल सामान्य दृष्टि में जल-दान करनेवाले हैं, वे कवि की संवेदनशील कल्पना के साँचे में ढलकर रचना और संहार के माध्यम से क्रान्ति उत्पन्न करते हैं । रचना और संहार एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं । बादल का विप्लवी रूप विकास को ही सुलभ करता है । अंतिम पंक्तियाँ पूरे बंध को एक ऊर्ध्व विराम दे देती हैं :

भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

" मायामय " के साथ संयुक्त होकर " भय " अर्थ की विविध छायाएं उद्भूत करता है । पौरुष-उपासक कवि को भय की सत्ता उखाड़नी ही है । अर्थ के प्राथमिक स्तर पर विधिनिषेधों में परतंत्र भयाकुल मानवात्मा का निर्देश है, सूक्ष्म स्तर पर अपनी विजय, अपने लक्ष्य में स्खलन का बोध करनेवाले साधक-मन के भय की व्यंजना है, जिसे संशय कहना अधिक उचित होगा । " राम की शक्ति-पूजा " में मानवीय संकल्प-विकल्प के पुंज राम की स्थिति आँखों के निकट आ जाती है - " स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय ।"

" गरजो विप्लव के नव जलधर " जैसे मानव में ही निहित (किन्तु प्रसुप्त) शक्ति के सक्रिय होने की पुकार लगाता है । कवि की रोमांटिक कवियों जैसी भाव-विह्वलता तथा आवेगमयता क्लैसिकल कवि की गम्भीरता से संवलित हो जाती है । इसी स्थल पर आकर बादल की प्रतीक-योजना विराटता को प्रश्रय देती प्रतीत होती है ।

" तीसरा भाव-बंध क्लैसिकल प्रतीक के माध्यम से सांस्कृतिक व्यंजनाएँ उद्भूत करता है, जिसमें धीरव्रती अर्जुन के स्वर्ग-प्रवास और वहाँ से सफल प्रत्यावर्तन के मिथक द्वारा कवि बादल का तपःपूत कर्तव्य-निष्ठ रूप खड़ा करता है । इसके लिए कवि-कल्पना आरंभ से ही पृष्ठभूमि तैयार करती है ।

सिंधु के अश्रु !
धरा के खिन्न दिवस के [illegible] दाह !

बादल की उत्पत्ति के भौतिक सत्य को सर्जनशील भाषा कविता

के साँचे में किस तरह के ढाल देती है, यह द्रष्टव्य है। सूर्य की ऊष्मा और समुद्र के वाष्प से बादल का जन्म होता है। उस बादल का सेवा-रत जीवन " तरु के सुमन " के बिंब में कवि ने प्रस्तुत किया है :

विदाई के अनिमेष नयन !
मौन उर में चिह्नित कर चाह
छोड़ अपना परिचित संसार-
सुरभि का कारागार,
चले जाते हो सेवा पथ पर,
तरु के सुमन !
सफल करके
मरीचिमाली का चारु चयन ।

सेवा में ही जीवन की सार्थकता है और उस सेवा-कार्य में वैयक्तिक आकांक्षाओं की बलि देनी पड़ती है, इन दोनों भावों की यहाँ व्यंजना है। " विदाई के अनिमेष नयन " का काव्यात्मक सौन्दर्य सामान्य शब्दों में कहने की चीज़ नहीं है। एक ओर अपने परिचित संसार का मोह है, ममत्व है; दूसरी ओर कर्त्तव्य-भावना है। इन दोनों की टकराहट में विवेक को प्राथमिकता देना ही मनस्वी व्यक्तित्व का धर्म है। बादलों के माध्यम से इस सत्य को कवि ने प्रस्तुत किया है।

एक बार फिर " सिन्धु के अश्रु " संबोधन की ताज़गी का अवलोकन किया जा सकता है, जो पूरे भाव से संबद्ध है, विच्छिन्न नहीं। बादल यह बादल नहीं है, सिन्धु के अश्रु है। सेवा-पथ पर जाते हुए प्रियजनों से विछोह की अनुभूति को निराला ने इस सूक्ष्म उपमान में मार्मिकता से रूपायित किया है।

आगे " सव्यसाची " अर्जुन का बिंब पूरे पद को एक सांस्कृतिक तेज प्रदान करता है। इतनी दूर तक इस रूपक का निर्वाह जैसे कवि की सर्जनशील जीवन के प्रति उत्कट आस्था को पोषित करता है :

स्वर्ग के अभिलाषी हे वीर ,
सव्यसाची-से तुम अध्ययन-अधीर

अपना मुक्त विहार
छोड़ बंधुओं के उत्सुक नयनों का सच्चा प्यार
जाते हो तुम अपने पथ पर,
स्मृति के गृह में रख कर
अपनी सुधि के सज्जित तार ।

" सव्यसाची " अर्थ की अनेक छायाएँ उद्घाटित करता है । " अर्जुन " संबोधन में वह बात न आती । दायें ही नहीं, बायें हाथ से भी समान कौशल से धनुष चलाने में निपुण होने के कारण अर्जुन सव्यसाची कहलाये । बादल भी उत्कट जीवनी-शक्ति, प्रखर पराक्रम से परिपूर्ण है । इस पराक्रम के विरोध में ये दो पंक्तियाँ :

स्मृति के गृह में रख कर
अपनी सुधि के सज्जित तार ।

बड़ी-ही मर्मस्पर्शिनी प्रतीत होती है । वस्तुत: बादल तो कवि के लिए केवल प्रतीक मात्र है - जीवन निष्ठा, दृढ़ संकल्प, दुर्धर्ष शक्ति का । अतएव वह विविध सांस्कृतिक संदर्भों के आलोक में उसकी क्षमता की परख करता है । इसे केवल मानवीकरण कह देना कविता की प्रकृति के साथ अन्याय करना है । इस प्रसंग में सुमित्रानन्दन पन्त की " बादल शीर्षक कविता याद आ जाती है । जिसमें अनुभव के साथ रचनाकार की गहरी संसक्ति का परिचय न्यून मात्र में मिलता है, हाँ, अलग-अलग बिंबों, कल्पनाओं की सज-धज अवश्य विद्यमान है ।

सव्यसाची अर्जुन का यह पौराणिक रूपक रचनाकार की सृजन-प्रक्रिया को समृद्ध करता है ।

पूर्ण मनोरथ । आए,
तुम आए ;

यह संबोधन भी बड़ा-ही सटीक है । पौरुष में आस्था रखने वाला ही ऐसा संबोधन कर सकता है । साधनावस्था तथा सिद्धावस्था का संश्लेषण यहाँ सशक्त भाषा द्वारा संभव हुआ है, जो एक मानें में कला की चरम सिद्धि कही जा सकती है । पौरुष और उत्साह से परिपूर्ण व्यक्तित्व की यह परिकल्पना निराला

ने एकान्तिक स्तर पर नहीं की है वरन् वह सामूहिक आकांक्षा को बदल देती है। प्रकारान्तर से यह कवि की अद्वैत दृष्टि की ही प्रेरणा है :

विजय ! विश्व में नव जीवन भर,
उतरो अपने रथ से भारत !

अर्जुन के लिए विशेष रूप से " भारत " संबोधन साभिप्राय है, मानो कवि दिग्भ्रमित आत्मविश्वास-शून्य देश को जागरण का संदेश देता है। समूचे बिंब-विधान की परिणति दाम्पत्य-प्रेम के अनुभव में होती है। योग-भोग, साधना-तृप्ति, दोनों का संश्लेष हो जाता है। प्रसाद के नाटकों के पौरुष-दीप्त प्रणयी पात्र याद आ जाते हैं।" कामायनी " की श्रद्धा का यह उद्बोधन कर्म का भोग, भोग का कर्म / यही जड़ का चेतन आनन्द " जैसे इस बंध में अपना स्थान बनाता प्रतीत होता है :

उस अरण्य में बैठी प्रिया अधीर,
कितने पूजित दिन अब तक हैं व्यर्थ,
मौन कुटीर।
आज भेंट होगी -
हाँ, होगी निस्सन्देह
आज सदा सुख छाया होगा कानन -गेह

लय की घटती बढ़ती विरामें, पंक्तियों की क्षिप्रता प्रणय की आकुलता को व्यंजित करती है।" पूजित " शब्द इस प्रणय को वैयक्तिक स्तर से ऊपर उठाकर सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करता है, जिसमें भारतीय पत्नी की उत्कंठा, समर्पण और साधना की संश्लिष्ट गूंज-अनुगूंज परिव्याप्त है।

आज अनिश्चित पूरा होगा श्रमित प्रवास,
आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास।

उपर्युक्त पंक्तियाँ जीवन में प्रणय के केन्द्रीय स्थान को घोषित करती हैं, कि उसके बिना वह सारी दौड़-धूप यह सारी साधना के प्रति सचेष्टता अधूरी है।" अनिश्चित " और " श्रमित " विशेषण प्रणयाभाव में जीवन की रिक्तता को

बड़ी सूक्ष्म अभिव्यक्ति देते हैं ।" श्यामा के व्याकुल अधरों की प्यास का मिटना पंक्ति अपने विशिष्ट सौन्दर्य-बोध के बल पर ऐन्द्रिक के साथ मानसिक तृष्णा की परितृप्ति की व्यंजना करती है ।" श्यामा " के माध्यम से एक ओर सूखी धरती की हरीतिमा का चित्र साकार होता है, दूसरी ओर समर्पणशील प्रिया की तुष्ट उत्कंठा दृष्टिगोचर होती है । प्रसाद के " स्कंदगुप्त " नाटक की विजया स्कंदगुप्त के प्रथम दर्शन पर कहती है - अहा ! कैसी भयानक और सुन्दर मूर्ति है ।[१] भयानक और सुन्दर के तनाव और संश्लेषण के अर्थ की सूक्ष्म छायाएँ इस बंध में निराला ने प्रस्तुत की है ।

चौथे खण्ड में बादल के क्रीडा-रत रूप को प्रस्तुत किया गया है । उदास दृष्टि जीवन को एक क्रीडा-रूप में ग्रहण करती है । बादल के लिए " क्रीड़ा-रत " बालक का बिंब अर्थगर्भी है । गोरखनाथ ने परम तत्त्व को आकाश में बोलनेवाला बालक कहा है - " गगन सिखर महिं बालक बोलै, ताको नाम धरौगे कैसा ? "

पाँचवें बंध में " निरंजन " का संबोधन इस शिशु-प्रतीक को परम तत्त्व के बालक- प्रतीक से अनायास ही संबद्ध कर देता है । चौथे बंध का प्रारंभ यों होता है :

उमड़ सृष्टि के अंतहीन अंबर से
घर से क्रीड़ा-रत बालक-से
ऐ अनंत के चंचल शिशु सुकुमार !
स्तब्ध गगन को करते हो तुम पार
अंधकार-घन-अंधकार ही क्रीड़ा का आगार ।

" अंधकार घन अंधकार " अर्थ के विस्तार द्वारा संघर्ष, बाधा, निराशा , अवसाद की प्रबल सत्ताओं को प्रश्रय देता है, जिनका सामना " चंचल शिशु सुकुमार " करता है, अथवा यों कहें, तो अधिक सार्थक होगा कि वह कटु यथार्थ उसे क्रीड़ा-स्थल है । स्थिति जितनी विषम है, उसे उतनी ही सरलता से कहा गया है, पर यह सरलता या कहने का हल्का-फुल्का ढंग ही उस विषमता को और भी गहरा रंग देता है :

---

१) स्कंदगुप्त,पृ० ४९ ।

अंधकार-घन-अंधकार ही
क्रीड़ा का आगार ।

जैसे कवि की एक हल्केपन को समेटे हुए यह शब्दावली और अंधकार-सूक्ष्म स्तर पर कटु यथार्थ के साथ संघर्ष में निडरता और क्रीड़ा-वृत्ति को व्यंजित करती है । आगे विद्युत-कान्ति के चमक कर छिपने के चाक्षुष दृश्य को कवि ने संगीतशास्त्रीय उपमान से संविध बनाया है :

चौंक चमक छिप जाती विद्युत
तड़िद्दाम अभिराम,
तुम्हारे कुञ्चित केशों में
अधीर विक्षुब्ध ताल पर
एक इमन का-सा अति मुग्ध विराम ।

विद्युत के चमक कर तुरन्त छिपने का वह एक क्षण ताल पर इमन राग के अति मुग्ध विराम द्वारा कविता में जीवित हो जाता है । शिशु रूप में परिकल्पित बादल के साथ क्रीड़ा करती सूर्य-रश्मियों का भी बिंबपरक अंकन हुआ है । इन दो उपमानों में कवि ने ध्वनि और रंग का संश्लेष संभव किया है, जो छायावादी बिंब-विधान की विशेषता है।

सप्तवर्णी इन्द्रधनुष को लेकर कवि-कल्पना ने औदात्य के उच्च धरातल की सृष्टि की है । कवि वीणा के सप्तक से इन्द्र धनुष का समीकरण करता है । "गुडाकेश" विशेषण बादल की सक्रियता, गान में निरंतरता को लक्षित करता है । ये पंक्तियाँ कवि की ऊर्ध्वोन्मुखी दृष्टि की परिचायक हैं -

इन्द्रधनुष के सप्तक, तार,
व्योम और जगती के राग उदार
मध्यदेश में, गुडाकेश !
गाते हो बारंबार ।

हिन्दी प्रदेश का प्राचीन नाम मध्यदेश है । जैसे बंगाल-प्रवासी निराला के तेजस्वी बादल पिछड़े हुए हिंदी प्रदेश को चतुर्दिक् जागरण का संदेश सुनाते हों ।

मेघ-घोष में कवि-कल्पना संगीत-स्वर की विभिन्न स्थितियों का समाहार कर लेती है। अकेला " मुक्त " विशेषण ही कवि की स्थूल परिवर्तन के प्रति सचेष्टता से ऊपर उठकर सांस्कृतिक उच्चता के प्रति आदर-भाव को स्वर देता है :

मुक्त ! तुम्हारे मुक्त कंठ में
स्वरारोह, अवरोह, विघात
मधुर- मन्द्र,उठ पुन:-पुन: ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन,
सुरभित उद्यान,
झर- झर-रव भूधर का मधुर प्रपात

बादल की मुक्त आत्मा इस कविता की मुक्त आत्मा को भी सूचित करती है। वह ध्वनि, जो गगन, श्याम कानन, उद्यान आदि सभी को छा लेती है, कोई साधारण नहीं है वरन् साक्षात् मुक्ति का संदेश देनेवाली है।

बधिर विश्व के कानों में
भरते हो अपना राग,
मुक्त शिशु ! पुन: पुन: एक ही राग अनुराग

" राग अमर अंबर में भर निज रोर " की गूँज पुन: छा जाती है। यहाँ विश्व के लिए " बधिर " विशेषण उसकी जर्जर जीवन-पद्धति ,कृत्रिम विधि-निषेध के प्रति श्रद्धा, चिरन्तन दासता के बहरेपन को लक्षित करता है। बादल के लिए मुक्त शिशु संबोधन पुन: एक स्वच्छ, उन्मुक्त वातावरण की सृष्टि करता है। जो " बधिर " है, वह कैसे उस संदेश को, उस अमर गान को सुनेगा ; मगर " मुक्त शिशु " का निर्दोष प्रयास दर्शनीय है।

पाँचवें बंध में कवि की उन्नत दृष्टि बादल में ब्रह्म की परिकल्पना करती है। वह निराकार ब्रह्म, जो सगुण रूप धारण करके अवतरित हुआ है, अपनी संपूर्ण चित्रात्मकता में साकार हो उठता है। यहाँ " निरंजन बने नयन अंजन " का विरोध दृष्टव्य है। सावन के सघन श्यामल मेघ जल से परिपूर्ण रहते हैं और उन्हीं को लक्ष्य करके मध्यकालीन कवि सेनापति ने " कवित्त रत्नाकर " की " ऋतुवर्णन " तरंग में उन्हें " आये है पधार मानों कामर के ओढ़े के " कहा है। निराला ने भी

उन्हें " नयन अंजन " विशेषण प्रदान किया है, जो अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील है । " नयन अंजन " कितना सुखकर होता है । बादल के प्रति कवि की ललक, उमंग को यह एक ही विशेषण प्रकट कर देता है । बादल के विविध रूपों की झांकियाँ प्रारंभिक चरणों में कवि ने प्रस्तुत की है ।" बने नयन अंजन " की बारंबार आवृत्ति कवि के आत्मिक तोष का बोध कराती है । उसे श्याम घन में कृष्ण का आभास होता है :

आज श्याम घन श्याम, श्याम छवि,
मुक्त कंठ है तुम्हें देख कवि,
अहो, कुसुम कोमल कठोर पवि !
शत-सहस्र-नक्षत्र-चन्द्र-रवि संस्तुत
नयन -मनोरंजन !
बने नयन अंजन !

रचना को यह दार्शनिक मोड़ भाषा की क्षमता द्वारा ही दिया जा सकता है । कवि की यह विह्वलता इस दार्शनिकता को रूक्ष नहीं बनाती, वरन् उससे तादात्म्य की प्रतीति कराती है ।

अन्तिम भाव-बंध क्रान्तिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर-सौन्दर्य से परिपूर्ण है ।" बादल राग " का यह उत्कृष्टतम गीत भी है ।

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया
यह तेरी रण तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर ।
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर-फिर ।

इतना दीर्घ वाक्य अनुभूति की लय पर सधा हुआ है । प्रारम्भ में क्रियापद का प्रयोग नाटकीयता की पुष्टि करता है । इसी नाटकीयता के उल्लेख में " राम की शक्ति पूजा " का है अमा निशा ; उगलता गगन घन अन्धकार" भी स्मरित हो उठता है । आरंभ में दो अमूर्त अप्रस्तुतों का सन्निवेश और फिर" भेरी गर्जन से सजग अंकुर " का चित्रण एक वाक्य के विस्तार में कुशीकवि द्वारा ही हो सकता है । छन्द संवेदना को बहुत कुछ नियमित और अनुशासित करता है । एक बँधे-बँधाये छन्द में यह ओज, प्रवाह और जीवनी-शक्ति नहीं आ सकती थी ।" बंधनमय छन्दों की छोटी राह को छोड़ने की" कवि-आकांक्षा अर्थ की सर्जनात्मक संभावनाओं से उत्प्रेरित है । बादल की क्रान्ति-शक्ति का कुछ संकेत उद्धरण की अन्तिम पंक्तियों को तोड़-तोड़कर कवि ने दिया है -" घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर उर में पृथ्वी के, आशाओं से नवजीवन की, ऊँचा कर सिर ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल ! फिर-फिर ।"

बादल में युद्ध-नौका की परिकल्पना कविता को महाकाव्योचित औदात्य प्रदान करती है ।" मेरी आकांक्षाओं से " प्रयोग अपार कामनाओं के प्राण बादल की अदम्य जिजीविषा को ध्वनित करता है ।" भेरी गर्जन " से " सजग अंकुर " लहलहाने लगते हैं, इस प्राकृतिक सत्य के माध्यम से काव्यभाषा की उन्मुक्तता सूक्ष्म अर्थ-स्तरों को उद्घाटित करती है । क्रान्ति की सूचना मिलने पर नयी उमंगें सर्जनात्मकता की विविध संभावनाओं से भर उठती है । सुप्त अंकुर सजग होकर, सिर ऊँचा कर, विप्लव के नव बादल की ओर नव जीवन (जल) की आशा से ताक रहे हैं , मानो नयी पीढ़ी पौरुषदीप्त व्यक्तित्व के नेतृत्व के पथ में आँखें बिछाये खड़ी हो ।" नव जीवन" का श्लेष प्रस्तुत संदर्भ में श्लेष के दोहरे अर्थ से ऊपर उठकर गहरी व्यंजनाएँ संभव करता है, नवजीवन - जिसमें व्यर्थ के विधि-निषेध न हों, जिसमें उनकी कोमल संभावनाओं को क्षति न पहुँचे ।" सजग " के ठीक बाद सुप्त " का प्रयोग दोनों की अर्थ-गत विपरीतता के कारण" सजग " की अर्थ-क्षमता में वृद्धि करता है, और विप्लव विप्लव के बादल का भेरी-गर्जन अधिक प्रभावकारी प्रतीत होने लगता है । " सजग " और " सुप्त " के स्थान पर कवि उनके पर्यायों का प्रयोग कर सकता था, पर तब अर्थ की वैसी उन्मुक्तता

सम्भव न होती । "सुप्त" में जैसे चेतना चेना-शून्य, आत्मविश्वास-स्खलित, जड़ व्यक्तित्व की व्यंजना है, और "सजग" अधोमुखी वृत्तियों से व्यक्तित्व के उत्तीर्ण होने की सूचना देता है ।

उद्दाम भाषा अपनी अर्थवत्ता के बल पर सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को उभारने में कृत-काम होती है, इस दृष्टि से दो कृतियों का संवेदनागत अंतर बहुत कुछ उनकी भाषा-प्रयोग-विधि पर निर्भर करता है :

बार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार
सुन सुन घोर वज्र हुंकार ।

द्विवेदी-युगीन खड़ीबोली की इतिवृत्तात्मकता इतने साधारण-से प्रतीत होनेवाले शब्दों में सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को अंकित न कर पाती । यहाँ लय की बनावट कुछ ऐसी है कि एक गति-चित्र निर्मित हो जाता है । बादलों का वज्र-सदृश गर्जन एवं अनवरत वर्षण संसार की सहन-शक्ति के बाहर है, मानो श्रेष्ठ प्रतिभा को फेलना, सही मूल्यांकन करना सब के बूते की बात नहीं है । एक चित्र द्रष्टव्य है :

अशनिपात से शापित उन्नत शतशत वीर,
क्षत-विक्षत-हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा धीर ।

पौरुष के प्रतीक बादल की प्रचण्ड क्षमता का सशक्त उद्घाटन इस बिंब द्वारा हुआ है । स्फीत शब्दावली वीरों के गिरने की प्रतिक्रिया को स्वर देती है । "शापित" के बाद "उन्नत" का प्रयोग अपनी अर्थगत विपरीतता से वीरों के सर्वग्रासी प्रभाव को व्यक्त करता है ।

और दूसरा चित्र है :

हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार
शस्य अपार,

हिल हिल,

खिल खिल,

हाथ हिलाते,

तुझे बुलाते,

विप्लव -रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।

क्रान्ति का आवाहन छोटे लोग ही करते हैं । " छोटे " जैसा सामान्य शब्द संदर्भानुरूप प्रयुक्त होने से बड़ा ही भावपूर्ण है । तिरस्कृत, निम्न तथा महत्वहीन को कवि ने विशिष्टता प्रदान की है । यह शब्द-चित्र कवि की संवेदना को बड़ी उन्मुक्त अभिव्यक्ति देता है । " हिल हिल खिल खिल " आदि से पौधों का एक गतिशील बिंब निर्मित होता है, जो बिंब के बाह्यगुण स्तर तक ही सीमित न रहकर अर्थ की द्वन्द्वात्मकता को भी आत्मसात् करता है । पौधों के उल्लास, उन्माद आवेग को वाणी मिली है । इसके विपरीत :

" अट्टालिका नहीं है रे

आतंक भवन "

में कवि का आक्रोश मुखर हो उठता है । निराला की ही एक कविता " तोड़ती पत्थर " की पंक्तियाँ सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार याद आ जाती है, जिस पर भग्न हृदय , पत्थर तोड़ती युवती जैसे हथौड़ा मारती है । दोनों कविताओं का विपरीत-भाव एक जैसा है - अट्टालिका के सामने " कृषक अधीर " और पत्थर तोड़ती स्त्री । " विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते " की गूँज बहुत दूर तक व्याप्त होकर इस कविता का केन्द्रीय तत्व बन जाती है । आठ चरणों में कवि ने विविध बिंबों में से इसी भाव को विकसित किया है :

सदा पंक ही पर होता

जल-विप्लव प्लावन,

क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,

" पंक " के बजाय " पंकज " का महत्व देनेवाले क्लासिकल और रोमांटिक कवियों के सौन्दर्य-बोध के विपरीत यह दृष्टि साहसपूर्ण है । " जल विप्लव

प्लावन " की तुलना में " नीर " का प्रयोग नीर की लघुता को व्यंजित करता है ।

रोग शोक में भी हंसता है
शैशव का सुकुमार शरीर ।

इस बिंब में बालक की क्रीड़ा-वृत्ति, उसकी उन्मुक्तता के माध्यम से बहुत कुछ कह दिया गया है । उसकी तुलना में ये धनी हैं :

रुद्ध कोष, है क्षुब्धतोष
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी वज्र गर्जन से बादल ।
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं ।

धनी व्यक्तियों में नैतिक बल के अभाव का निराला ने निर्ममता से पर्दाफाश किया है । क्षोभ, दया, ग्लानि की मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ इस चित्र को देखकर उद्भूत होती हैं । कदर्यता के पात्र ये विलासी शीत से नहीं काँप रहे हैं, वरन् भय से ।" अंगना अंग से लिपटना " और " आतंक अंक पर काँपना " ये दोनों चित्र एक के बाद एक विरोध में आकर लक्ष्मीपतियों की विलासिता और आत्म-बल-शून्यता को लक्षित करते हैं ।

और अन्त का यह कृषक-चित्र पूरी कविता को एक संगति प्रदान करता है ,

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर ।
चूस लिया है उसका सार
हाड़-मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार !

उपर्युक्त अंश निराला की प्रबुद्ध वर्ग-चेतना का प्रतीक है । उस विलक्षण कृषक का साक्षात्कार भाषा की प्रतीकात्मकता संभव करती है- चूस

लिया है उसका सार " नि:सत्व जीवन की करुणा और आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति करता है। " जीवन के पारावार " में सजीन, उत्साह या यों कहें, परिपूर्णता की स्पष्ट व्यंजना है। " जीवन-नद " या " जीवन-सरिता " आदि कहने से वह बात न आती जो " पारावार " के प्रयोग में निहित है। " जीवन के पारावार " बादल द्वारा ही हाड़-मांस-शेष सर्वहारा वर्ग का उद्धार हो सकता है। सुमित्रानन्दन पन्त ने " बादल राग " कविता की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हुए यह स्थापना की है " बादल को क्रान्ति का दूत मान लेना और उस क्रान्ति को युग-क्रान्ति से संबद्ध करना उनके (निराला के) समर्थकों की कल्पना की उड़ान-भर है। "[1]

वस्तुत: कविता की भाषा केवल अर्थ-सजगता को प्रश्रय न देकर उसकी संचरणशीलता को दृष्टि -पथ में रखती है। अर्थ के विविध स्तरों से पूर्ण यह समूची कविता इस दृष्टि से युग-क्रान्ति को ही स्वर नहीं देती, वह नैतिक जागरण, स्वच्छंद जीवन-पद्धति, नूतन प्रयोगों की संभावना को भी प्रमुखता देती है। निराला जैसा सांस्कृतिक कवि क्रान्ति के केवल स्थूल रूप से संतुष्ट भी नहीं हो सकता। लेकिन पंत जी का यह कथन कि बादल को युग-क्रान्ति से संबद्ध करना केवल उनके समर्थकों की कल्पना की उड़ान भर है - कविता के संवेदनशील विश्लेषण के बा स्वीकार्य नहीं होता।

भाव का दूरगामी निर्वाह इस कविता की भाषा की उल्लेखनीय विशेषता है। तीसरा भाव बंध है -

" उमड़ सृष्टि के अन्तहीन अंबर से, " जिसमें बादल के लिए शिशु का बिंब प्रस्तुत हुआ है। यह बिंब-निर्वाह पूरी कविता में हुआ है और " मुक्त शिशु पुन: पुन: एक ही राग अनुराग " में ही उसकी परिसमाप्ति होती है। कविता में अखण्ड आंतरिक एकता इसी कारण संभव हो सकी है। पंत जी ने भी अपनी " बादल " कविता में शिशु के बिंब को बादलों की क्रीड़ावृत्ति के चित्रण के लिए प्रयुक्त किया है। पर चूँकि कलाकार की दृष्टि रम्य, किन्तु खण्ड-खण्ड कल्पनाओं में है, अत: वहाँ यह बिंब एक छंद में ही समाप्त हो जाता है -

" फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार

---

१) " छायावाद : पुनर्मूल्यांकन ", - सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ ६७ ।

समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार ।

बादल -राग " में एक ही बादल में त्रस्त, मुक्त शिशु, क्रान्ति-दूत की परिकल्पनाएं करना कोई मामूली बात नहीं है, और विशिष्टता तो यह है कि वे परिकल्पनाएं कहीं भी ऊपर से लादी हुई नहीं लगतीं, वरन् अनुभव का अंग बन गयी है । इसका कारण यह है कि भाषा कवि की विविध संवेदनाओं के साथ सक्रिय है चाहे वह अमर राग के गायक बादल का गर्जन हो - शब्दों की संस्पर्शशक्ति का कवि पूरा-पूरा ध्यान रखता है, या विप्लव के माध्यम से नव-निर्माण को संभव करनेवाले" अंध-तम-अगम-अगैल बादल " का रूप हो । रचना की आंतरिक एकता और शब्दावली का ओज सर्वत्र पूरी ईमानदारी का निर्वाह करता है ।

(गीतिका ")

गीतिका " निराला का एक महत्वाकांक्षी प्रयोग है, महत्वाकांक्षी इस अर्थ में कि हिन्दी भाषा की सांगीतिक संभावनाओं को मुख्यत: तत्सम शब्द-प्रयोगों से उभारने का साहसपूर्ण प्रयास उसमें है । पुनर्जागरण की मूल भावना से प्रेरित होने के कारण संस्कृत निष्ठ शब्दावली को अपनाती हुई गीतिका की काव्यभाषा सांस्कृतिक परिवेश और सूक्ष्म संवेदनों को अपने भीतर आत्मसात करने में एक बड़ी सीमा तक कृतकाम हुई है, और इस प्रकार हिंदी भाषा की व्यंजना क्षमता को जीवंत अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है । इसमें कोई संदेह नहीं कि " गीतिका " में कुछेक गीत ऐसे हैं, जिनमें रचना-संघटन गहरे स्तर पर सक्रिय नहीं प्रतीत होता, दार्शनिक चिन्तन का भाषा से वह रचनात्मक रिश्ता नहीं जुड़ता, जिसके बल पर वैचारिक सुरक्षा औपचारिकता से आच्छन्न न होकर काव्य के अनुभव में, गीत की अनुभूतिगत सघनता और तीव्रता में पर्यवसित हो जाती है । आत्म-ज्ञान एकत्वानुभूति की विशुद्ध दार्शनिक स्थितियाँ प्रत्यक्ष जीवनानुभूतियों के स्पंदन से असंपृक्त रहकर काव्य के लिए कहाँ तक ग्राह्य हो सकती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है ।

अस्तु, जिन गीतों में कविता की रचना-प्रक्रिया जागरूक प्रतीत होती है, उनमें से कुछ गीतों के विश्लेषण के आधार पर निराला के इस " महत्त्वाकांक्षी प्रयोग " की परख की जा सकती है । यह तो स्पष्ट ही है कि " गीतिका " की रचना में निराला की दृष्टि ने संगीत तत्त्व को केन्द्र में रखा है (द्रष्टव्य " गीतिका " की भूमिका)। यह अपने आप में एक सुखद अनुभव है कि यह संगीत-तत्त्व काव्यभाषा की संभावना को समृद्ध करता चलता है । यों तो खड़ीबोली में नये गीतों की सृष्टि सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से की है, जैसा कि निराला ने स्वयं स्वीकार किया है [1] और प्रसाद के कुछ गीत - मीड़ मत खिंचे बीन के तार " (" अजातशत्रु ") ," मांझी साहस है खे लोगे " ," सब जीवन बीता जाता है " ," आह ! वेदना मिली विदाई(स्कन्दगुप्त) " तुम कनक किरन के अंतराल में लुक-छिपकर चलते हो क्यों ? हिमाद्रि तुंग-शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती (" चन्द्रगुप्त) अपने रचना- संघटन में बेजोड़ हैं, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि प्रसाद ने गीतों की संभावना को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया । तत्सम शब्दों के जबर्दस्त आकर्षण से युक्त निराला के गीत संगीत और काव्य को एक सार्थक सर्जनात्मक रिश्ते में बाँधते हैं ।

" (प्रिय) यामिनी जागी " गीत अपनी संगीतात्मक लय, मौलिक स्वर-विस्तार में सद्यःजाग्रता प्रेयसी का एक गतिशील चित्र निर्मित करता है । प्रिय के साथ देर रात तक जागरण की खुमारी को अभिव्यक्त करने के लिए यह शब्द-बंध प्रयुक्त हुआ है -

(प्रिय) यामिनी जागी ।
अलस पंकज दृग अरुण -मुख-
तरुण-अनुरागी ।

" प्रिय) यामिनी जागी के शब्द-प्रयोग में अनुभव की उन्मुक्तता,सघनता को प्रश्रय मिला है । यह लाक्षणिक प्रयोग महज छायावादी लाक्षणिकता का कायल नहीं है, वरन् इसके द्वारा रात्रि-जागरण के सुखानुभव का भरपूर आस्वादन संभव

---

१) गीतिका - भूमिका, पृ० १६

हुआ है । यामिनी जाग गई है । सूक्ष्म-अमूर्त रूप के बावजूद " यामिनी " में रात्रि की संपूर्ण संयोग-क्रियाओं की अर्थ-छवियाँ गीति के पूरे लाघव के साथ अंकित हो गई है ।" यामिनी " की अर्थ-छायाएँ देखने योग्य है, जो उसके किसी अन्य यथार्थ में नहीं आ सकती थी - याम- प्रहर-प्रहर वाली - यानी लम्बी रात । संयोग-सुख की दीर्घकालीनता को यह प्रयोग स्वर देता है । प्रेयसी के अलसाये पंकज नयन अरुण- मुख प्रिय के अनुरागी हो रहे हैं । प्रिय-संयोग के बाद की खुमारी का अंकन बहुप्रयुक्त अप्रस्तुत-विधान पर आधारित है - (" अलस- पंकज-दृग ") ,जो प्रात:कालीन परिवेश को आलोकित करने के बावजूद अर्थ की गहरी संभावनाएँ नहीं उद्भूत करता । यही स्थिति प्रसाद के बीती 'विभावरी जाग री " गीत के इस अंकन में आ सकती है :

तू अब तक सोई है आली ।
आँखों में भरे विहाग री ।

यहाँ रात्रिकालीन राग" विहाग " का सूक्ष्म-अमूर्त बिंब विर्णन में गहरे स्तरों पर व्याप्त होकर जागरण सुख की विविध स्थितियों- मादकता, अलसता, सुकुमारता - छायाएँ उद्भूत करता है । दो कवियों के पर्यवेक्षणों के इस तुलनात्मक विश्लेषण से बहु प्रयुक्त अप्रस्तुत और तार्थे, सूक्ष्म-अमूर्त बिंब पर की आस्वादन प्रक्रिया के अंतर को पहचाना जा सकता है ।

शय्या से तत्काल उठी प्रेयसी के खुले बालों की " क्षीण शोभा " " ए" के स्वर-विस्तार ,अभिधात्मकता के बावजूद शब्दों की घुलनशीलता, लय की साथ नियोजना में सजीव हो उठी है -

खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे ,

केश के साथ" अशेष" की जो आन्तरिक तुक है, वह केवल बाह्य अलंकृति नहीं, वरन् खुले केशों की शब्दातीत शोभा को अशेष जैसे (संभवत: सर्वाधिक उपयुक्त) प्रयोग में बाँधने की प्रक्रिया है । संयोग-सुख से सद्य:निसृत प्रेयसी की स्थिति से जुड़कर खुले केशों की यह" अशेष शोभा " और भी सार्थक एवं अनतिरंजित प्रतीत होती है । क्रियाओं के सुकुमार अर्थ-सौन्दर्य पर ध्यान दें - भर रहे " और

तर रहे" छंद की दो तुकें नहीं है, अपितु पहले में (भर रहे) सौन्दर्य की सतत गतिमान प्रक्रिया अनुस्यूत है और दूसरे में (तर रहे) उसका उन्मुक्त फैलाव अंकित है। इन दो पंक्तियों के मुकाबले तीसरी पंक्ति की नियोजना अर्थ के स्तर पर उतनी संचरणशील नहीं हो पाती, क्योंकि उसमें एक रूढ़ि है, भले ही वह पिछली दोनों पंक्तियों के सपाट अंकन की तुलना में आलंकारिक हो -

बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,

यह पंक्ति संगीतात्मकता की दृष्टि से उपयुक्त हो सकती है, किन्तु सौन्दर्य के प्रति कोई नवोन्मेष नहीं जाग्रत करती।" इसके आगे की पंक्ति अवश्य ही लोचदार है, और प्रेयसी को अपनी दीप्ति से आलोकित कर देती है -

ज्योति की तन्वी, तड़ित-
द्युति ने क्षमा माँगी।

इस प्रयोग में कुछ-कुछ उसी प्रकार की ताज़गी है, जैसी इड़ा के सौन्दर्य-अंकन में यह बिंब है - वह नयन महोत्सव की प्रतीक।[१] (कामायनी) "तड़ित-द्युति ने क्षमा माँगी" में एक परंपरित चित्र अनुस्यूत रहने पर भी शब्दों की नियोजना में नयी भंगिमा है, और इसीलिए" बादलों में घिर अपर दिनकर रहे" की तुलना में यह पंक्ति अधिक प्राणवान् लगती है।

गीत के अंतिम अंश में मार्मिक ढंग से पारिवारिक जीवन में संपन्न शरीर-सान्निध्य की परिणति को स्थान दिया गया है -

फेर उर पट, फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मंद मराल
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी।

पिछली दो पंक्तियाँ मात्र शारीरिक चेष्टाओं तक सीमित न रहकर मानसिक स्थिति को भी स्पष्ट करती है। "फेर", "फेर" के बहुमव शब्द-प्रयोग में हिंदी का अपना सौन्दर्य है, जो घरेलू ढंग की अनौपचारिक स्थिति के संदर्भ में सटीक है। शरीर-सान्निध्य की परिणति गृहस्थ जीवन के दैनिक

क्रिया-कलाप में होती है और जो एक माने में दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता है। प्रेयसी के रूपांकन में "ज्योति की तन्वी" जैसे प्रयोग के समकक्ष "गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल" का प्रयोग अपने मांगलिक संदर्भ के कारण विशिष्ट अर्थवत्ता रखता है और निराला की शब्द-पारखी प्रकृति को प्रकट करता है। अन्तिम पंक्ति "वासना की मुक्ति, मुक्ता / त्याग में तागी" का काव्यात्मक संयोजन, कल्पनात्मक पकड़ सर्वथा नवीन है। ऐन्द्रिक तुष्टि और कर्तव्य-निष्ठा का संपृक्त अनुभव इस गीत का है, जो इन विविध शब्द - प्रयोगों में उभर उठा है।

"(प्रिय) यामिनी जागी" की तरह कला-निर्वाह की सजग चेष्टा "मौन रही हार" (गीत सं० ६) में देखी जा सकती है, जिसमें परंपरा से रूपायित नव-वधू को नये संदर्भ में रखने की कोशिश की गई है-यानी उसकी द्वंद्वात्मक मनःस्थिति को उरेहा गया है :

मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार।

आभूषणों के लिए "शृंगार" का प्रयोग और उसका नवीन वाक्य-विन्यास ("सब कहते शृंगार") में पिरोया जाना उल्लेखनीय है। बाह्य-भूषणों के बजने से लोक-लाजवश नववधू प्रिय पथ पर जाना छोड़ देती है, लेकिन "बजे सँवर के इस सुर के सब तार" के कारण वह अपनी लज्जा का परित्याग कर पुनः प्रिय के पास जाने लगती है। यहाँ शब्दों की श्लक्ष्ण संगीतात्मकता में नववधू के सारे कार्यकलाप और उसकी विशिष्ट मनःस्थिति रूपायित हो उठी है।

"दृगों की कलियाँ नवल खुलीं" (गीत सं० १७) परिष्कृत पद-विन्यास का एक बढ़िया नमूना है, जो प्रणय के औदात्य को गहरा रंग देता है। दृगों की कलियों का इस प्रकार का रूपकात्मक अंकन है, मानों वे नायिका हों। इसी प्रसंग में "स्पर्श से लाज लगी" (गीत सं० १८) को लिया जा सकता है, जिसमें नायिका के साथ गहरे स्तरों पर अंकित रचनाकार शरीर-सुख को एक विराट् उत्सव

---

१) कामायनी, पृ० १०४

के रूप में लेता है । चुंबन की प्रतिक्रिया का अंकन बड़े दक्ष रूप में हुआ है -

चुंबन चकित चतुर्दिक् चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस बल
उर-सरिता उमगी ।

" चुंबन-चकित ", " जैसा शब्द-संयोजन प्रिया की आंगिक और मानसिक प्रतिक्रिया को, उसके अक्षत यौवन को बड़ी सुकुमार अभिव्यक्ति देता है । पहली पंक्ति में " चु " ध्वनि की आवृत्ति आह्लादयुक्त वातावरण के निर्माण में सहायक हुई है । अगली दोनों पंक्तियों के प्रसंगानुरूप विराम देखने योग्य है । इसके आगे मधुचर्या की प्रक्रिया को कवि ने अनुभव के स्तर पर प्रखर रूप में स्थान दिया है -

प्रेम चयन के उठा नयन नव
विधु-चितवन, मन में मधु कलरव
मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उरगी ।

पहली पंक्ति में " नयन " के पूर्व " चयन " का प्रयोग आन्तरिक अनुरूपता की नियोजना करता है, पर वह गौण बात है, विशिष्टता तो और गहराई में पैठने पर सामने आएगी । प्रिया प्रेम को चुनने वाले नव नयनों को उठाती है, जैसे " प्रेम " कोई मूर्त वस्तु हो, जिसका " चयन " किया जाना है । स्थूल वस्तु के संदर्भ में प्रयुक्त " चयन " शब्द की " प्रेम " जैसी सूक्ष्म प्रक्रिया के संदर्भ में काव्यात्मक विन्यासिता स्पृहणीय है । यहाँ, अलग से अति सामान्य, पर प्रस्तुत संदर्भ में बहुत सार्थक " नव " विशेषण पर विचार करना संगत होगा । नयन नव हैं, क्योंकि वे प्रेम-चयन करनेवाले हैं । वाक्य-विन्यास में निहित कल्पनात्मक पकड़ द्रष्टव्य है -

प्रेम-चयन के उठा नयन नव,

नव जैसा काव्य-रूढ़ विशेषण - विशेषतः छायावादी काव्य के संदर्भ में - यहाँ सम्पूर्ण आकस्मिकता रूप से नयनों को प्रत्यग्रता प्रदान करता है । चितवन के लिए विधु का बिंब ('विधु-चितवन') भी ऐसी ही ताज़गी से परिपूर्ण है।

तीसरी पंक्ति का " मौन " बड़ी सूक्ष्म, सटीक और सुकुमार व्यंजनाएँ उद्भूत करता है- विशेषत: अधरासव-पान -मधुचर्या के सर्वाधिक उत्तेजक और सुखद अनुभव के संदर्भ में। पंक्ति की बड़ी सधी हुई लय है -

मौन पान करती अधरासव
कंठ लगी उरगी ।

परिमल में संकलित "मौन" कविता के 'मौन मधु हो जाय " से अनुप्राणित संवेदनशील रचनाकार ही यहाँ मौन की अवस्थिति कर सकता था। अन्तिम वाक्यांश 'कंठ लगी उरगी " में गीत की तीव्रता को मूर्धन्य कर दिया गया है। संयोग-सुख के एकान्तिक उत्तेजन का निकटतम साक्षात्कार " उरगी " शब्द संभव करता है, जहाँ भाषा अनुभव और अभिव्यक्ति का सर्जनात्मक रिश्ता नहीं प्रस्तुत करती बल्कि और दूरी तक जाकर स्वयं अनुभव बन जाती है। नारी की उत्तेजित वासना का जीवंत " उरगी " में है। इस " उरगी " का तीव्र-प्रखर रूप पूर्ववर्ती " विधु-चिन्तन " की शीतलता शालीनता और " मौन " (मौन पान करती अधरासव) की विश्रान्ति के " कन्ट्रास्ट " में और भी उभरता है, और इस प्रकार, यौन अनुभवों - लज्जा, द्विधा, आकर्षण ,उत्तेजना - के क्रमिक विकास की अभिव्यक्ति देता है। मांसल चुंबन का ऐसा सही साक्षात्कार छायावादी कवियों की दुर्लभ सूक्ष्मता के परिप्रेक्ष्य में स्पृहणीय लगता है।

मांसल चुंबन के अंकन के बाद कला की यह परिणति वही कवि कर सकता है, जिसमें रोमान्टिक के साथ क्लैसिकल कलाकार की गहरी भंगिमा हो:

मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर,
बरस गये रस-निर्भर ,भर-भर,
उगा अमरांकुर -उर भीतर ;
संसृति भीति भगी ।

" अधरासव " और " उरगी " के उत्तेजक संवेदन के बाद संभोग की अबाध प्रतिक्रियाएँ 'अमर अंकुर " की अवतारणा में संभव हुई है। मेह के रूपक का निर्वाह पूरी आध्यात्मिक संवेदनशीलता के साथ कवि ने किया है। अन्तिम पंक्ति

संसृति - भीति भगी " का उदात्त संवेदन द्रष्टव्य है । कवि ने संयोग के उत्तेजन को ही नहीं अनुभूत किया ,उसमें निहित ऊर्ध्व-चेतना के भी दर्शन किये हैं ।

सामान्यत: क्लैसिकल स्पर्श से अभिषिक्त" गीतिका " के गीतों की श्रेणी में" नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे " (गीत सं० ४१) एकदम यथार्थ चित्र है, जिसमें होली के नितान्त घरेलू और परिचित रूपक में शरीर के उल्लास का अंकन हुआ है । संगीत के स्तर पर यह लोकगीत के करीब पहुँचता है और काव्य के स्तर पर इसकी खूबी यह है कि शरीर-सुख के इस बेलौस चित्र में कहीं भी अनुभव का हल्कापन नहीं है ।" गीतिका " के साधारणत: सूक्ष्म-भावभूमि वाले गीतों की तुलना में इस गीत की भाषा देखने योग्य है -

प्रिय-कर-कठिन उरोज-परस कस कसक मसक गई चोली,
एक वसन रह गई मंद हँस अधर दशन अनबोली -
कली-सी काँटे की तोली ।

मौखिक और अनौपचारिक लय पर निर्मित वाक्य के इतने लम्बे विस्तार में" कसक "," मसक "," अनबोली ", तोली " , जैसे ठेठ शब्दों का सधा प्रयोग हिन्दी भाषा की व्यंजना -क्षमता में वृद्धि करता है । इस नितान्त उन्मुक्त अंकन के बाद सूक्ष्म व्यंजनात्मक भाषा में गीत की यह परिणति हुई है -

बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुखलट,पट,दीप बुझा हँस बोली -
रह यह एक ठठोली ।

यहाँ" बीती रात " में" बीती " क्रिया-पद की व्यंजनात्मक गहराई देखने योग्य है । वह मधुर रात बीत गई, बिताई नहीं गई । अगर कवि ने" बिताई" क्रिया-पद का प्रयोग किया होता, तो वह ऊब का द्योतक होता, जैसे प्रिया ने विरक्ति के साथ संयोग-सुख की वह रात बिताई हो । किन्तु " बीती" के प्रयोग में ध्वनि यह है कि वह रात स्वयं बीत गई, मानो प्रिया को उसकी कमी और चाह थी ।

प्रकृति और मानवीय जीवन का संपृक्त अंकन करनेवाले प्रख्यात गीत " सरित, वसंत आया " (गीत सं० ३) में समास-पदों की मौलिक और कलात्मक योजना से सज्जित प्राकृतिक अवयव सूक्ष्म स्तर पर मानव जीवन के वसंत - उल्लासमय यौवन - को स्वर देते हैं - गीत की अंतिम पंक्तियाँ इस कथन का बड़ा सटीक उदाहरण है -

आवृत सरसी- उर सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छूटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया ।

ये संस्कृत निष्ठ शब्द कोई पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं है, कवि ने उनमें अपनी संसक्ति भर दी है । जीवन के संवेदन से वे सराबोर हैं, यौवनावस्था के विकास की बड़ी सूक्ष्म और संश्लिष्ट व्यंजनाएँ इनमें है । इसीलिए पूरी कविता एक चाक्षुष प्रतिमा-मात्र का निर्माण न कर, बड़े संश्लिष्ट ढंग से जीवनानुभव को पकड़ती है और किसी भी कविता के विषय में ऐसा कह पाना निश्चय ही उसकी उपलब्धि का द्योतक है ।

अपने गीतों में लय और विराम पर कवि ने बड़ा सधा अनुशासन रखा है और इस दृष्टि से इन दो गीतों का विश्लेषण किया जा सकता है - (१) " सरि, धीरे बह री " (गीत सं० १६) (२) " चाल ऐसी मत चलो " (गीत सं० ६२)
" सरि, धीरे बह री " में थोड़े शब्दों में समाहित वाक्य की नियोजना शब्दों की करुण प्रकृति, साभिप्राय विराम से संभव हुई है :

सरि, धीरे बह री ।
व्याकुल उर, दूर मधुर
तू निष्ठुर, रह री !

" व्याकुल उर " और " तू निष्ठुर " के बाद का अर्द्ध-विराम क्रमश: व्याकुलता और निष्ठुरता को गहराई देने के लिए प्रयुक्त हुआ है । शब्द-संयोजन भी अत्यन्त कलात्मक है -

तुम्हारा परस, कुल तन-मन
कुम्हार गूढ़ के बाकन ,

ले घट श्लथ लगती, पथ

पिच्छल, तू गहरी ।

करुणा और प्रशान्त लय वाले संगीत की संभावनाओं का इतना दूरगामी उपयोग इन उद्धरणों में देखा जा सकता है । दूसरे गीत " चाल ऐसी मत चलो " में जैसे खड़ीबोली का सारा खड़ापन निरस्त कर दिया गया हो । लय का यह ठहराव समग्र अनुभूति को एक नम्यता प्रदान करता है -

चाल ऐसी मत चलो

सृष्टि से ही गिर रहा जो

दृष्टि से फिर मत छलो ।

"अनामिका " में संकलित अत्यन्त प्रौढ़ गीत-रचना " मरण-दृश्य " की खास ढंग की लय का स्मरण प्रस्तुत गीत दिला देता है ।" मरण-दृश्य " में भी ऐसी ही ठहरी-ठहरी लय है -

कहा जो न ,कहो ।

नित्य-नूतन,प्राण,अपने

गान रच-रच दो ।

" गीतिका " के प्रस्तुत गीत में" चाल चलना " ("चाल ऐसी मत चलो") का ठेठ प्रयोग उल्लेखनीय है ।" सृष्टि" और" दृष्टि " का आंतरिक ध्वनि-साम्य-सृष्टि -प्रदत्त वेदना और उसमें प्रिया की निष्ठुरता को बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति देता है । दूसरी तथा तीसरी पंक्ति में क्रमश:" ही" और" फिर " अव्ययों के प्रयोग असहायता को एकांतिक स्तर पर पहुँचा देते हैं । गीत के अगले चरणों में एक खास ढंग की आत्मीयता शब्दों के रूप में उभरी है । उनमें एक विशिष्ट प्रकाशीलता है, जिसमें मन की सारी गोपनीयता अपने को डुबो देती है-

कह रहा हूँ जो कथा

बन रही उसकी व्यथा ?

या चरण चलते रहे

विचरण पर व्यथा ?

दुख मिला जिसको मिलाया

दुःख दे मत छलको ।

गलदश्रुभावुकता और अति-मोह से मुक्त, कुछ-कुछ निस्संग -सी इस लय में नियति के सामने मनुष्य की लाचारी, अचेतना की कसमसाहट ध्वनित हुई है। " या " और " सर्वथा " जैसे अव्ययों का सार्थक काव्यात्मक उपयोग हुआ है - " या " में विकल्प का जो भाव है, वह मानव-जीवन की अनिश्चिता, अनिर्दिष्ट प्रकृति की व्यंजना के लिए एक प्रकार का मितकथन है। प्रश्नवाचक चिन्ह (?) भी " या " की इस सर्जनात्मक क्रिया में योगदान देता है। " सर्वथा " में जीवन की भटकन, असहायता को एकान्तिक बल मिला है - या चरण चलते रहेंगे / निरशरण पर सर्वथा ? अंतिम क्रिया-पद 'दलमलो' में गीत की तीव्रता, सघनता मूर्धन्य हो गई है -

सुख मिला जिसको खिलाया
दुःख दे मत दलमलो।

" स्नेह निर्झर बह गया है " गीत की इन पंक्तियों में " दह " क्रिया पद में भी भाव-तीव्रता को मूर्धन्य कर दिया गया है - नहीं जिसका अर्थ / जीवन दह गया है।

इसी सज्जा से उपराम शब्दों की ताजी नियोजना के बाद प्रेमास्पद के लिए प्रयुक्त प्राकृतिक उपकरणों की सुकुमारता में गीत की समाप्ति जीवन-वसंत के आह्वान को स्वर देती है -

बनो वासंती मुकुल
पत्रिका तरु की वकुल
फिर सुरस सन्चारिका
सुख सारिका उसकी मुकुल
फिर मधुर मधुदान से नव
प्राण दे-देकर फलो।

छंद की मात्राओं में थोड़ी दूर तक समानता रखने पर भी इन पंक्तियों की प्रवृत्ति पूर्ववर्ती पंक्तियों की मनःस्थिति से कितनी अलग हो गई है, यह उल्लेखनीय है।

अर्थ के स्तर पर उन्मुक्तता और संचरणशीलता का बढ़िया उदाहरण " सखी री यह डाल, वसन वासंती लेगी " (गीत सं० १४) गीत प्रस्तुत

करता है, जिसमें सांस्कृतिक संदर्भ से अनुप्राणित विराट् रूपक का निर्वाह बड़ी दक्षता से हुआ है। निराला की विविधरूपा कल्पना जहाँ "स्नेह-निर्झर बह गया है" गीत में आम की सूखी डाल के रूप में जीवन की रिक्तता और उपलब्धि के संश्लेषण का साक्षात्कार करती है, वहीं " गीतिका " के इस गीत में पतझड़ की सूखी डाल पर वर-रूप में शिव की प्राप्ति के लिए तपरता, शैल-सुता-पार्वती का रूपक बाँधती है। कला- प्रयास और उदात्त चिन्तन का स्वच्छ रूप इस गीत में देखा जा सकता है। प्रणय की भारतीय परिकल्पना(जिसमें त्याग-तपस्या की विशेष प्रतिष्ठा है, और जो पार्वती के रूपक में बड़े सटीक ढंग से उद्घाटित हुई है), पतन में उत्थान के प्राकृतिक नियम तथा जागरण के नवोल्लास का संपृक्त अनुभव इस गीत की विशेषता है, जिसके आरंभ, मध्य और परिणति का निर्वाह सधी हुई संस्कृत-निष्ठ लाक्षणिक भाषा करती है। भाषा और अनुभव के स्तर पर पुनर्जागरण का अतुल भव्य रूप ऐसे गीतों में देखा जा सकता है।

पौराणिक रूपक का ऐसा ही काव्यात्मक उपयोग पास ही रे, हीरे की खान," (गीत सं० २५) की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है, जिनमें परम-सत्य-सिद्धि की अवस्थिति अपने ही भीतर मानी गयी है और जिसकी उपलब्धि कठोर आत्मिक संयम के बल पर हो सकती है। द्रौपदी-स्वयंवर के लिए आयोजित " मत्स्य वेध " का रूपक कवि की पौराणिक कल्पना-शक्ति का संकेत देता है :

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधना तुझे मीन शर मार
नीर के जल में चित्र निहार,
कर्ण का कार्मुक कर में धार,
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान् !
खोजता कहाँ उसे नादान ?

सिद्धि का सूक्ष्मानुभव इस रूपक के कारण काव्य के स्तर पर प्रस्तुत हो सका है। व्यक्तित्व शुद्धि का बहुलैकाव्य मूल जिसकी व्यावहारिक रीति है, रूप और प्रतीकों की नियोजना में, काव्य की आवृत्ति में ध्वनित हो उठा है, यह " गीतिका " के आठवें गीत में देखा जा सकता है और जो इस माने में " गीतिका " का मूल गीत कहा जा सकता है -

हूँ दूर - सदा मैं दूर ।

यहाँ सारे संकीर्ण दायरों का अतिक्रमण है । बद्ध और मुक्त मानस की स्थितियों का अंकन प्रस्तुत शब्द-बंध में हुआ है -

कल्लोलिनी-कला-जल-कलरव
सुमन-सुरभि समीर-सुख-अनुभव
कुमुद किरण अभिसार केलिनव
देख रहा तू मूल-शूर ।
हूँ दूर- सदा मैं दूर ।

बद्ध मानस की सटीक अभिव्यक्ति संघर्षशून्य इन ऐन्द्रिक-प्राकृतिक प्रतीकों में हुई है । वह कल्लोलिनी की कलावाले जल का कलरव सुन रहा है, सुमन की सुरभि और समीर के मंद संचरण से उत्पन्न सुख का अनुभव कर रहा है, कुमुद और चन्द्र किरणों की नव अभिसार केलि देख रहा है । भाषिक संरचना के स्तर पर यह अपने में एक बड़ी बात है कि इस तरह के प्रतीक ,जो छायावादी-काव्य विशेषत: महादेवी की कविता में - बहुतायत संख्या में नियोजित हुए हैं, प्रस्तुत गीत में बड़ी सूक्ष्म अर्थ-ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं । ये शब्द -" कल्लोलिनी ", " सुमन ", " सुरभि ", " कुमुद ", " किरण ", " अभिसार " आदि - छायावाद की शब्द-रूढ़ि भ्रम के होते हुए भी उनकी संवेदना के क़ायल नहीं हैं,कवि द्वारा नये संदर्भ में रखजाने के कारण अनुभव की ताज़गी को क़ायम किये हुए हैं ।" देख रहा तू मूल-शूर " में " मूल " और " शूर " का बाह्य ध्वनि-साम्य और आन्तरिक अर्थ-विरोध एवं दोनों शब्दों के बीच का अंतराल बद्ध मानस की व्यर्थता पर मुक्त के पश्चाताप को बड़ी काव्यात्मक, अनुशासन के साथ अभिव्यक्ति देता है ।" हूँ दूर - सदा मैं दूर " की अंत में आवृत्ति इस मुक्तिमान को और पुख़्ता प्रदान करती है । भाषा के साथ इतनी गहरी आत्मीयता होने पर ही कवि इस सूक्ष्म सोपान का संस्पर्श कर सका है, ठीक उसी तरह, " मैं " ले चल क्यों भुलावा देकर " मेरे नाविक धीरे-धीरे " जैसे प्रसिद्ध गीत में प्रसाद व्यक्तित्व की निःसंगता को शब्दों की एकांत निकटता में पर्य-वसित कर सके हैं ।

"गीतिका" में संकलित जागरण-गीतों में निराला ने तत्सम शब्दों का भरपूर और कुशल उपयोग किया है, जिनमें से एक गीत "जागो जीवन धनिके" को विश्लेषण के लिए लिया जाता है। धन की अधिष्ठात्री के रूप में परिकल्पित लक्ष्मी के परंपरित, सीमित रूप को न लेकर उनके व्यापक रूप को इस गीत में लिया गया है। लक्ष्मी के लिए पहला संबोधन है - जीवन-धनिके।" इसमें जीवन की समूची समृद्धि अनुस्यूत है। अंधकार को निरस्त कर अवतरित होते प्रकाश की नियोजना से जागरण का अंकन कोई नई बात नहीं, किन्तु प्रस्तुत पंक्तियों में कवि की विराट् चित्र योजना द्रष्टव्य है -

दु:ख-भार भारत तम-केवल
वीर्य-सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा-पटल निजकर बायी
छविमयि दिन-मणिके।

भारत के सामूहिक पतन की तीव्र पीड़ा पहली दो पंक्तियों में मूर्त हो उठी है। "वीर्य सूर्य के ढके सकल दल" प्रयोग तेज-शून्यता को उभारता है। अंतिम पंक्ति में जागरण की कामना मुखरित हुई है।

शब्दों की विशिष्ट नियोजना के कारण अभिधा में से विराटता किस प्रकार विवृत होती है, यह गीत के अंतिम अंश में देखा जा सकता है :

दिवस -मास ऋतु अयन वर्ष भर
अद्भुत-वर्षी युग-योग निरंतर
बरसो छोड़ शेष सब तुम पर
लय-निर्मिति कणिके।

जिनमें जीवन-धनिके के विराट् रूप, सार्वभौम, शक्ति की प्रतिष्ठा हुई है। "दिन-मणिके", "ज्ञान-विपणि-रत्नमिके", "लय-निर्मिति-कणिके" जैसे प्रयोग समास-प्रियता और संस्कृत ज्ञान के प्रदर्शन के अभिप्राय से नहीं प्रयुक्त हुए हैं, अपितु इनमें उदात्त संवेदन, विश्वोन्मुखी चेतना, अनुस्यूत है और इस रूप में ये जागरण के विराट् भाव को आत्म विश्वास से मुखरित करते हैं।

(" तोड़ती पत्थर ")

काव्यभाषा में महत्त्व गठन का है, शब्दावली का नहीं । कवि की संवेदना की सही पहचान, उसकी ईमानदारी ,ग़ैर-ईमानदारी की पकड़ केवल शब्दों की तत्सम-तद्भव प्रकृति के अनुशीलन से नहीं की जा सकती । केवल तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग काव्य में जन-सामान्य की प्रतिष्ठा तब तक नहीं कर सकता, जब तक उन शब्दों में कवि की संवेदना ने अपनी ललक, संसक्ति न भर दी हो । अकिंचन, उपेक्षित को स्थान देने वाली रचना में रचनाकार के संस्कारशील,तत्सम शब्द-प्रयोग के कारण उस रचना की वस्तुनिष्ठता और साधारण के प्रति कवि-संवेदना की प्रामाणिकता में संदेह संगत नहीं प्रतीत होता । बहुत संभव है कि संवेदनशील रचनाकार के उस विशिष्ट प्रयोग में रचनात्मकता का आग्रह हो तथा आभिजात्य के कुछ-कुछ निकट रहनेवाली वह शब्दावली अकिंचनता के विरोध में आकर संवेदना की तीव्रता को और भी अधिक उजागर करे । अपनी प्रबुद्ध समीक्षा शक्ति और यथार्थग्राही दृष्टि के बावजूद दूधनाथसिंह" तोड़ती पत्थर " (१९३७ ई०) की मूल दृष्टि का संस्पर्श न कर पाने के कारण उसकी यथार्थ की पकड़ में संदेह करते हैं और उसकी प्रकृति को छायावादी कल्पनाशीलता से संपृक्त करते हैं -" मुक्त छंद " के बावजूद" तोड़ती पत्थर " या दूसरी कविताओं का संपूर्ण संग्रथन छायावादी है।[१] " कुकुरमुत्ता" तथा कुछ अन्य कविताओं की तुलना में उन्होंने यह बात कही है ।

स्नेह-स्वप्न-मग्न, अमल-कोमलतनु-तरुणी" जुही की कली के चित्रांकन के साथ निराला काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और कवि की परिवेश के प्रति उन्मुक्त दृष्टि उसे इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़नेवाली युवती मजदूरिनी के ऊपर कुछ सोचने को विवश कर देती है। अकिंचन काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले निराला-जन-साधारण से जुड़कर बड़े चटक रंगों में" पत्थर तोड़ती" युवती का चित्र चित्रित करते हैं । इस कविता की मूल विशेषता उसमें निहित विपरीत

---

१)" कुकुरमुत्ता : भूमिका " कुकुरमुत्ता काव्य : आभिजात्य से मुक्ति", पृ० १४

भाव है, जिसे भाषिक संरचना रूपायित करती है। यह विपरीत भाव विपन्नता और सम्पन्नता को लेकर तो है ही, पर कविता की भाव-गंभीरता पत्थर तोड़ती मजदूरिनी के भरे यौवन और उसके प्रति स्वयं उसकी तटस्थता (जो वस्तुत: उसकी दीन स्थिति की विवशता का प्रतिफलन है) में निहित है। वैषम्य की व्यंजना कवि आरंभ से ही करता है :

> नहीं छायादार
> पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
> श्याम तन भर बँधा यौवन,
> नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
> गुरु हथौड़ा हाथ,
> करती -बार-बार प्रहार
> सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।

" नहीं छायादार पेड़ " और " तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार " का आमना-सामना होता है। दोनों स्थितियों का विरोध कविता की संरचना को समृद्ध बनाता है। श्रेष्ठ कविता में गठन की परिपक्वता होती है, शब्दों की सरलता-कठिनता उसी के आधार पर अपना रूप धारण करती है। निराला जैसे संरचना के महत्व पर बल देनेवाले रचनाकार इस बात को गहराई में महसूस करते हैं। जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे एक पत्र में उन्होंने " तोड़ती पत्थर " की उसी संरचनागत सूक्ष्मता का उद्घाटन किया है। कुछ अंश उद्धृत है -

" कुछ काव्य समझकर आप इसे सरल कहेंगे, मुझे विश्वास नहीं। जो गहन भाव, सीधी भाषा सीधे छन्द में चाहता है, वह धोखेबाज़ है। "[१]

यहाँ " सीधी भाषा " में " सीधी " प्रयोग द्रष्टव्य है। सीधी यानी क्लक छन्द-विरोध की प्रकृति से रहित भाषा के प्रयोगकर्ता वे नहीं हैं। भाव और भाषा की प्रकृति पर चिन्तन और उनके समतोलन पर बल रचना के साथ ऐसे स्तरों में संवेदना रखनेवाला रचनाकार ही कर सकता है। थोड़ी देर के लिए अभिव्यक्ति की प्रणाली को छोड़ दें, संवेदना को ही दृष्टिपथ में रखें (इस विचार

---

१) साहित्य पत्र में उद्धृत (वर्ष १, अंक ३, १९५०)।

के बावजूद कि संवेदना का साक्षात्कार अभिव्यक्ति ही तो संभव करती है) तो हम यहाँ वर्णन के भीतर से उभरती हुई व्यंग्य-ध्वनि का स्वर सुन सकेंगे। यह छायावादी करुणा नहीं है, जैसा कि दूधनाथसिंह ने कहा है, वरन् उस सामाजिक-आर्थिक विषमता पर व्यंग्य है, जो मनुष्यता का नारा लगाने के बावजूद व्यवहार रूप में उसका मूल्य नहीं आँकती। सामने " अट्टालिका-तरुमालिका " है, पर पत्थर तोड़नेवाली जिस पेड़ के नीचे बैठी है, वह छायादार नहीं है। यह वैषम्य तिलमिलाहट उत्पन्न करता है, निष्क्रिय करुणा की पुष्टि नहीं करता।

> नहीं छायादार
>
> पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,

नहीं" का आरंभ में प्रयोग जैसे इस निषेध-भाव को कह देता है। पेड़ छायादार नहीं है, तो न हो। पत्थर तोड़नेवाली को तो उसी के नीचे बैठना है। " स्वीकार " में केवल आदमी के अपनी नियति से मूक समझौते की व्यंजना है। इस सहनशक्ति में एक विचित्र प्रकार की उच्चाशयता के दर्शन करना और उसे छायावाद के काव्य-आभिजात्य की देन बतलाना[1] ठीक नहीं। यह स्वीकार अर्थ के प्राथमिक स्तर पर असहाय स्थिति को देता है। जो है, जैसा है, उसको उस मजदूरिनी को स्वीकारना ही होगा, अन्यथा चारा नहीं। अर्थ के अधिक सूक्ष्म स्तर पर इसकी व्यंजना और गहरी है, जिसे आगे किया जाएगा।

> श्याम तन, भर बँधा यौवन,
>
> नत नयन प्रिय कर्म रत मन,

इन दो चरणों के आधार पर कवि की दृष्टि को रोमांटिक कहा गया है। कहाँ तो विषमता दीनता का चित्र है, कहाँ मजदूरिनी के यौवन का उल्लेख। मगर सूक्ष्म विश्लेषण के बाद यह तथाकथित रोमांटिक दृष्टि कविता में अर्थ-सघनता की पुष्टि करती है और उसे संपन्नता-निर्धनता का वैषम्य प्रस्तुत करने वाली अनेक कविताओं से पृथक एक विशिष्ट स्थान देती है।" श्याम तन, भर बँधा यौवन" पूरी कविता में गूँज छोड़ जाता है। उसका तिरस्कार -सा करता हुआ-बनता सौ कर्म - उसे कुमारी बेटा हुआ" नत नयन " प्रिय कर्म-रत-मन" का दृश्य सामने आ जाता है। अकिंचनता के घेरे हुए यौवन, ऐन्द्रिक तृप्ति की लालसा को कोई स्थान नहीं है। इस वैषम्य में, आमने-सामने की टकराहट में जिन्दगी की

---

१) " कुकुरमुत्ता " : काव्य-आभिजात्य से मुक्ति । पृ०

" आहरनी" मुखरित होती है । यह चित्र कवि ने निरुद्देश्य नहीं प्रस्तुत किया है, वरन् वह 'भर बँधा यौवन' की सारी कोमलता के द्वारा उस पत्थर को तोड़ती नारी की संघर्ष-संकुल दिनचर्या को और गहरा रंग देना चाहता है । " भर बँधा यौवन " उमड़ता नहीं है, बँधा हुआ है । स्थिति की विवशता और उस पर व्यंग्य द्रष्टव्य है । दृष्टिगत अन्तर एक ही पंक्ति की विविध प्रतिक्रियाएँ संभव करता है । इन विविध दृष्टिकोणों की टकराहट से ही विकास की संभावनाएँ उद्भूत होती हैं । दूधनाथसिंह को इसमें काव्यात्मक आभिजात्य की प्रतीति होती है : कोई न छायादार पेड़ ---- के बाद श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन, प्रिय कर्म-रत मन यह पूरा बंध छायावादी शब्द-संयोजन की देन है । इससे पत्थर तोड़ने वाली के एक अभिजात से लगनेवाले सौन्दर्य की सृष्टि होती है, उसका काला-कलूटा रंग और पत्थर तोड़ती हुई मुद्रा अधिक प्रकट नहीं होती । [१]

स्पष्ट ही समीक्षक की दृष्टि यहाँ सीधे वर्णन पर अधिक है, विपरीत-भाव पर कम । यह तथाकथित छायावादी शब्द-संयोजन सामिप्राय है, इससे पत्थर तोड़ने वाली के एक अभिजात-से लगनेवाले सौन्दर्य की सृष्टि नहीं होती । वह निराला जैसे जन-संवेदना के कवि का (कम से कम यहाँ पर) उद्देश्य भी नहीं है । उसकी रचनात्मक आवश्यकता का प्रतिबिंबन नीचे की दो पंक्तियाँ करती हैं, जिनके कन्ट्रास्ट में " भर बँधा यौवन " को अंकित किया गया है :

गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार बार प्रहार,
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार ।

कवि की संवेदना " श्याम तन, भर बँधा यौवन " से बद्ध नहीं है । उसे एक ही झटके के साथ पीछा छुड़ा लेती है । भाषिक संरचना का यह रूप, शब्दों की भिन्न प्रकृति कवि की यथार्थग्राही दृष्टि का परिचायक है । पेड़ और तरु-मालिका " जैसे भिन्न और अभिजातवर्गीय जीवन के वैभिन्न्य को उद्घाटित करती है । वह श्यामा युवती हथौड़े से पत्थर पर बार-बार प्रहार करती है, जिसे आलोचकों ने प्रतीक रूप में ग्रहण किया है, मानों वह सामने की अट्टालिका

---

१) [illegible] । काव्य आभिजात्य से मुक्ति, पृ० ९९ ।

पर प्रहार कर रही हो। स्वयं निराला ने जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे पत्रों में इन पंक्तियों को इसी प्रकार व्याख्यायित किया है - यहाँ सीधा वर्णन होने पर भी हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिए, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है? लेखक के वर्णन प्रकार के कारण व निर्देश से।[१]

यह व्याख्या संगत है। स्पष्ट है कि यह प्रहार चुनौती है, ललकार है, विवश आत्म-समर्पण नहीं। अगर उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों का अधिक सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए, तो एक और गहरी ध्वनि निकलती है: जैसे वह पत्थर तोड़ती युवती अपने "भर बँधा यौवन" पर प्रहार कर रही हो - उस यौवन पर, जो छलकता नहीं, उमड़ता नहीं, जो उसके दैनिक जीवन के अनुभव का अंग नहीं बन पाया है। यह स्मरण रहे कि यौवन के प्रति यह आक्रोश या तटस्थता भी विषमता की कड़ी चोटों का प्रतिफलन है। इस प्रकार भाषिक संरचना का संवेदनशील और साथ ही चुस्त अध्ययन जिस निष्कर्ष पर पहुँचाता है, वह "छायावादी शब्द-संयोजन" के प्रयोग के बावजूद कवि की वास्तविक पकड़ को ही व्यंजित करता है।

रही "काला-कलूटा रंग और पत्थर तोड़ती हुई मुद्रा" के अधिक न प्रकट होने की शिकायत, तो "श्याम तन भर बँधा यौवन" और "गुरु हथौड़ा हाथ" के परस्पर वैषम्य द्वारा कवि अर्थ की गूँज-अनुगूँज व्यक्त करना चाहता है, वह काली-कलूटी आदि विशेषणों के सपाट कथन में संभव न होता। इस स्पष्टीकरण के बावजूद यदि कोई इस वैषम्य को कविता का दुर्गुण बतलावे, क्योंकि इसी के कारण भाषा और संवेदना के कलात्मक पक्ष को पकड़ना पड़ता है, तो इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाए कि "आहरनी" की अभिव्यक्ति में दो विभिन्न जीवन-स्थितियों से सम्बद्ध शब्दावली को ग्रहण करना दुर्गुण नहीं है। इस यथार्थ-परक कविता में आभिजात्य का संस्पर्श यथार्थ को और गहरा रंग देने के लिए है।

पत्थर तोड़ने वाली की सुकुमारता,
गदराए यौवन को जैसे चुनौती मिलती है:
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार।

---

१) "साहित्य" पत्र से उद्धृत (वर्ष १, अंक ३, अक्टूबर, १९५०)।

भर बँधा यौवन " के साथ हाथ में गुरु-हथौड़ा है, जिससे उसको बार-बार प्रहार करना है। यही उसकी नियति है। यहाँ दोनों अंशों के ध्वन्यात्मक वैषम्य पर ध्यान दें। एक यह है -

" भर बँधा यौवन।
नत नयन प्रिय कर्म रत मन।"
दूसरा यह है :
" गुरु हथौड़ा हाथ / करती बार बार प्रहार।"

ह्रस्व और दीर्घ, कोमल और कठोर यह विपरीत भाव भाषा से संवेदना को जोड़ता है।

परवर्ती रचना " रानी और कानी " (नये पत्ते " में संगृहीत) में निराला ने देशज, मदेस शब्दों का आग्रहपूर्ण प्रयोग किया है :

बीनती है, कोड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी। ----

सामान्य का वर्णन सामान्य की शब्दावली में करने की यह प्रक्रिया निःसन्देह सराहनीय है, पर केवल शब्दावली की प्रकृति के आधार पर (तोड़ती पत्थर" तथा " रानी और कानी " कविताओं के संरचनागत अंतर को समझे बिना) मूल्यांकन उचित नहीं, जैसाकि दूधनाथसिंह ने किया है :" काली और नकचिप्टी के साथ और घड़ों भरती है पानी " वाली श्रमशीलता और " श्याम तन भर बँधा यौवन " नत नयन प्रिय कर्म-रत मन " की श्रमशीलता की अभिव्यक्ति में कितना बड़ा गुणात्मक अंतर है, यह आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है। एक नग्न यथार्थ की कटु अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ('तोड़ती पत्थर') यथार्थ को काव्य-आभिजात्य देने का प्रयास।[१]

दूसरा चित्र ग्रीष्म की प्रचण्ड दुपहरी का है, जिसे वस्तुतः" दूसरा" न कहकर पूर्ववर्ती वर्ग का पूरक कहना अधिक न्यायपूर्ण होगा !

---

१)" दुश्चक्र ? काव्य आभिजात्य से मुक्ति , पृ० ३६ " ।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई-ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई
प्राय: हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर ।

वातावरण की भीषणता - दूसरे शब्दों में यथार्थ की तीव्रता - अपनी सारी प्रभावक्षमता के बावजूद अंत के वाक्य " वह तोड़ती पत्थर " के सामने डगमगा जाती है, जैसे उस श्रमिक स्त्री को झुलसाती हुई लू, रुई-ज्यों जलती हुई भू " से कोई प्रयोजन न हो, उसका तो धर्म ही है, चुपचाप कर्म में लीन रहना । पूरे वाक्य की परिसमाप्ति (" वह तोड़ती पत्थर ") में होती है, जो कवि के संरचनागत कौशल को सूचित करती है । ऐसा सघन वाक्य-विन्यास कवि की सजग संवेदना को स्वर देता है । यहाँ प्राय: हुई दुपहर " में प्राय: " का सौजन्य और मितव्ययन दुपहर को हल्का नहीं करता, वरन रेखांकित कर देता है , कुछ-कुछ वैसे ही, जैसे अंग्रेजी कविता में " स्योरली " का प्रयोग कहीं-कहीं शंका की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है । वर्णन के भीतर से करुणा और व्यंग्य की संपृक्त ध्वनियाँ सुनाई पड़ती है, जो " रानी और कानी " के सीधे व्यंग्य से अधिक गहरी और जटिल है । एक बार पूर्ववर्ती " स्वीकार " (नहीं छायादार/पेड़ वह जिसके नीचे बैठी हुई स्वीकार) को इस पूरे अंश से सम्बद्ध करके देखें । इस विशिष्ट संरचना में अर्थात् श्याम तन भर बँधा यौवन , और " रुई-ज्यों जलती हुई भू " के विरोध में " स्वीकार " की अर्थ सघनता दृष्टिगोचर होगी, जिसमें कातरता नहीं है, मुकाबिले का भाव है, तीखापन है । अन्तिम बंध में चित्र की पूर्ण परिणति तो है ही, पत्थर तोड़नेवाली का " मैं तोड़ती पत्थर " कहना सारी स्थिति तक पर एक बार फिर सोचने के लिए मजबूर कर देता है -

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार

देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं,

यहाँ "देखना" क्रियापद की सादगी, उसमें अनुस्यूत अर्थ-क्षमता द्रष्टव्य है। वह मजदूरिनी बार बार देखती है। हर बार के देखने में कितना अंतर है-यह द्रष्टव्य है। जितना सूनापन, जितनी शोभाहीनता उसके जीवन में है, वह सब इस सादी और रंगहीन भाषा में समा गई है। जो मार खाकर रोती नहीं, उसमें दृढ़ता भी कितनी होगी। वह अपनी स्थिति से समझौता तो करती ही है (और जो वास्तविकता भी है); किन्तु मार खाकर न रोने में बहुत कुछ कह भी जाती है। यहाँ सहने की उच्चाशयता नहीं है,, चोट खा सकने की सीधी शक्ति व्यंजित है। तभी करुणा हमारी उत्तेजना को बढ़ावा देती है। इससे अधिक सक्रिय सहानुभूति और क्या हो सकती है? रोमांटिक दृष्टि कैसे इतनी प्रखरता लाती ?

"श्याम तन भर बँधा यौवन" के साथ मिलाकर अंतिम पंक्तियाँ पढ़ें - "मैं तोड़ती पत्थर।" कविता की सघन संरचना में यह वाक्य बड़ी गहरी अर्थ-छायाएँ विवृत करता है। वह "भर बँधा यौवन" ही मानो पुकारकर कहता है - "मेरा कोई उपयोग नहीं।" वह स्त्री पत्थर - निर्जीव पत्थर - नहीं तोड़ती, अपनी जीवित कामनाओं, यौवन के सुख-स्वप्नों का हनन कर रही है। उल्लास-उन्माद उन्मुक्ति, निश्चिन्तता को वह जैसे चुनौती दे रही है। पूरी कविता में मूक मजदूरिनी का कण्ठ अंत में "मैं तोड़ती पत्थर" के बड़े सादे और संदीप्त कथन में खुलता है और सारी विषमताओं, कटुताओं के बावजूद श्रम की निरन्तरता, जीवन की एकान्तिक यान्त्रिकता को उभारता है। भाषा के संश्लिष्ट रूप में ही कविता इतनी क्रियायें-प्रतिक्रियायें संभव करती है।

("सरोज-स्मृति")

"सरोज-स्मृति" (१९३५ ई०) की रचना का प्रश्न निराला के लिए एक चुनौती से कम नहीं था। इस चुनौती के मूल में शोक-गीति जैसी एक नई काव्य-विधा

(हिन्दी काव्य के संदर्भ में) के प्रणयन का स्पृहणीय साहस न होकर अपनी एक मात्र पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न गंभीर विषाद की कविता के स्तर पर निस्संग अभिव्यक्ति थी । कहना न होगा कि इस चुनौती का सामना करते हुए कवि ने अपनी तटस्थ संवेदना और अपूर्व मानसिक संयम का परिचय दिया है । निराला के इसी व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने जो बात कही है, वह सरोज-स्मृति कविता के प्रसंग में बड़ी सटीक प्रतीत होती है -

'कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अतः अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है न पंत जी का है । यह निराला जी की समुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है ।'[1]

'सरोज-स्मृति' में संरचनागत कसावट की भित्ति पर कवि ने वैयक्तिक व्यथा को विविध जीवन-स्थितियों की सापेक्षता में अभिव्यक्ति दी है, और इस प्रकार शोक-गीति की संज्ञा से युक्त इस कविता में जीवन के संघर्ष से छनकर आयी हुई साहस, विद्रोह, वात्सल्य ,अवसाद, ग्लानि की मिली-जुली अनुभूतियाँ उद्भूत होती हैं ।

कविता का आरंभ सरोज के देहावसान के चित्रण से होता है, और कवि की दार्शनिक दृष्टि इस देहावसान को शोक की आवेगात्मक तीव्रता से पर दिव्य स्तर पर पहुँचा देती है -

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु-तरण
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण
गीते मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय

---

1) कवि निराला ,पृ० ३६.

" ऊनविंश पर जो प्रथम चरण " की अर्थात कोमलता के साथ " तन्ये , लीकर दुक्पात " तरुण " की विषमता को रखनेवाला कवि प्रौढ़ शिल्प का रचयिता है । कहने का यह ठण्डापन कवि की निर्वैयक्तिकता को स्वर देता है । सरोज के कुल अठारह वर्षों के जीवन को गीता के " अष्टदशाध्याय " का रूप देकर कवि ने सरोज को " गीते " संबोधन प्रदान किया है, जो इस वैयक्तिक दुःख को सांस्कृतिक संदर्भ से संयुक्त कर देता है । विवेचन के इस बिन्दु पर यह स्मरण रखना होगा कि यह दार्शनिकता निष्क्रिय नहीं है, जिसमें जीवनानुभूतियों की उष्णता को महसूस किये बिना तटस्थता की मुद्रा ग्रहण की जाती है, वरन् सच्चे जीवन-द्रष्टा का " विज़न " है और जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह कविता की संरचना का अंग है, क्योंकि इस दार्शनिक दृष्टि के विपरीत रूप में एकाकी और साधनहीन पिता की ममता और अवसाद में अधिक सघनता आ जाती है ।

आगे पुत्री के प्रयाण पर एक अतिशय सूक्ष्म और मार्मिक कल्पना करके कवि ने अपने जीवन के दैन्य को गहरा रंग दिया है, यद्यपि भावावेश उमड़ आया है -

जीवित कविते, शत शर जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गयी स्वर्ग, क्या यह विचार
जब पिता करेंगे मार्ग पर
यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?
कहता तेरा प्रयाण सविनय
कोई न अन्य था भावोदय ।

सरोज के लिए " जीवित कविते " संबोधन अपने में बहुत मार्मिक है - वह सरोज, जिसका सारा जीवन " जीवित कविते " रहा, इस रूप में प्रस्तुत कविता को अतिरिक्त ऊर्जा देती है । यहाँ " अक्षम " प्रयोग निराला की जीवन-स्थिति (जिसका आगे उल्लेख है) के सम्बन्ध में उनकी उत्तरदायित्व-निर्वाह की असमर्थता की ओर संकेत करता है । सरोज के संदर्भ में " सक्षम " शब्द इस अक्षमता को और गहराई देता है ।

इसके बाद के कुछ अंशों में पुत्री-विहीन पिता की आन्तरिक व्यथा और आर्थिक क्षेत्र के अन्याय को निराला ने बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है । कुछ अंश द्रष्टव्य हैं -

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका ।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित -काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर
शुचिते, पहना कर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख ।

प्रणय के प्रसंग में तो अनेक कवियों ने अपने व्यक्तित्व के पक्षों का प्रकाशन किया था, चाहे वह प्रकाशन प्रत्यक्ष रहा हो या अप्रत्यक्ष , परन्तु सही अर्थों में ईमानदारी का निर्वाह करनेवाले " संकुचित-काय " आदमी के प्रति भाग्य की निर्ममता की बात निराला जैसा भुक्तभोगी और साथ-ही साक्षी कवि ही कर सकता था । निरर्थक में अर्थहीनता और धनाभाव दोनों की व्यंजना है । सीधे आदमी की ज़िन्दगी (छल, अन्याय, प्रतिस्पर्द्धा के साम्राज्य में) कितनी विडम्बनापूर्ण होती है, इसका पूरा एहसास ये आठ पंक्तियाँ करा देती हैं । पुत्री को " चीनांशुक " पहनाना और उसे " दधिमुख " रखना उस पिता के लिए कैसे सुगम हो सकता था, जो " हारता रहा मैं स्वार्थ समर " था । " स्वार्थ-समर और " चीनांशुक " - दधिमुख की टकराहट से अर्थ की अनेक गूँज अनुगूँज उत्पन्न होती है ।

भौतिक जीवन की सुख-सुविधाओं के अभाव का बोध किन्तु आत्मिक उन्नयना पर दीप्त संतोष-भाव (जो अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है) - दो स्वरों की टकराहट निराला की अनेक कविताओं में सुनाई पड़ती । यहाँ अपनी साधनहीनता के अनुशोचन को निराला जो परिणति देते हैं, वह द्रष्टव्य है -

" यह नहीं हार, मेरी भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर ।"

अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य-कला कौशल प्रबुद्ध,
है दिए हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त ।

साहित्यिक जीवन के विविध-घात-प्रतिघातों के बीच अपने कभी न झुकनेवाले व्यक्तित्व का आख्यान कवि ने इन पंक्तियों में किया है :-

एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण ।
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल

लेकिन इस सारी दृढ़ता, अभयता के बावजूद स्नेह-पात्र की दबी इच्छाएँ और दृष्टि की छलक की अनुभूति और अपने आंदोलित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के प्रसंग में उसका उल्लेख निराला की संवेदनागत पकड़ और सटीक वर्णन-पद्धति का सूचक है -

पुत्री भी, पिता गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर ।
आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दबकर
कहती लघु-लघु उसाँस में भर ।
समझता हुआ मैं रहा देख,
हटती भी पथ पर दृष्टि टेक ।

शोक-गीत के इस सघन वातावरण में निराला अभिव्यक्ति की सामान्य-सी प्रतीत होनेवाली (पर वस्तुतः बड़ी असामान्य) प्रणाली का उपयोग करते हैं, जो समसामयिक कविता के शिल्प की एक प्रतिनिधि विशेषता है । इसका

साक्षात्कार युग-कवि के प्रति गतानुगतिक विचारों के पोषक साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा उपेक्षापूर्ण व्यवहार में किया जा सकता है :-

लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रांतर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुनकर
संपादक के गुण, यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर ।

" व्यतीत करता था गुन गुनकर / संपादक के गुण , " में जो हल्का विनोद-भाव है, वह कवि जीवन के अवसाद को और तिक्त कर देता है। अन्तिम तीन पंक्तियों में घास नोचने और उन्हें इधर-उधर फेंकने का उल्लेख कवि के मानसिक द्वन्द्व को स्वर देता है। यहाँ उपचेतन की कुछ हल्की-फुल्की क्रियाओं को अंकित किया गया है।

निराला ने अपने व्यक्तिगत जीवन में विकृतियों पर प्रबल शाब्दिक प्रहार ही नहीं किया, अपितु अपने आचरण से उसे चरितार्थ भी किया। यह अंश द्रष्टव्य है, जिसमें पत्नी की मृत्यु से एकाकी कवि अपनी कुण्डली में दूसरे विवाह का उल्लेख देखकर अपनी प्रतिक्रिया करता है :-

पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह
हँसता था, मन में बढ़ी चाह
खण्डित करने को भाग्य-अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक ।

पुनर्विवाह न करने के विचार को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने भाग्य-अंक को खण्डित करना चाहा। इस विचार के बाद फिर निराला को कोई नहीं डिगा सकता था। किन्तु शरीर का आकर्षण प्रबल होता है, एक विवाह-प्रस्ताव पर निराला असमंजस में पड़ गए। उन्हें पुनर्विवाह करने की बात

फिर सोचनी पड़ी । मन की इस द्विधा को पुत्री सरोज की ममता एक मोड़ दे देती है । सामान्य वर्णन की भाषा में पूरी प्रभावक्षता के साथ समूची स्थिति का अंकन सराहनीय है :

> दृष्टि थी शिथिल
> आयी पुतली तू खिल खिल खिल
> हँसती, मैं हुआ पुन: चेतन
> सोचता हुआ विवाह बंधन ।

यहाँ शिथिल " और " खिल -खिल-खिल " की तुकें बड़ी अर्थपूर्ण हैं । सारगर्भित शब्दों में निराला ने गंभीर बात कही है । आया मन में भर आकर्षण । उन नयनों का " से संचालित होकर वे पुनर्विवाह के प्रश्न को एकबारगी टाल नहीं सकते थे ! 'पर आयी पुतली तू खिल-खिल-खिल / हँसती " के चित्र ने उन्हें एक स्थायी निर्णय को बाध्य कर दिया, क्योंकि वे इस तथ्य से अवगत थे कि इस पुतली का यह " खिल-खिल-खिल " हास्य पिता के पुनर्विवाह (दूसरे रूप से अपनी सुख-सुविधा को प्राथमिकता) द्वारा मन्द हो जायगा । अन्त में विवाह को बंधन मानते हुए कवि ने स्थिति के द्वन्द्व को इस प्रकार समाप्त किया है -

> कुण्डली दिखा, बोला --". ए - लो ""
> आयी तू दिया कहा, "" खेलो ""

सरोज-स्मृति " कविता जहाँ एक ओर कवि के रूढ़ि-विरोधी अजेय व्यक्तित्व को व्यक्त करती है, वहीं वह उसके अप्रतिम साहस से परिपूर्ण मनोजगत का अविस्मरणीय रूप प्रस्तुत करती है (जो एक माने में अपेक्षाकृत अधिक स्पृहणीय उपलब्धि है) । आशय सरोज के यौवन-चित्रण से है । पुत्री से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण चित्रण में विशेष सावधानी रखनी थी । यों कवि चाहता, तो इस प्रसंग की अवतारणा ही न करता , कहीं निर्दोष रीति से इस नाजुक स्थिति को पार कर देता । पर निराला जैसे अन्य बहुत-सी बातों में अपवाद थे, वैसे ही युवापुत्री के सौन्दर्य और भाव-जगत के परिवर्तन के अंकन में भी । कहना न होगा कि अंकन की यह सफलता कवि का समर्थ भाषा का प्रतिफलन है ।

बादलराग " और " जागो फिर एक बार " (२) के ओजस्वी गायक निराला अपनी कन्या के यौवन का चित्रण कितने कौमल सूक्ष्म और सुकुमार बिंबों के माध्यम से करते हैं, यह द्रष्टव्य है :-

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण ,
बाल्य की केलियों का प्रांगण ।
कर पार, कुन्ज तारुण्य सुघर,
आयी ,लावण्य-भार थर-थर,
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर ।

धीरे-धीरे परिवर्धमान् यौवन का अंकन जिस सुकुमारता की अपेक्षा करता है, वह तो निराला को अपनी अभिव्यक्ति में निहित करनी ही थी, इसके साथ कन्या का पिता होने के कारण वह अंकन उदात्त रह सके, इसका भी पूरा-पूरा ध्यान रखना था । नव वीणा पर गाया जानेवाला मालकोश का बिंब कवि के दोनों मंतव्यों को पूर्ण करता है । वीणा के साथ " नव " विशेषण के प्रयोग में सरोज के प्रत्यग्र यौवन की व्यंजना है । लावण्य-भार के कोमलता पर थर-थर काँपने में एक बंकिम सौन्दर्य है, जो युवावस्था में क्रमश: स्थान करती सुन्दरता को द्योतित करता है । मालकोश गंभीर भावों का मृदु राग है । इसमें कोमल स्वरों का प्रयोग होता है । इस राग से सरोज के लावण्य को उपमित कर कवि ने युवावस्था की संकोच-मिश्रित गंभीरता, स्वर की मृदुता को अभिव्यक्ति दी है ।

यह कवि-दृष्टि का साक्ष्य और शिल्प पर अखण्ड अधिकार है, जिसके परिणामस्वरूप वह एक बिंब का प्रयोग कर वर्णन को विराम नहीं दे देता, अपितु और आगे बढ़ता है :-

मेरा स्वप्न ज्यों तू मंद-मंद
फूटी ऊषा जागरण-छंद,
काँपी भर निज आलोक-भार
काँपा वन, काँपा दिक्, प्रसार।
परिचय-परिचय पर खिला सकल
नभ, पृथ्वी, द्रुम कलि-किसलय-दल ।

दिव्यता और माधुर्य के अधिक गहरे तल में कवि पैठा है। परिवर्धमान यौवन के लिए नैश-स्वप्न का बिंब इसी कोटि का है। नैश स्वप्न प्रातःकालीन जागरण के छंद में परिणत हो जाता है। कवि-दृष्टि सरोज के यौवन-आगमन को भी इसी रूप में देखती है। प्रातःकालीन जागरण के गीत की भाँति लावण्य-भार से युक्त यह यौवन समूची सृष्टि से संपृक्त है। कन्या के रूप का यह सृष्टिव्यापी सौन्दर्य अंकित कर कवि ने औदात्य को अक्षुण्ण रखा है। मृत कन्या की स्मृति के आवेग से तटस्थ होकर ही ऐसा चित्रण किया जा सकता है था।

यह सौन्दर्यांकन अपूर्ण ही रह जाता, अगर कवि पुत्री के शारीरिक विकास के साथ भाव-जगत के परिवर्तन को न पकड़ता। कवि ने इस सूत्र को पकड़ा है -

क्या दृष्टि। अतल की सिक्त धार
ज्यों भोगावती उठी अपार।
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील,
पर बंधा देह के दिव्य बाँध,
छलकता दृगों से साथ-साथ।

" क्या दृष्टि " के बाद का विस्मय-बोधक विराम बड़ा ही अर्थव्यंजक और सुकुमार है - जैसे कवि शब्दों में उस स्वरूप को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। प्रसाद के द्वारा श्रद्धा के सौन्दर्यांकन में - आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम। बीच जब घिरते हों घनश्याम " ("कामायनी") में " आह " और " वह " मुख " के बाद के विराम इसी स्थिति के द्योतक हैं।

इस प्रकार भोगावती के रूप में कवि जैसे अपनी अपार अभिव्यक्ति क्षमता की व्यंजना करता है। बिंब के मांसल-वर्णन में पर्यवसान का यह अंश बढ़िया उदाहरण है।" भोगावती " प्रयोग ही अपने में अत्यन्त सार्थक है। पाताल गंगा कहने से वह बात नहीं आती। भोगावती की अपार जल-राशि अपनी सुन्दर गति से ऊपर उठती हुई जैसे पर्वत को छू लेना चाहती है। पर पृथ्वी की एक निश्चित सीमा रूपी बाँध से बँध जाने के कारण वह रुककर मंद गति से छलकने लगती है।

यौवन-काल में एक ओर चंचलता, उत्तेजना और उल्लास रहता है, दूसरी ओर अवस्था-जन्य लज्जा भावों पर अंकुश रखती है। इन दो विपरीत स्थितियों की एक साथ-अवस्थिति के सूचक यौवन को भोगावती के बिंब ने बड़ी सुकुमारता से अभिव्यक्ति दी है। बिंब और माणिक वर्णन की संपृक्त स्थिति इस रूप में देखी जा सकती है कि सरोज के तारुण्य की मन:स्थिति और अपार भोगावती की उमड़न तथा बांध का संश्लेषण हो गया है :

पर बँधा देह के दिव्य-बाँध
छलकता दृगों से साथ-साथ।

ये सारे अंश कवि की कल्पनात्मक पकड़ के बढ़िया उदाहरण हैं। सरोज (या व्यापक रूप में यौवन-काल) की सलज्ज स्थिति को, नियन्त्रित चेष्टाओं को बड़े संवेदनशील ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है। इस स्थिति को जयशंकर प्रसाद ने लज्जा के प्रसंग में विशदता और लाक्षणिकता के साथ अंकित किया है। " स्मिति बन जाती है तरल हँसी / नयनों में भर कर बाँकपना " या " छूने में हिचक देखने में / पलकें आँखों पर झुकती हैं कुछ उदाहरण हैं।

पुत्री सरोज के सन्दर्भ में " बाँध " के साथ " दिव्य " विशेषण साभिप्राय है। प्रेम कैसे छलकता है ? साथ-साथ। दृष्टि की दृढ़ता ही ऐसे शब्द-प्रयोग कर सकती है। निराला की छंद की पकड़ (संवेदना के परिप्रेक्ष्य में) कितनी चुस्त थी, यह प्रस्तुत अंश में द्रष्टव्य है। जल के टलमल करने, देह के दिव्य बाँध को बाँधने, " दृगों से साथ-साथ छलकने " की वास्तविकता को छंद की गति सजीव कर देती है। छंद गत इस पकड़ के संदर्भ में " राम की शक्ति पूजा " की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं, जिनमें भाव और छंद-गति का संश्लेषण हो गया है -

ज्योति:-प्रपात-स्वर्गीय, - ज्ञात-छवि प्रथम स्वीय ,
जानकी नयन-कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।

अंत में, सरोज की युवा मूर्ति को कवि दिवंगता पत्नी की स्मृति से संपृक्त कर देता है। पुत्री और पत्नी के कण्ठ-स्वर की संगति का अनुभव निराला का अपना है -

फूटा कैसा प्रिय कण्ठ: - स्वर
माँ की मधुरिमा व्यंजना भर।

आगे वे और अधिक आत्मीय वातावरण की सृष्टि करते हैं :-

हर पिता कण्ठ की दृप्त धार
उत्कलित रागिनी की बहार ।
बन जन्मसिद्ध गायिका तन्वि,
मेरे स्वर की रागिनी वन्हि
साकार हुई दृष्टि में सुघर,
समझा मैं क्या संस्कार प्रखर ।

दिवंगत पुत्री के प्रति अपने स्वाभाविक भावावेश को बहुत कल्पनात्मक संयम के साथ परिशमित करके ही इस तरह की पंक्तियाँ लिखी जा सकती थीं ।

आगे कवि ने विवाह-योग्य कन्या के लिए पिक-बालिका का भाव-चित्र प्रस्तुत किया है, जो मार्मिक तथा अद्वितीय है :-

जाना वह पिक-बालिका प्रथम
पाल अन्य नीड़ में कर सश्रम
होती उड़ने को, अपना स्वर
भर करती ध्वनित मौन प्रान्तर

कन्या के परायेपन की व्यंजना के लिए दूसरे पक्षी के नीड़ में पलनेवाली पिक-बालिका का भाव-चित्र कल्पना के सही उपयोग का द्योतक है ।

कवि पुत्री की छवि को फिर सामने लाता है, कुछ-कुछ पूर्वांकित - "मेरे स्वर की रागिनी-वन्हि की तरह" :

तू खिंची दृष्टि में मेरी छवि,
जागा उर में तेरा प्रिय कवि,

रचना के उत्स में प्रेयसी को अनेक कवियों ने स्थान दिया है । प्रसाद के "आँसू" में यह प्रवृत्ति मिलती है, स्वयं निराला में इस प्रवृत्ति के प्रचुर संकेत हैं, जैसे निम्न दो उदाहरणों में -

तेरे सहज रूप से रँग कर
झरे गान के मेरे निर्झर
(" प्रिया के प्रति -" "अनामिका")

+ + + +

तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान ।

(' गीतिका', गीत सं० ४४)

किन्तु पुत्री के संदर्भ में यह अंकन दृष्टि की साहसिकता और व्यापकता का प्रतीक है। " कलाकार जितना ही पूर्ण होगा, भोगने वाली और रचनेवाली मनीषा का पृथकत्व उसमें उतना ही अधिक होगा । इलियट का यह कथन निराला के अन्तर्गत ' सरोज-स्मृति ' पर जितना लागू होता है, उतना उनकी अन्य किसी कविता पर नहीं, क्योंकि इस कविता की प्रेरणा भोक्ता की अपनी तीव्र वस्तु है, पर उसे रचनेवाले की तटस्थता प्रशंसनीय है । पुत्री के प्रति यह अश्लथ दृष्टि ही आगे चलकर' तुलसीदास' काव्य की रत्नावली का इतना तेजदीप्त व्यक्तित्व प्रस्तुत कर सकती थी -

जागा, जागा, संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा वामा, वह न थी अनल-प्रतिमा वह,

' सरोज स्मृति ' में आगे का वर्णन द्रष्टव्य है :

उन्मन्न-गुम्फ सज खिला कुंज
तरु पल्लव-कलिदल पुंज-पुंज
बह चली एक अज्ञात बात
चूमती केश-मृदु नवल गात,

' बह चली एक अज्ञात बात ' में दीर्घ स्वरों की आवृत्ति से वायु के अबाध प्रवाह को मूर्त किया गया है। ' अज्ञात बात ' का प्रयोग बड़ा-ही सूक्ष्म और सुन्दर है यौवन की अस्पष्ट और सूक्ष्म भावनाओं को कला के स्तर पर उतने ही अस्पष्ट और सूक्ष्म रूप में कवि ने चित्रित किया है । संवेदना और भाषा की संपृक्त प्रकृति की पहचान ऐसे ही अंकनों में की जा सकती है । शारीरिक और मानसिक छवि के चित्रण का समापन कवि जिस ढंग से करता है, वह उसकी मर्मज्ञता और भाव की आंतरिक एकता का परिचायक है :-

देखती सकल निष्पलक नयन
तू, समझा मैं तेरा जीवन ।

ऊपरी दृष्टि से साधारण-सी प्रतीत होनेवाली, किन्तु कविता की विशिष्ट संरचना से अर्थदाम इन दो पंक्तियों के सूत्र में कवि ने यौवन के प्रति पुत्री और पिता की भावात्मक प्रतिक्रिया गूँथ दी है । सरोज अपने समस्त शारीरिक और भाव-जगत -संबंधी परिवर्तन को देख रही है, समझ रही है, और पिता " समझा मैं तेरा जीवन " के रूप में पुत्री के प्रति अपना उत्तरदायित्व महसूस करने लगा है, जिसका स्पष्ट संकेत सरोज की नानी के कथन में मिलता है -

साधु ने कहा लख एक दिवस
भैया अब नहीं हमारा बस
पालना-पोसना रहा काम
देना सरोज को धन्यधाम
शुचि वर के कर कुलीन लखकर
है काम तुम्हारा धर्मोत्तर

कवि और उसके परिवेश का तनाव पुनः आरम्भ हो जाता है । सरोज का विवाह करना है, किन्तु कान्यकुब्ज -कुल की रूढ़ियों और वैवाहिक संबंधों की कट्टरता से कवि की उन्मुक्त मान्यताएँ मेल नहीं खाती -

सोचा मन में हत बार-बार
ये कान्यकुब्ज कुल-कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या अर्थ-खेद
इस विषय-बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल ।

परिवेश के प्रति सजग दृष्टि के बिना इन पंक्तियों की अवतारणा नहीं हो सकती थी । शब्दों का विन्यास कवि के आक्रोश को उन्मुक्त अभिव्यक्ति कर देता है । " कुलांगार ", " खाकर पत्तल में करें छेद " जैसे प्रयोग व्यक्तिगत द्वेष के परिचायक नहीं हैं, अपितु समाज की गतानुगतिकता, पाखण्ड पर प्रहार करते हैं । अंतिम दो पंक्तियों का तीखापन देखने योग्य है । मानव की परिवर्तित मनोवृत्ति के अनुरूप निराला के मन में एक बार फिर समझौता का विचार उठता है - जैसे पहले

पुनर्विवाह की ओर उनका मन कुछ झुका था; किन्तु व्यक्तित्व की प्रखर चेतना उन्हें अपनी ओर खींच लेती है :-

फिर सोचा - मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह वही शोभन
होगा, मुझको, यह लोकरीति
कर दूँ पूरी, गो नहीं भीति

कुछ मुझे तोड़ते गत विचार
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूँ अक्षम, निश्चय,
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो सीमा करे पार
सौहार्द्र-बंध की, निराधार ।

भाषा की एक विशिष्ट बानगी दिखलाने के लिए यह पूरा अंश उद्धृत किया गया है । निराला ने जहाँ क्लैसिकल काव्य की परिष्कृत भाषा को उसकी पूर्ण संभावना पर पहुँचाया है, वहीं भाषा के बोलचाल के रूप को पूरे आत्म विश्वास के साथ अपनाया है । सच तो यह है कि संवेदना और भाषा की सापेक्ष प्रकृति को जितने व्यापक संदर्भ में निराला ने पहचाना है और उसके अनुरूप काव्य-रचना की है, वह आधुनिक भाव-बोध में स्पृहणीय है । यों प्रसाद का काव्य भी अनुभव और अभिव्यक्ति की संपृक्ति को प्रश्रय देने में अग्रणी है ; किन्तु वह अग्रगामिता एक विशेष स्तर की है, उसमें निराला जैसी विविधता नहीं । यह दूसरी बात है कि उस विशेष स्तर को प्रसाद ने उसकी पूरी गहराई में संस्पर्श किया है ।" सरोज-स्मृति " के इस अंश में एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में पहुँचने की जो प्रक्रिया है, वह प्रवाह की सृष्टि तो करती ही है, इसके अतिरिक्त निराला के " गत विचार को तोड़ने " के निश्चय को भी अभिव्यक्ति देती है ।" गो " के साथ भीति (" गो नहीं भीति ") का प्रयोग साभिप्राय है । " गो " ठेठ अरबी का अव्यय है," भीति " संस्कृत की भाववाची संज्ञा । इन दोनों की समीपता से जहाँ बातचीत की-सी सहजता संभव हुई है, वहीं प्राचीन भार को ढोने में अक्षम

(सूक्ष्म स्तर पर शब्दों के विशुद्ध प्रयोग की संकीर्णता के प्रति अनादर लिए) अतएव गत विचार को तोड़ने के लिए उद्यत कवि के सबल व्यक्तित्व को स्वर मिला है। जैसे यह साहसिक प्रयोग अपने में कवि की साहसी मनोवृत्ति को मूर्त करता है। अन्तिम अंतिम पंक्तियों का विपरीत व्यंग्य द्रष्टव्य है -

+ + + + निश्चय
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो रेखा करे पार
सौहार्द्र -बंध की, निराधार ।

वह विनय, वह समझौता, वह स्वीकृति, जो कूप-मण्डूकता के स्वर-में-स्वर मिलाती है, निराला को मान्य नहीं । वह निराधार है। ऐसी गतानुगतिक विनय-भावना से तथाकथित उद्धत स्वातन्त्र्य कवि के लिए अधिक वरेण्य है ।

इसके पश्चात् अपने गठन में एकदम आधुनिक और प्रयोगवादी भाषा के जिस स्रोत का प्रयोग करते हैं, वह रूढ़ियों को ठोकर लगाते हुए उनके विकासमान व्यक्तित्व की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति करता है। अपनी इन पंक्तियों के लिए 'सरोज-स्मृति' भाषा और संवेदना दोनों स्तरों पर विशेष उल्लेखनीय है -

वे जो यमुना के से कछार
पद-फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अंध,
कल घ्राण- प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह ,,

ऐसे साहसपूर्ण प्रयोगोंवाला कवि ही आगे चलकर 'कुकुरमुत्ता'

की ठेठ, देसी अकड़ को काव्य में स्थान दे सकता था । इन पंक्तियों का मिज़ाज़ बिलकुल अपने ढंग का है । इनका व्यंग्य भी निष्क्रिय न होकर कुछ कर गुजरने को आमादा निर्भीक आदमी को सामने लाता है । कान्यकुब्ज-कुल की परंपरागत सड़ी-गली मान्यताओं और असंगत आचरण के प्रति कवि का विद्रोह छायावादी उपमानों-से भिन्न ,नितान्त देसी उपमानों का प्रयोग करता है । वे पैर,जिनकी बिवाई फट चुकी है और जिनके जूते उधार खानेवालों के मुख की तरह कान्तिहीन फैले है - यहाँ तक तो गनीमत है, पर जब निराला " पिये तेल / चमरौंधे जूते से सकेल निकले जी लेते, घोर गंध" का प्रयोग करते हैं, तो एकबारगी उनकी अप्रतिम संवेदना और शिल्पगत साहस की सराहना करनी पड़ती है । शिव से गिरिजा-विवाह का द्रष्टव्य बेमिसाल है । यह बेबाक व्यंग्य और भी आश्चर्यपूर्ण तथा निर्मम लगता है, जब सरोज की मृत्यु की पृष्ठभूमि में रखकर हम इसे देखते हैं । करुणा और व्यंग्य का यह सर्जनात्मक रिश्ता," सरोज-स्मृति " की विशिष्ट उपलब्धि है, और निराला काव्य की एक मुख्य वृत्ति है । अंग्रेजी की उक्ति 'Tales of misery told in joyful style ' " गम की कहानी मज़ा ले-लेकर कहना" यहाँ मुखरित हो उठी है । करुणा के वातावरण में विनोद-व्यंग्य की इस अवतारणा से करुणा और अधिक मार्मिक हो जाती है । चमरौंधे जूते का यहाँ उल्लेख सचमुच बहुत विनोदपूर्ण है । वह एक काटते हुए व्यंग्य की सृष्टि करता है - चमरौंधा, जो भद्दे क़िस्म का देशी जूता होता है, जो बेहद कड़ा होता है और जिसे मुलायम करने के लिए तेल पिलाया जाता है । ये सारे लक्षण उस'शिव' के ऊल-जलूल व्यक्तित्व पर भी लागू होते हैं, जो निराला के आक्षेप का निशाना बना है और जिससे उन्हें अपनी गिरिजा का विवाह नहीं करना है । छायावादी काव्य के संदर्भ में इस विविध भाव-स्तरीय शिल्प की अनुपमता बिना किसी अतिरंजना के सत्य है, जिसमें सौन्दर्य, कुरूपता, करुणा और हास्य-विविध विरोधी रूपों की समाविष्टि हुई है ।

अन्त में निराला कन्या का विवाह अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप एक सत्साहित्यिक नवयुवक से करते हैं । इस विवाह को स्वयं कवि " आमूल नवल " विशेषण प्रदान करता है :

देखा विवाह आमूल नवल
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल

" कलश का जल " अपने विशिष्ट सन्दर्भ से मांगलिकवातावरण का प्रतीक है। एक बार पुन: निराला नववधु के रूप में कन्या की सूक्ष्म छवि अंकित करते हैं :-

देखती मुझे तू हँसी मंद
होठों में बिजली फँसी स्पंद
उर में भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय की अशब्द श्रृंगार -मुखर

विवाह के सामय नववधू की सुकुमार मन:स्थिति को कवि ने सुकुमार शिल्प में रूपायित किया है। कन्या के हृदय में एक स्पंदन भर कर पति की सुन्दर छवि झूलने लगी। यहाँ "झूली" के प्रयोग से उस छवि के साथ सरोज की रागात्मक लवलीनता व्यंजित होती है। साथ-ही एक गतिशील बिंब की सर्जना हुई है। वह छवि भी कैसी थी - " स्पंद उर में भर" ---- जैसे सरोज के पति का मौन श्रृंगार मुखरित हुआ हो। कुशल कवि इस अंकन को विस्तार देता है -

तू खुली एक उच्छ्वास-संग
विश्वास-स्तब्ध बँध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।

सुकुमार शब्द-विन्यास और मृदु व्यंजनों का प्रयोग वधू के मन, नयन, अधर में धीरे-धीरे स्थान बनाते विश्वास और प्रेम के भावों को स्वर देता है। यह निराला की विकसित भाषा और संवेदना है, जिसके परिणामस्वरूप वे एक ओर " जुही की कली " में उद्दाम प्रणयानुभूति को मूर्त कर सके हैं, और दूसरी ओर पुत्री के प्रीति -भाव को दिव्य संवेदन शीलता से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। श्रेष्ठ कलाकार के लिए तटस्थता को अपनाना हर प्रसंग में सार्थक होता है। निराला आगे की आठ पंक्तियों में वधू-वेश में सरोज के प्रति अपने विराट्-सुकुमार भाव को व्यक्त करते हैं।

देखा मैंने वह मूर्ति -धीति
मेरे वसंत की प्रथम गीति-
श्रृंगार रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसितधार
गाया स्वर्गीय प्रिया-संग,
भरता प्राणों में राग-रंग
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदलकर बना मही ।

बड़े दिव्य स्तर पर निराला ने कन्या का वधू रूप प्रतिष्ठित किया है । वे इस दृश्य को स्वर्गीया प्रिया की स्मृति से संपृक्त कर अपनी उदात्त मनोवृत्ति का संकेत देते हैं । सरोज रवीन्द्र के स्वरों में यहाँ न माता है न कन्या । है,वह विराट् सौन्दर्य से युक्त है । [१] निराला ने इसके लिए बड़ा कोमल और भावपूर्ण बिंब दिया है - " मेरे वसंत की प्रथम गीति-श्रृंगार", जिसे कवि ने अपनी स्वर्गीया प्रिया के साथ गाया है । इसी से संबद्ध यह अलबेला दृश्य आता है -

हो गया ब्याह आत्मीय स्वजन
कोई थे नहीं, न आमन्त्रण
था भेजा गया, विवाह-राग
भर रहा न घर निशि-दिवस जाग
प्रिय मौन एक संगीत भरा
नवजीवन के स्वर पर उतरा ।

मौन की प्रभावत्ता निशि-दिवस जाग घर भरनेवाले विवाह-राग से कहीं अधिक तीव्र और गहरी हो गई है, क्योंकि उसमें पिता के स्नेह का स्रोत उमड़ रहा है । मुखरता के बजाय मौन की उपस्थिति भी एकाकी पिता के एकान्त ममत्व की प्रतीक है ।

पूरी विह्वलता से पुत्री के जीवन-क्रम को अंकित करने के बाद निराला उसके निधन की दुःखद घटना को कुछ ही पंक्तियों में स्थान देते हैं ।

---

१) नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुंदरी रूपसी,
है नंदनवासिनी उर्वशी ।

इतनी तिक्तताओं, वर्जनाओं, प्रहारों की अभिव्यक्ति के बाद पुत्री की मृत्यु, से उत्पन्न शोकानुभूति केवल इन दो पंक्तियों में स्थान पाती है, जो कवि की गंभीर मितकथन -वृत्ति को द्योतित करती है -

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।

इस अन्तिम अंश में भावना की अनुभूतिगत तीव्रता है, जो तटस्थता के वातावरण को भंग कर देती है, पर प्रगल्भ हुए बिना -" क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।" पर इसके बाद जैसे स्नेह-कातर पिता अपने को और अधिक वश में नहीं रख पाता :

हो इसी कर्म पर वज्रपात्
यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल ।
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण ।

ऊपर- ऊपर से प्रतीत होनेवाली इस भावुक सरलता में सतत संघर्षशील कवि की विचलित मन:स्थिति और क्षोभ-भाव की व्यंजना हुई है । ईमानदारी, सिद्धान्त प्रियता, सीधेपन की पराजय के विडम्बनापूर्ण भौतिक सत्य को निराला ने उजागर किया है । वे यथार्थ की इसी गहरी चोट से पीड़ित होकर वर्तमान कर्मों पर वज्रपात् होने की कामना करते हैं और मृतकन्या का तर्पण पिछले कर्मों से करते हैं । कविता के प्रारंभिक अंश का दार्शनिक आलोक यथार्थ की इस पहचान के आगे जैसे स्तम्भ हो गया है । यह दर्शन की अधिक मानवीय और इसीलिए आध्यात्मिक परिणति है ।

(" राम की शक्ति-पूजा ")

" राम की शक्ति-पूजा " (१६३६ ई०) में मानव की अस्तित्वगत छटपटाहट और उससे उबरने के लिये उसकी सक्रिय संकल्प-शक्ति को उद्घाटित करते हुये निराला की काव्यभाषा ने जहाँ खड़ीबोली हिन्दी के इतिहास में निजी मौलिक प्रकृति तथा अप्रतिहत क्षमता के अविस्मरणीय आयामों को विकसित किया, वहीं भाषा को भावों की वाहिका के रूप में एक गौण स्थान देनेवाली, सूक्ष्म संवेदन से रहित समीक्षा-दृष्टि का प्रत्याख्यान भी किया । पूरी कविता में कहीं भी अनुभूति का कच्चापन या औदात्य का स्खलन दृष्टिगोचर नहीं होता । यह कवि की एक स्पृहणीय उपलब्धि है, और इस उपलब्धि के मर्म की पहचान तभी हो सकती है, जब " राम की शक्ति-पूजा " में भाषा के साथ गहरे स्तरों पर जुड़ी हुई कवि-संवेदना पर ध्यान दिया जाये । राम और रावण के पौराणिक आख्यान को कवि के सर्जनशील शिल्प ने अस्तित्व की टकराहट और उससे व्यक्तित्व के उत्तीर्ण होने की दिशा में जो मोड़ दिया है, वह चेतना के इतिहास को विस्तार देता है । जो संघर्ष (जिसमें सूक्ष्म स्तर पर नश्वरता की अनुभूति से आक्रांत मन और उसे अपनी विविध मानवीय क्षमताओं द्वारा आश्वस्त करने की चेष्टा का भी समावेश है) के बिना जीवन बेजान, गतिहीन-सा प्रतीत होता है (और यही तो मानवीय जीवन की विशिष्टता भी है,) वैसे ही कविता (जो दर्शन और विज्ञान की अपेक्षा जीवन के अधिक निकट, अतएव उससे अधिक आत्मीय है और जिसका कारण उसका द्वन्द्वात्मक शिल्प है) भी भावुक सरलता के बजाय द्वन्द्वात्मक शक्ति की अभ्यर्थना करती है । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि काव्य में सरलता और कोमलता जैसे गुणों को प्रश्रय नहीं मिलता । कोमलता से शून्य तो जीवन भी " जीवन " न रहकर एक अर्थहीन यात्रा रह जायगा, फिर काव्य की अवस्थिति की बात ही क्या है ? आशय यह है कि समृद्ध काव्य शक्ति-संपन्न अवश्य होता है, वरन् कहना चाहिए कि यह उसकी प्रतिनिधि विशेषता है । निराला की ओजस्वी भाषा, अपने परिपक्व गठन के बल पर तुलसीदास के भगवत्स्वरूप राम को नितान्त मानवीय बना देती है, और यह बाधा, पराजय,

आशा आदि की संश्लिष्ट अनुभूतियों की टकराहट और उनसे उत्तीर्ण होने का प्रयास करती हुई राम की लदम्य जिजीविषा है, जो उन्हें मानस " के राम से अधिक विराट् स्वरूप प्रदान करती है।

कविता का आरम्भ बड़े उदात्त ढंग से होता है -

रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर
आज का + + + + +

अपराजेय समर के वर्णन से भव्य समारम्भ ही इस बात का सूचक है कि कवि व्यापक एवं गहन संवेदना को लेकर आगे बढ़ रहा है। निराला के काव्य" तुलसीदास " में भी सांस्कृतिक सूर्य के अवसान का चित्र है -

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मंगल;-

आरम्भ से ही कवि की दृष्टि भाव और भाषा के समतोलन पर रही है, जिसकी पुष्टि" रवि हुआ अस्त " द्वारा होती है।" रवि हुआ अस्त " - मानों राम - सूर्य वंशी राम - की पराजय को स्वर देता है। कविता के मध्य में यह चित्र है :" निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण/ फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा ज्योति-हिरण ", जिसमें राम की विजय की प्रच्छन्न व्यंजना है। ये दोनों अंश कवि की संरचनागत संगति के उदाहरण हैं। निराला यहाँ संकेत देते हैं अंधकार का, निराशा का, संघर्ष के प्रगाढ़ होते रंग का। यह अस्तंगत रवि का भाव कविता में विशिष्ट स्थान बना लेता है। आगे चलकर" नैशांधकार अमा निशा "," घन अंधकार" का जो उल्लेख हुआ है उसका" रवि हुआ अस्त " की पृष्ठभूमि एक संगति प्रदान करती है। रवि तो अस्त हो गया है, किन्तु राम रावण का अपराजेय समर-मानव मन की प्रवृत्तियों का संघर्ष-अभी क़ायम है। शैली का सौन्दर्य द्रष्टव्य है -

+ + + ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर
आज का ------

अपराजेय " जो अपने उच्चारण में उस युद्ध की विराटता को ध्वनित करता है । चरणांत के साथ ही वाक्य को न समाप्त करके कवि अगले चरणों में उसका विस्तार करता है । यह प्रणाली अंग्रेजी छंद-परम्परा में एन्जैम्बमेंट " कहलाती है । छंद की यान्त्रिकता को दूर कर संभाषण -शैली जैसा प्रवाह उत्पन्न करने में कवि को इस रीति द्वारा सहायता मिली है । रह गया " क्रिया के साथ पूरा वाक्य" आज का " तक अपना विस्तार करता है ।

और अब आती है वह शब्द-योजना, जिसमें संस्कृत भाषा की संश्लेषणात्मकता का कवि ने सर्जनात्मक आवश्यकता से उत्प्रेरित होकर उपयोग किया है, जिसके लिये निराला प्रशंसा और आक्षेप दोनों के पात्र बने हैं । आक्षेप पर कुछ विचार प्रकट करने के पूर्व इतनी प्रशंसा जरूर करनी पड़ेगी कि यह पूरा बंध खड़ीबोली पर आधारित हिन्दी की काव्यभाषा के लिये निराला के काल में भी एक चुनौती था, और आज भी है । युद्ध-भूमि का सजीव चित्रण और साथ ही पराजित पक्ष की विविध प्रतिक्रियाओं की प्रौढ़ अभिव्यक्ति स्पृहणीय है। इलियट ने कहा है कि क्लैसिक का रचनाकार भाषा की सर्जनात्मक संभावनाओं को इतनी पूर्णता तक पहुँचा देता है कि वह निःशेष हो जाती है । प्रस्तुत समास-परक शब्द -योजना के विषय में यह बात बहुत कुछ तक सही है । इस बंध की आरंभिक चार पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

-- तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील नील, नील नभ गर्जित-स्वर,
प्रति-पल-परिवर्तित -व्यूह-भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,

मानों खड़ीबोली की व्यास प्रकृति के आधार पर उसमें अर्थ-गौरव की न्यूनता की शिकायत जो विद्वान करते हैं , उन्हें निराला ने प्रस्तुत कविता द्वारा आश्वस्त किया । उल्लेखनीय तो यह है कि यह समास-योजना भाषा की निजी प्रकृति से वैमनस्य नहीं रखती, जैसा कि केशवदास की "रामचन्द्रिका" में है और न ही वागाडम्बर-संपन्न और अर्थ सघनता से रहित लगती है जैसा कि

द्विवेदीयुगीन कवि हरिऔध रचित " प्रियप्रवास" के समासों में (कमलिनीकुलवल्लभ की प्रभा) या मैथिली शरण गुप्त के"साकेत"में ("उपमोचितस्तनी " जैसे प्रयोग) द्रष्टव्य है।

क्रिया-पद का लोप और समासों का प्रयोग भाषा को अद्भुत समाहार शक्ति से संपन्न करता है। " नील नभ गर्जित-स्वर " जैसे भाषा की गूँज-अनुगूँज को भी स्वर देता है। " शतशैलसम्वरणशील " में जो भयानक चित्र अनुस्यूत है, उसे शकारबहुला साकार कर देती है। सैकड़ों मालों को रोकने में समर्थ योद्धा पक्ष मानों प्रकारान्तर से काव्यभाषा की सशक्तता को भी उद्घाटित कर रहे हों। " प्रति-पल-परिवर्तित -व्यूह-भेद-कौशल-समूह " अपनी समाहार-शक्ति द्वारा एक विशाल अर्थ-राशि को अपने में समेटे हुये हैं - युद्ध कितना लोमहर्षक है, उसमें कितनी कूटनीतिज्ञता अपेक्षित है, व्यूह संरचना में प्रति पल परिवर्तन करना पड़ता है, शत्रु की प्रत्येक चाल को विफल करना पड़ता है। ध्वनियाँ आघात- प्रत्याघात से चाक्षुष दृश्य प्रस्तुत करती हैं। इन दो पंक्तियों में अर्द्ध-विराम के पहले जो शब्द है, उनमें परस्पर ध्वन्यात्मक साम्य है, जो विशिष्ट श्रुतिधर्मिता का निर्माण करता है।

" व्यूह", " समूह", " प्रत्यूह " और " हूह " की उच्चारण-समानता द्वारा एक शक्तिमय वातावरण की सृष्टि होती है। " प्रत्यूह " में " यू " पर जो बलाघात है, और उसके बाद अर्द्ध-विराम की योजना है, वह सचमुच राक्षसों के विरुद्ध वानर-सेना के अभियान को वाणी देती है। " प्रत्यूह " के पहले जो " विरुद्ध " शब्द है, वह भी अपने संदर्भानुरूप प्रयोग से प्रतिकार की व्यंजना करता है। युद्ध की भीषणता की एक झलक कपियों की चिल्लाहट में मिलती है - " क्रुद्ध कपि विषम हूह ",

यहाँ " हूह " का प्रयोग हमें कवि की विशिष्ट भाषिक दृष्टि पर कुछ सोचने को मजबूर कर देता है। इतनी विकट, तत्सम-प्रधान शब्दावली के बीच " हूह " जैसा तद्भव और ध्वन्यात्मक शब्द कवि के आत्मविश्वास का द्योतक है। कवि तत्सम प्रयोग में तो निष्णात है ही, किन्तु तद्भव की क्षमता को भी उसने नज़रअन्दाज नहीं किया है, और न ही तत्सम के इस विशाल साम्राज्य

में तद्भव को रखने में उसके आभिजात्य ने किसी प्रकार के संकोच या हीनता का अनुभव किया है। जैसे यहाँ निराला अपने समानधर्मियों को यह सीख देते प्रतीत होते हैं कि शब्द महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् संदर्भानुरूप उनका प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। तत्सम और तद्भवक की टकराहट से एक नई अर्थ-क्षमता उत्पन्न हुई है, जिसका साक्षात्कार आगे चलकर अज्ञेय और मुक्तिबोध की अनेक कविताओं के शब्द-प्रयोगों में होता है। आगे की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

विच्छुरित-वह्नि राजीवनयन हत-लक्ष्य-बाण
लोहित-लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,

यहाँ राजीवनयन राम की पराजय और उससे उत्पन्न क्रोध का चित्रण हुआ है।" विच्छुरित वह्नि " का तत्सम शब्द-प्रयोग क्रोधाग्नि की लपटों के निकलने का दृश्य साकार कर देता है।

राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,

स्थिति जितनी विषम है, उसे कवि ने उतनी ही संश्लिष्टता से रूपायित किया है। राघव विजय प्राप्ति के लिए हर तरह से प्रयत्न कर रहे हैं, पर रावण उनके हर प्रयत्न को विफल कर रहा है। इसी कार्य में दो प्रहर बीत जाते हैं। पंक्तियों का प्रवाह द्रष्टव्य है - " राघव-लाघव-रावण-वारण।" आन्तरिक ध्वनि-योजना में निराला मौलिकता का परिचय देते हैं। यहाँ " आ " के स्वर-विस्तार द्वारा लय में स्फीति आयी है। दीर्घ-स्वर का प्रयोग जैसे राघव के दीर्घ प्रयासों और रावण के दमन-चक्र को स्वर देता है।" उद्धत " और " मर्दित " अपनी वर्ण-संघटना से लंकापति की प्रचण्ड क्षमता का उद्घाटन करते हैं। इस दृश्य की परिणति राम की निराशा मनःस्थिति और क्लान्त शरीर में होती है।

अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव,
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,

यह चित्र झकझोरने वाला है। राम के परम्परागत सर्वशक्तिमान रूप को जैसे मनोवैज्ञानिक सत्य के आगे कवि ने ओझल कर दिया है। आधुनिक

संवेदना के निकट आने की जितनी सामर्थ्य इस करुण चित्र में है, उतनी भगवद्स्वरूप ,अजेय,परम्परागत राम के चित्र में नहीं । भाषिक संरचना की दृष्टि से इन पंक्तियों की विशिष्टता उनके नाद-सौन्दर्य, परुष वर्ण-योजना में तो है ही, साथ ही इनमें विरोधी शब्दों की निकट स्थिति के कारण अतिरिक्त अर्थ-समृद्धि का सन्निवेश हो गया है ।" अनिमेष" में राम की स्तब्ध दशा की व्यंजना है ।" अनिमेष राम " के बाद विराम की स्थिति भी उस संताप को अभिव्यक्ति देती है ।" विश्वजिद् दिव्य शर " में जहाँ राम के बाणों की प्रबल शक्ति की व्यंजना है, वहाँ" भंग भाव' मे उनके श्रीहत होने का भाव है । एक दूसरे के निकट आकर दोनों शब्द परस्पर टकराहट से एक गम्भीर अर्थ की गूँज उत्पन्न करते हैं, जिसमें राम के जीवन, उनके पुरुषार्थ के दो परस्पर विरोधी रूपों की व्यंजना है । एक में पराक्रम है, उत्साह है ; दूसरे में श्रीहीनता है, लाचारी है । दूसरी पंक्ति का" विद्धाङ्ग " अपनी बनावट में संयुक्त है, और कठोरता-युक्त यह संयुक्त शब्द सचमुच बिंधने की अभिव्यक्ति करता है । वस्तुत: शब्द की सत्ता उसके ध्वन्यात्मक नियोजन तथा अर्थवत्ता से अभिन्न रूप में जुड़ी है ।

" विद्धाङ्ग " की वर्ण-संघटना एक खास प्रयोजन से कवि ने की है और उस प्रयोजन में वह कृतकाम भी हुआ है । ध्वनि और शब्द को अर्थ से संपृक्त कर आर्किबाल्ड मैक्लीश ने यही बात अपने ढंग से कही है :

> It would follow that it cannot be the management of the sounds alone, which produces the enhancement of meaning ,which words in a poem gain. The meaning of the sounds are also present and cannot help but play a part.[1]

" विद्धाङ्ग " में ध्वन्यात्मक दृष्टि से संयुक्तता के कारण जो विकार उत्पन्न हुआ है, वह कैसे विषाद राम की स्थिति को ही मूर्त करता है । राम के अंगों में बाण बिंधने के कारण लेकी से रक्त बह रहा है -" विद्धाङ्ग-बद्ध

---

1. Poetry And Experience. page 26.

कोदण्ड-मुष्टि खर-रुधिर-स्राव " अर्थात विपरीत भाव का समावेश यहाँ भी द्रष्टव्य है । " बद्ध कोदण्ड-मुष्टि " का कठोर वर्ण-प्रयोग जहाँ राम की शूरता, दृढ़ता की अभिव्यक्ति देता है, वहीं विछाड़ " और " खर-रुधिर-स्राव की दीन स्थिति उस शूरता को, उस दृढ़ता को कमजोर कर देती है । निराला में विपरीत भाव के ऐसे शब्द प्रयोग उनकी भाषा-सजगता के परिचायक है ।

युद्ध-प्रसंग में अब वानर-दल की प्रतिक्रिया का चित्रण होता है -

रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-दल,
मूर्च्छित सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल,
वारित-सौमित्र-भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत-केवल-प्रबोध
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतु:-प्रहर
जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वर ।

रवि हुआ अस्त " से आरंभ हुए वाक्य की परिसमाप्ति यहाँ आकर होती है । रावण के आतंक से विकल समूची वानर-सेना के मध्य केवल हनुमान ही प्रबुद्ध है । उनके अदम्य साहस को कवि ने सशक्त भाषा द्वारा अभिव्यक्त किया है । प्रलयकालीन समुद्र के सदृश गर्जन उनके पौरुष-दीप्त व्यक्तित्व ,उनकी प्रतिरोधों से जूझने वाली दृढ़ता को प्रतिफलित करता है । चित्र का वैषम्य भाव द्रष्टव्य है : हनुमत केवल प्रबोध ,

इतने कोलाहल, इतनी आशंका के मध्य हनुमान -सूक्ष्म स्तर पर चेतना निष्कम्प है । ऐसे हनुमान उस विशाल पर्वत की भाँति प्रतीत होते थे, जिसमें से ज्वालामुखी की लपटें निकलती हों । जैसे किसी भी स्तर पर निराला की चेतना निष्क्रिय नहीं होती, प्रतिरोधों से जूझती रहती है । यह विराट् दृश्य इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप अंकित हो सका है ।

" शक्ति-पूजा " के इस आरंभिक अंश की भाषा पर आक्षेप भी हुए हैं । नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार " यह अधिक सरल और सुगुम्फित भाषा में लिखी जा सकती थी । शक्ति- पूजा के प्रारम्भ में भाषा एक ऐसी कवायद है,

जिसका समर्थन केवल यह कह कर किया जा सकता है कि हिन्दी में भी ऐसी भाषा लिखी जा सकती है ।"[1]

वस्तुत: जिसे आचार्य वाजपेयी ने क़वायद का नाम दिया है वह अर्थ की सर्जनात्मक संभावनाओं से उत्प्रेरित भाषा है । कविता की भाषा में सरलता -कठिनता का प्रश्न अप्रासंगिक है। यों बाजपेयी जी ने सरल और जटिल प्रक्रिया के अंतर को काफ़ी बारीकी से पहचाना है, जैसा कि प्रेमचन्द और मैथिली शरण गुप्त की तुलना में प्रसाद की जटिल रचना-प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है - " बड़े जीवन-चक्रों को हाथ में लेना, पेंचीदा भाव-धाराओं और सांस्कृतिक परिवर्तन के फलस्वरूप उठी हुई जटिल समस्याओं का निरूपण करना, व्यक्ति ,देश और जाति के जीवन के वृहद्-छाया आलोकों को उद्घाटित कर सकना, सारांश यह कि जीवन के गहरे और बहुमुखी घात-प्रतिघातों और विस्तृत जीवन-दशाओं में पद-पद पर आनेवाले उलझनों को चित्रित करना, उन्हें सँभालना और अपनी कला में उन सब को सजीव करना गुप्त जी और प्रेमचन्द जी की साहित्य-सीमा के बाहर है ।"[2]

अच्छा होता, अगर वे निराला की इस कविता की भी पेंचीदा भाव-धारा को समझ कर युद्ध-प्रसंग में प्रयुक्त उसके जटिल शब्द-प्रयोगों की अर्थवत्ता की व्याख्या करते । इस समूचे अंश की संश्लिष्ट शब्दावली सर्जन की मूल आवश्यकता का प्रतिफलन है । वह राम की, उनकी वानर सेना की संकुल मन:स्थिति को मूर्तिमन्त करती है । कवि यह जानता है कि युद्ध जीवन की एक विशिष्ट स्थिति है, सामान्य नहीं । उसी के अनुरूप भाषा के एक खास रूप का उसने प्रयोग किया है । अगर कवि को शाब्दिक स्वेच्छाचार या चमत्कार ही दिखाना होता, तो वह संपूर्ण कविता में भाषा का यही रूप रखता, जबकि ऐसा नहीं है । अत: आरंभिक अंश की भाषा को एक ख़ास प्रयोग का तक़ाज़ा समझना चाहिये । यह निराला की काव्यभाषा का सामान्य आदर्श नहीं है ।

---

१) कवि निराला, पृ० ११०
२) जयशंकर प्रसाद, पृ० ६

अब एक और विरोधी चित्र निराला प्रस्तुत करते हैं, जिसमें युद्धोपरान्त शिविर की ओर लौटती हुई दोनों सेनाओं की भिन्न मन:स्थितियों का अंकन हुआ है । आरम्भिक विकट समास-बंध के बाद भाषा का यह सरल प्रयोग जैसे संघर्ष के बाद उपराम का द्योतक है ।

लौटे युग दल । राक्षस पद-तल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।

और दूसरी ओर वानर सेना है ।

वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पद-चरण-चिन्ह
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न ।
प्रशमित है वातावरण नमित मुख-सांध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता पल पीछे वानर-वीर सकल ;

छंद-गति के दो रूप प्रस्तुत हैं: एक में टलमल' बिंध "विकल" जैसे कंपनशील, हल्के-फुल्के शब्दों द्वारा राक्षसों के महोल्लास " को मूर्त कर दिया गया है ; दूसरे में छंद की बोझिल गति वानर-वाहिनी की" खिन्न " मन:स्थिति को रूपायित करती है ।

स्थविर दल की उपमा पूरे वातावरण को एक वैराग्य-भाव से संयुक्त कर देती है । लक्ष्मण के लिए" नमित मुख सांध्यकमल " का विशेषण उनकी श्रीहीनता के साथ संध्या-काल की भी व्यंजना करता है । सूक्ष्म स्तर पर यह विशेषण निराशा को स्वर देता है, जिसका प्रगाढ़ अंधकार आगे राम के चित्र में छा जाता है :-

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बंध स्रस्त-तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट, हो विपर्यस्त, प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार ।

रघुनायक के नवनीत-चरण अवनी पर है । पहला ही वाक्य कोमलता और कठोरता के संघर्ष के कारण ध्यान आकृष्ट कर लेता है । यहाँ बिंबों के बल पर नहीं वरन् बिंबेतर भाषा की सृजनात्मकता के फलस्वरूप कवि ने शिथिल प्रत्यंचा वाले, परिश्रांत राम को चित्रित किया है, किन्तु इसके आगे एक विराट् बिंब के प्रयोग से राम की द्विविधा, उनकी असहायता, उनकी निराशा सब दीप्त हो उठती है । दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार (संध्याकालीन अंधकार नहीं, घन अंधकार-और संशय) की तरह राम की जटायें शरीर के विभिन्न अवयवों पर बिखर गयी है । शरीरावयवों का पृथक-पृथक् उल्लेख " फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर, वृक्ष पर " सूक्ष्म स्तर पर अस्त-व्यस्त मन:स्थिति के प्रसार को बलपूर्वक व्यंजित करता है । एक ही पंक्ति में अर्द्ध-विराम के साथ पूर्वकालिक क्रियाओं का प्रयोग वाक्य-विन्यास में रचनात्मक ढीलेपन को ध्वनित करता है और कहना न होगा कि यह छितरा-छितरा वाक्य-विन्यास राम की शारीरिक शिथिलता और मानसिक द्विविधा को ही प्रतिध्वनित करता है । वाक्य-विन्यास और संवेदना का संपृक्त संबंध भाषा के साथ गहरे स्तरों पर प्रयत्नशील रचनाकार स्थापित कर सकता है । राम के शरीर में दुर्गम पर्वत की कल्पना बड़ी विराट् है, इतना बाहुबल-संपन्न व्यक्तित्व भी अंधकार की शक्ति से समर करता हुआ पराजित हो जाता है । निराला ने सिद्धि को ही नहीं, साधनावस्था को भी उसके पूरे विस्तार में देखा था, जिसका साक्ष्य यह गुरु-गंभीर बिंब है । वह पर्वत भी कैसा है ? दुर्गम । विशेषण का प्रयोग निराला कितना सोच-समझकर कर करते हैं, यह द्रष्टव्य है । " नैशांधकार " में दीर्घ संधि पर आधारित समास घोर अंधकार के सर्वग्रासी प्रभाव को स्वर देता है । यह प्रकारान्तर से कवि के संघर्ष से जूझनेवाले मानस का ही प्रतिफलन है । इसी घोर अंधकार के मध्य प्रकाश के नाम पर दूर कहीं तारायें चमक रही हैं । राम के मयनद्वय के लिये कवि ने यह कल्पना की है । कवि की कल्पनात्मक पकड़ और मौलिक अभिव्यक्ति का यह अंश बढ़िया उदाहरण है । कहना न होगा कि यह प्रकाश उस अंधकार की सत्ता को, निराशा की अनुभूति को और प्रगाढ़ कर देता है । मानव के मन में जहाँ पराजय-जन्य-ग्लानि, अस्त-व्यस्तता, शोक है ; वहीं आशा, आकांक्षा की भी गुंजाइश है । पंत की ये कथा है :

दुस्तर आकांक्षा का बंधन ।

राम की अस्त-व्यस्त स्थिति को रूपायित करनेवाला यह खण्ड बिंब और भाषिक वर्णन की संपृक्त प्रकृति की दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसमें विपर्यस्त जटा मुकुट, हत-विहत शरीर, विपुल केशांधकार, दुर्गम पर्वत, दूर चमकती दो तारायें-सब परस्पर मिलकर (खण्ड-खण्ड नहीं) एक विराट अर्थ की सृष्टि करते हैं । इस मार्ग में बिंब का यह स्पृहणीय प्रयोग है । राम और उनकी वानर सेना के एक संक्षिप्त वर्णनात्मक दृश्य के बाद प्रकृति की भयावह पृष्ठभूमि में राम-या अधिक सूक्ष्म स्तर पर सफलता में संशय रखनेवाले मानव मात्र के मन का बड़ा प्रभावशाली चित्र निराला ने प्रस्तुत किया है, जो कविता को महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करता है ।

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार ;
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न ; केवल जलती मशाल ।

निराला की प्रतीक-योजना वस्तु-निरपेक्ष नहीं होती, जैसा कि पंत में बहुधा देखा जाता है, जो विशुद्ध जादुई दृश्य-निर्माण में सिद्धहस्त है । अंधकार का यह दिगन्तव्यापी विस्तार और प्रकाश की एक हल्की रेखा की उससे टकराहट मानवीय जीवन के सतत संघर्ष से संपृक्त है । राम के समीपवर्ती वातावरण की भयानक निस्तब्धता उनसे राम के संशयग्रस्त मानस को स्वर देती है । इसे मानवीकरण न कहकर जीवन और प्रकृति का संश्लेषण कहना अधिक संगत होगा । अमावस्या की रात्रि है, बात जितनी गंभीर है, उसे उतनी ही सहजता से कहा गया है, पर यह सहजता प्रस्तुत संदर्भ के साथ संयुक्त होकर गहरी व्यंजनाएँ उद्भूत करती है ।" है अमा निशा " में कवि ने क्रिया-पद का पहले ही प्रयोग कर दिया है । उसके बाद अर्द्ध-विराम की नियोजना भी " अमा " की भयानकता पर हमें एक क्षण रुककर सोचने को विवश कर देती है । क्रिया-पद का आरम्भ में यह प्रयोग नाटकीयता की सृष्टि करता है ।" अमा - निशा " जब सूर्य और चन्द्र का मिलन होता है और अंधकार-या कहें अव्यवस्था छा जाती है ।

यहाँ राम और रावण की शक्तियों के संघर्ष की ओर कवि प्रच्छन्न

व्यंजना करता है । आगे का पूरा अंश इसी " अमा निशा " के वातावरण के अनुरूप है । छायावादी काव्य अपने लाक्षणिक प्रयोगों के लिये प्रसिद्ध है । एक बढ़िया लाक्षणिक प्रयोग कवि ने " उगलता गगन घन अंधकार " के रूप में किया है । गगन मानों दैत्य है, जो गहन अंधकार उगल रहा है । निराला की भाषा-विशिष्टता उनके संज्ञा-रूपों में ही नहीं, उनके क्रिया-गत प्रयोगों में भी है, जिसका एक स्पृहणीय रूप " उगलता " में द्रष्टव्य है । " उगलता " भयावह बिंब की सृष्टि करता है, जैसे गगन (दैत्याकार) तक भयानक अंधकार को सहन नहीं कर पा रहा, वमन-क्रिया के द्वारा अपने दौर्घ से उसका निरसन कर रहा है । ऐसे घन अंधकार (जिसे कालिदास ने सुकुमार अर्थ में सूचीभेद्य अंधकार कहा है) के आगमन से पृथ्वी की क्या दशा होगी ? " खो रहा दिशा का ज्ञान " में कर्तृवाच्य का लोप जैसे ध्वनित करता है कि सब कुछ अस्तित्वहीन होता जा रहा है । पवन का संचरण बंद हो गया है, मानों प्रकृति भी विकंपित हो गयी है । स्तब्ध है पवन चार " - " स्तब्ध " में जो अर्थ-शक्ति है, उसका स्थान अन्य कोई पर्याय नहीं ले सकता था । नाश के इन भयानक प्रतीकों के साथ विशाल समुद्र का गर्जन वातावरण को अतिरिक्त भयानकता प्रदान करता है :-

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल

अप्रतिहत गर्जन । " भयानकता में कहीं विराम को स्थान नहीं, उसका चक्र अबाध चलता रहता है । इतने कुचक्रों के मध्य भूधर के लिए ध्यानस्थ योगी का रूपक जैसे मन को खिलखिलाहट से भर देता है । सन्नाटा और भास्वर हो उठता है ।

इस ध्यान-मग्न भूधर के विरोध में जलती मशाल की प्रखर चेतना अर्थ की अनेक छायाएं उद्भूत करती हैं । " उगलता " के अर्थगत विश्लेषण में कहा गया था कि घन अंधकार को सहन न करने के कारण आकाश उसे पृथ्वी पर उगल दे रहा है । जिस अंधकार का बोझ दैत्य रूप, कभी गगन नहीं उठा पाया, उसका सामना एक जलती मशाल कर रही है । उसने भय के कारण अपना कर्तव्य नहीं छोड़ा, क्योंकि दिशा का ज्ञान लुप्त हो चुका है, पवन संचरण रुक गया है । जिस कवि ने प्रारम्भ में "अंधकार घन " अंधकार की क्रीड़ा का आगार " वाले बादल

का चित्र खींचा था, वही एक जलती मशाल में इतनी अदम्य चेष्टा निहित कर सकता था । यह दूसरी बात है कि 'केवल जलती मशाल' का यह चित्र अंधकार के भाव को और गहरा कर देता है, जैसे पंत जी की पंक्ति है :

> झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
> संध्या प्रशान्ति को कर गंभीर । ("एक तारा")

जहाँ गहन नीरवता में झींगुर का स्वर विरोध में आकर उस नीरवता को अधिक सघन कर देता है । फिर निराला की उपर्युक्त चार पंक्तियों के अन्त्यानुप्रास "अंधकार", "चार", "विशाल" और "मशाल" जैसे अपने स्वर-विस्तार से इस अंधकारमय वातावरण की गंभीरता को और सांद्र बना देते हैं ।

यहाँ विध्वंस के इतने विराट् रूपों की तुलना में एक मशाल की किरण भी अर्थगर्भी है, जैसे इतने दिगन्तव्यापी अंधकार में रावण की आतंकपूर्ण सत्ता निहित हो, और छोटी-सी मशाल के लघु बिंब में राम की उस समय दीन, किन्तु अपने विवेक से आलोकित मन:स्थिति को स्वर मिला हो । तमस शक्तियों के आतंक का निराला ने बड़ी गहराई में अनुभव किया था, जिसका प्रमाण कवि-प्रयुक्त तामसिक शक्तियों के विराट् बिंब है । सघन अंधकार और उसमें क्षीण प्रकाश का उल्लेख राम के शरीर की दुर्गम पर्वत से उपमा के प्रसंग में भी आया है । अन्यायकता के विस्तार में न्याय की क्षीण सत्ता को ये प्रतीक अभिव्यक्ति देते है । आगे राम के मन की क्रिया को कवि ने कुशलता से रूपायित किया है :

> स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
> रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय,
> जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त,
> एक भी अयुत लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
> कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
> असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार,

एक और मनुष्य में आत्मविश्वास निहित होता है, दूसरी ओर संशय । इन दोनों की टकराहट इस कविता में निराला ने प्रस्तुत की है । ध्वनियों के विरल प्रयोग जैसे मन:स्थिति की क्रिया, आकुलता का गति-चित्र निर्मित कर

देते हैं। राम के पूर्वविजयी "दुराक्रान्त रूप के विरोध में आकर यह" असमर्थ मानता मन उधत हो हार हार " प्रयोग भावक के मन में एक विशिष्ट सहानुभूति और पीड़ा का भाव उद्बुद्ध करता है। इसके बाद नाटकीय फ्लैश-बैक पद्धति से 'निराला रचना को स्मृत्याभास कल्पना की ओर मोड़ते हैं, जिसमें राम के संशय-ग्रस्त मानस में सीता का चित्र उभरता है। कष्ट में स्वजनों की स्मृति मनोविज्ञानिक सत्य है, लेकिन यहाँ तो विशिष्टता यह है कि प्रकृति और मानव-हृदय के मादन-भाव को अंकित करनेवाला यह चित्र पूर्ववर्ती युद्ध और उसकी भयानकता के विरोध में और भी सजीव हो उठता है। जनक-वाटिका में राम और सीता के लतांतराल मिलन में चराचर प्रकृति भाग लेती है :-

नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण
पलकों का-नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन
काँपते हुए किसलय-झरते पराग-समुदय,
गाते-खग-नवजीवन-परिचय, तरु-मलय-वलय,
ज्योति-प्रपात-स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

अपनी काव्यभाषा में निराला भयानक और कोमल दोनों के चित्रण में समान और सहज रूप से चला है। मृदु शब्दों की मैत्री और लय की अनुरंजकता एक सुखकर वातावरण की सृष्टि करती है। परस्पर दृष्टिपात की कोमल स्थिति को कवि ने बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया है। राम और सीता के इस प्रथम, किन्तु आत्मीय दृष्टिपात पर प्रकृति भी निरपेक्ष नहीं रहती। मनु और श्रद्धा के मिलन में भी प्रकृति वैसी ही मादन भावनाओं से संपृक्त हो जाती है :-

मधु बरसती विधु किरण है काँपती सुकुमार,
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु-भार,
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण ?
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण ?

(" कामायनी" , पृष्ठ ६७)

निराला के लतांतराल मिलन के चित्र - किसलयों के काँपने, पराग-समुदाय के भरने - में सांकेतिक रूप में राम और सीता का विविध क्रियाओं प्रतिक्रियाओं को व्यंजित किया गया है। " भरते पराग समुदय " में भरना प्रयोग एक चाक्षुष बिंब की सृष्टि करता है। " गाते खग नव जीवन -परिचय " में जो प्रेममय उल्लास है, जीवनाकांक्षा है, वह अंधकार की गहन पृष्ठभूमि के विरोध में बड़ी भास्वर, पर कोमल प्रतीत होती है। कवि का स्वनिर्मित यह " शक्ति पूजा " छन्द अपनी प्रकृति में इतना गत्यात्मक है कि भयानक और सुकुमार दोनों वातावरणों की तदनुरूप व्यंजना करता है। ये दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

ज्योति:-प्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।

जानकी के नयनों का प्रथम गतिशील कंपन (यहाँ श्रृंगारभाव की कितनी सुन्दर सांकेतिक व्यंजना है) जैसे छंद की गति से भी अपना समीकरण कर लेता है। ज्योति : प्रपात- स्वर्गीय जैसा प्रयोग सारे दृश्य को दिव्य स्तर पर पहुँचा देता है। स्वर्गीय (उदात्तता की व्यंजना है) प्रकाश का स्रोत जैसे उस छवि में फूट पड़ा हो। इतना संयमित और गहनतम भावुकता से मुक्त (जबकि स्मृति-चित्र में इसकी संभावना की जा सकती थी।) श्रृंगार-चित्र निराला जैसा केवल कलाकार ही प्रस्तुत कर सकता था।

इस मिलन-चित्र के पश्चात् राम की वर्तमान क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से मानव-मन में एक काल में ही उठते विरोधी भावों का चित्र प्रस्तुत करके निराला ने संश्लिष्ट भावलोक की एक रागमाला तैयार की है :

सिहरा तन,क्षणभूला मन,लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय -भावना हृदय में आई भर,

यहाँ शब्दावली का हल्का क्रम आशंका से विरहित, विजय भावना से संपन्न राम की किंचित् मुक्त स्थिति को व्यंजित करता है। अपनी विजय-भावना में (जो वस्तुतः सीता की " कुमारिका-छवि " की स्मृति से राम के द्विविधा-ग्रस्त

मानस में उत्पन्न हुई थी) वे भयानक रजनीचरों को शलभ की भाँति जलते देखते हैं। इस उत्साह-भाव को देवी का अतिप्राकृतिक शक्ति किस प्रकार मलिन कर देती है, यह द्रष्टव्य है :

फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुये सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझ कर हुये क्षीण
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन।
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन,
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।

देवी-रूप की यह विराटता और प्रचण्डता जितनी दर्शनीय है, उतनी ही राम के इस बाणों की श्री-हीनता भी। सूक्ष्म स्तर पर अतिप्राकृतिक शक्ति से जूझते हुए मानव का चित्र सामने आ जाता है। " अतुल-बल शेष-शयन " के साथ " लख शंकाकुल हो गये " का प्रयोग दो विपरीत स्थितियों की व्यंजना करता है। बाद की पंक्ति " खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन " का काव्यात्मक सौन्दर्य अनुपम है। जैसे सीता के राममय नयन " राम के मन में निहित आशंका और उद्वेग के भावों को चुनौती दे रहे हों, जैसे देवी की संपूर्ण अतिप्राकृतिक शक्ति के मुकाबले में मानवीय प्रेम की सशक्तता के रूप में सीता के राममय नयन खड़े हों। निराला के अनेक प्रयोगों में सांस्कृतिक संदर्भ विशदता से निहित है। यहाँ राममय नयन भारतीय नारी की निष्ठा, साधना, समर्पण और स्नेह को ध्वनित करता है। इसी प्रसंग में " बादल राग " की वे पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं, जिनमें " पुलकित " शब्द का प्रयोग कुछ इसी प्रकार की अर्थ-छायायें उद्भूत करता है :

उस अरण्य में बैठी प्रिया-अधीर
कितने पुलकित दिन अब तक है व्यर्थ -

" राममय नयन " अपने पटल में सजीव करता है सीता के उन नैनों को, जिनमें सदा राम का संपूर्ण व्यक्तित्व छाया रहता है। " खिंच गये " क्रिया पद में एक बाँकिम सौन्दर्य है, जो साकार चित्र की याद दिला देता है।

तीसरी और ठीक इसकी विरोधी प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है :

फिर सुना- हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।

सारी मन:स्थिति की परिसमाप्ति इन दो मुक्ता-दलों के गिरने में होती है । यहाँ मितकथन का रूप है । इतने तीखे भावावेग के बीच दो आँसू गिरते हैं । रावण के " खल-खल " अट्टहास के सन्दर्भ में इन दो मुक्ता-दलों के गिरने का चित्र विपरीत-भाव की सृष्टि करता है ।

अंधकार के अट्टहास -रूप में मृत्यु की कल्पना प्रसाद ने की है :
अंधकार के अट्टहास -सी "

निराला के " अट्टहास " के प्रयोग में एक अजीब खौफनाक -सा भाव निहित है ।

" फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल -वाक्य-विन्यास की नवीनता यहाँ देखी जा सकती है । कवि नादानुरंजित ध्वनियों के अर्थ की बारीकी बराबर ध्यान में रखता है ।" खल-खल ध्वनि का रावण की तामसिक शक्ति के प्रसंग में बड़ा-ही सार्थक प्रयोग हुआ है । इस " खल-खल " के विरोध में दूसरी पंक्ति आती है :

" भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।" " खलखल " और " मुक्ता-दल " छंद की दो तुकें नहीं हैं, उनमें मानव-जीवन के दो परस्पर विरोधी दृश्य अपने पूरे विस्तार में अंकित हैं । फिर " मुक्तादल " के पूर्व " सजल " की जो आंतरिक तुक है, वह ध्वन्यात्मक वातावरण को भावात्मक वातावरण से पूरी तरह जोड़ देती है । शब्द, ध्वनियाँ और अर्थ - सब परस्पर संश्लिष्ट हो गये हैं ।

इसके बाद एक दूसरा दृश्य सामने आ जाता है, जो शक्ति-पूजक निराला की मन:स्थिति से सर्वथा अनुरूप है । राम के अनन्य सेवक हनुमान के विविध कृत्यों के माध्यम से कवि ने जैसे पराक्रम चेतना को उद्बुद्ध करने की चेष्टा की हो । राम के ब्रह्मत्व की जो परिकल्पना हनुमान " पूर्ण वज्र-माहित्व के रूप, गुणगणना अभिव में करते हैं, वह वस्तुत: उनके आगामी शौर्य-भाव के उत्तेजन के लिये है । वहीं जब हनुमान जब राम के अश्रुओं पर किंचित् गंभीर ढंग से विचार करते हैं, तो उनके अन्दर विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है ।

ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा-शक्ति-खेल सागर अपार,
हो श्वसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल",

"ये अश्रु राम के" पर भावित नयनों से सजलगिरि दो मुक्ता-दल से मिलाकर विचार किया जाए तो इन दो मुक्ता-दलों के उल्लेख में विलक्षण की महत्वपूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जायगी। राम भी नितान्त मानवीय होकर रो सकते हैं, इसका भान हनुमान को होता है। यहीं से निराला की काव्यभाषा फिर सक्रिय चेष्टाओं से भर उठती है, क्योंकि उसे दुर्धर्ष शक्ति का अंकन करना है। "सागर अपार" का स्वर-विस्तार विराट् भाव की व्यंजना करता है। छंद की गतिशीलता में वृद्धि हो जाती है :

शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बंध-प्रतिसंध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष
शत-वायुवेग-बल डुबा अतल में देश-भाव
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेज घन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादशरुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

उक्त संरचना के साथ वाक्य के इतने विशाल विस्तार की संभावना इसी कवि की ही विशिष्टता है। पूरे बंध में एक भयावह बिंब की सर्जना हुई है। प्रकृति की विराट् पृष्ठभूमि में उद्वेलन, कोलाहल का यह चित्र भी निराला की ही अप्रतिहत कल्पना, शक्ति, अस्खलित सर्जनात्मक ऊर्जा को ध्वनित करता है। हनुमान का आकाश-गमन और प्रकृति में विक्षोभ-दोनों का भाषा की क्षमता द्वारा संश्लेषण हो गया है। अत्यन्त उदात्त तरंगों की भंगिमाओं से सागर का विक्षोभ ही नहीं, हनुमान का विक्षोभ भी व्यंजित हो रहा है। उदात्त काव्य-भाषा ही इस प्रकार की संश्लिष्ट ध्वनियों को प्रस्तुत करती है।" जल-राशि

राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़ ' का स्वर-विस्तार सचमुच लहरों के उठने-गिरने का एक गति-चित्र निर्मित कर देता है । सागर अपनी मर्यादा को छोड़कर अपना विस्तार करता ही जा रहा है ।

' तोड़ता बंध प्रतिसंध धरा, हो स्फीत वक्ष। दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष '

एक पंक्ति को तोड़कर दूसरी पंक्ति में पहुँचने की प्रक्रिया जैसे सागर या हनुमान-सूक्ष्म स्तर पर मानवीय जिजीविषा-की दिग्विजय कामना, सीमा-हीन विस्तार की आकांक्षा को व्यंजित करती है । वाग्धारा की स्फीतता द्रष्टव्य है । पुराने ढंग के अनुप्रास आदि के स्थान पर (जिनमें अर्थ-समृद्धि की अपेक्षाकृत कम गुंजाइश रहती थी) कविता की आंतरिक ध्वनि-व्यवस्था में एक अनुरूपता छायावादी कवियों ने प्रस्तुत की । निराला में यह प्रवृत्ति विशिष्ट रूप से द्रष्टव्य है । शब्दावली कहीं स्खलन की गुंजाइश ही नहीं रखती । उनचास पर्वतों के बल की समाविष्टि, देश भाव की समाप्ति (सीमाओं का परित्याग) विपुल जलराशि का मंथन- सभी कुछ तो सजीव हो उठा है - जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव/ वज्रांग तेज घन बना पवन को महाकाश / पहुँचा , एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास । पंक्ति को तोड़ देने से ' महाकाश ' और ' पहुँचा ' दोनों पर ही बल पड़ता है ।

इस प्रक्रिया से जैसे सचमुच महाकाश में पहुँचने का चित्र सजीव हो उठा है, साथ ही इस ऊर्ध्व यात्रा में वज्रांग हनुमान के मन में क्षोभ, उत्साह, औद्धत्य और पौरुष के जो भाव हैं, वे भी पंक्तियों की इस अयाचित्त्व गति से व्यंजित हो जाते हैं ।

और अब विषम स्थिति आ जाती है । एक ओर शक्ति-रक्षित रावण की महिमा है, दूसरी ओर हनुमान है, जिन्हें शिव-रक्षित अपने आराध्य राम का बल प्राप्त है । हनुमान द्वारा आकाश को ग्रसित करने के अटल प्रयत्न पर शिव विचलित हो उठते हैं :

करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल हुए क्षण भर चंचल,

अंचल और चंचल " का विरोध द्रष्टव्य है । शिव अपनी शक्ति पार्वती को इस प्रकार प्रबोधित करते हैं :

श्यामा के पदतल भार धरणा हर मन्द स्वर
बोले सम्वरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह - नहीं हुआ शृंगार-युग्मगत, महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान् अक्षय-शरीर,
चिर ब्रह्मचर्य रत, ये एकादश रुद्र, धन्य,
मर्यादा पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
लीला सहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,
विद्या का लै आश्रय इसको दो प्रबोध
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध। "

स्पष्ट है कि निराला की दिव्यता कहीं स्खलित नहीं होती । उन्होंने तप: पूत, संयमी हनुमान का जो चित्र खींचा है, वह इस बात का द्योतक है कि आत्मिक बल के आगे अति-प्राकृतिक शक्ति को झुकना ही पड़ता है --- इन पर प्रहार करने पर होगी, देवि, तुम्हारी विषम हार ",

कवि इस सम्पूर्ण प्रसंग में तनाव का परिशमन शक्ति के अंजना रूप की अवतारणा द्वारा करता है । निराला की भाषा की एक और घरेलू ढंग की बानगी देखने के लिये अंजना रूप में उदित शक्ति के प्रबोधन का कुछ अंश उद्धृत करने का लोभ संवरित नहीं किया जा सकता :

बोली माता" तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें रहे बालक केवल
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह ।

हनुमान प्रसंग के बाद कवि पुन: राम और उनके शिविर की ओर लौट आता है । वहां किंकर्तव्य अवसाद-ग्रस्त राम को इस पराजय-भाव

से ऊपर उठाना चाहते हैं । इस प्रसंग में वे जिस भाषा-शैली का प्रयोग करते हैं वह भी भाषा का स्वच्छ, निखरा, प्रवाहमय रूप खड़ा करती है । कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

रघुवीर, तीर सब वही तूण में हैं रक्षित,
है वही वक्ष, रण कुशल हस्त, बल वही अमित,
हैं वही सुमित्रानन्दन ,मेघनाद-जित-रण,
है वही भल्ल पति, वानरेन्द्र सुग्रीव प्रमन,

' वही ' की आवृत्ति साभिप्राय है । राम के हतोत्साह मानस को साधनों की परिपूर्णता की जानकारी से पुनः जाग्रत करने की चेष्टा इसमें सन्निहित है । दो परस्पर-विरोधी चित्र प्रस्तुत करके राम के मानस को सक्रिय करने का कौशल द्रष्टव्य है।

' कितना श्रम हुआ व्यर्थ आया जब मिलन समय,
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय ।
रावण, रावण लम्पट, खल कल्मष गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पाद-प्रहार,
बैठा उपवन में देगा दुख सीता को फिर,
कहता रण की जय-कथा पारिषद्-दल से घिर,
सुनता वसंत में, उपवन में, कल-कूजित पिक,
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक् राघव धिक् धिक् ।'

यहाँ निराला ने परम्परागत प्रसंग को एक नया मोड़ दिया है, जो अभिव्यक्ति -कौशल के कारण बड़ा भास्वर हो गया है । दूसरे ,सारे उद्बोधन की समाप्ति मैं बना किन्तु लंकापति धिक्, राघव, धिक्-धिक् ' में होती है, जो रावण की परिकल्पित जय-कथा के विरोध में अत्यन्त नाटकीय है ।

किन्तु इस सारी नाटकीयता और प्रभावकता को पीछे करते हुये राम की गतिहीन-स्थिति सामने आ जाती है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साधनावस्था के काव्य में विविध विरोधी स्थितियों के समावेश की बात कही थी ।

" विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्म-क्षेत्र का सौन्दर्य है ।[१] निराला की रचना-प्रक्रिया इस कविता में विरोध को अनेक रूपों में प्रस्तुत करती है । मनःस्थितियों का विरोध, ध्वनियों और शब्दों का विरोध और इनकी सम्मिलित टकराहट से एक वृहत्तर अर्थ-सृष्टि संभव होती है । विभीषण के ओजस्वी उद्बोधन से असंपृक्त राम की दशा का अंकन यों हुआ है :

> सब सभा रही निस्तब्ध ; राम के स्तिमित नयन
> छोड़ते हुए, शीतल प्रकाश देखते विमन,
> जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
> उससे न इन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव
> ज्यों हों वे शब्दमात्र-मैत्री की समनुरक्ति
> पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति ।

विभीषण के ओजस्वी शब्दों का राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । राम के स्थिर नेत्र केवल शीतल प्रकाश छोड़ रहे हैं, वह प्रकाश जिसमें जीवन नहीं, तीव्रता नहीं, उष्णता नहीं । " शीतल " की व्यंजना द्रष्टव्य है । " स्तिमित " में नेत्रों की शुष्कता, स्तब्धता, शून्यता का भाव है । उन शब्दों से राम को कुछ लेना-देना नहीं है । बड़े सुन्दर, अमूर्त बिम्ब के माध्यम से कवि ने विभीषण के शब्दों की प्रभावशून्यता को व्यक्त किया है । वे शब्द " शब्दमात्र " हैं-बहु,अर्थ से असंपृक्त । उनमें वह सामर्थ्य नहीं है कि अभीष्ट अर्थ को व्यंजित कर सके । जैसे निराला इस बिम्ब के माध्यम से अर्थ को अनावश्यक समझ कर केवल शब्द पर विचार करनेवाले नये समीक्षकों का प्रत्याख्यान करते हों । सचमुच ऐसा ही कवि अर्थ-गौरवपूर्ण भाषा की सृष्टि कर सकता था, जिसने ' गहन-भाव के ग्रहण की शक्ति " को बारीकी से समझा था ।

इसके बाद रुद्धकण्ठ राम जब ' अन्याय जिधर है उधर शक्ति " की बात कहते हैं, तो रचना की प्रासंगिकता बहुत स्पष्ट रूप से उभर आती है - जैसे निराला स्वयं राम के माध्यम से अपने युग के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठा

---

१) चिन्तामणि, पृष्ठ [illegible] ।

रहे हों । इस विडम्बना की सामूहिक प्रतिक्रिया को उन्होंने बड़े सामान्य से प्रतीत होनेवाले शब्दों में जिस लाघव और चित्रात्मकता के साथ समेटा है, वह उनके भाषाधिकार की सूचक है :

> रुक गया कण्ठ, चमका लक्ष्मण-तेज : प्रचण्ड
> धँस गया धरा में कपि गह युग पद, मसक दण्ड,
> स्थिर जाम्बवान-समझते हुए ज्यों सकल भाव,
> व्याकुल सुग्रीव-हुआ उर में ज्यों विषम घाव,
> निश्चित-सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम,
> मौन में रहा यों स्पंदित वातावरण विषम ।

ऊपर के अनुक्रम भाषा कितने रूप ग्रहण करती है, हम यह निराला से सीख सकते हैं । न कोई बिम्ब, न कोई प्रसाधन, इसके बावजूद शब्द-प्रयोग की अनुरूपता के कारण हर अनुभव, हर दृश्य ईमानदारी से रूपायित होता है । अंतिम पंक्ति पूरे भाव को एक नाटकीय मोड़ दे देती है । सारी प्रतिक्रियाओं की परिणति मौन में होती है । इसको कितने लाक्षणिक ढंग से कहा गया है - " विषम वातावरण मौन में स्पंदित हो रहा है " । यहाँ मौन की अवस्थिति मुखरता की तुलना में अधिक तीव्र और अर्थ-धाम हो गयी है ।" मौन में स्पंदित क्रिया का प्रयोग बड़ा-ही सुकुमार प्रतीत होता है । निराला की मँजी हुई काव्यभाषा एक ओर जल तथा वायु की असंयमित क्रीड़ा को मूर्त करती है, दूसरी ओर छोटे -छोटे प्रतीत होनेवाले (पर वास्तव में बड़े सूक्ष्म) मनोवैज्ञानिक तथ्यों को समेटती चलती है, जिनका उदाहरण क्रमश: " शत घूर्णावर्त , तरंग-भंग उठते पहाड़ और " मौन में रहा यों स्पंदित वातावरण विषम " है ।

आगे राम अपने मानसिक विक्षोभ को स्वर देते हैं । जिन दिव्य अस्त्रों पर उन्हें गर्व था, जो संस्कृति के प्रतीक थे, संयम से रक्षित थे, वे हर रावण द्वारा कीलित कर दिये गये । राम ने इस अंतर्द्वन्द्व को बड़े तीखे रूप में कवि ने अभिव्यक्त किया है, जिसके मूल में मानवीय जीवन की विडम्बना है । महाशक्ति का रावण के प्रति पक्षपात राम को आन्दोलित कर देता है :

देखा, हैं महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,

प्रस्तुत उपमा रावण की कलंकी प्रकृति को व्यंजित करती है। देवी की सारी चतुराई और कार्य-कलाप के प्रति राम की प्रतिक्रिया को कवि ने शब्दों में बड़ी मजबूती से बाँधा है :

विचलित लख कपिदल क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों
पश्चात् देखने लगीं मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त।

अन्तिम दो पंक्तियों में पाँच क्रियाओं के प्रयोग द्वारा भय-ग्रस्त राम का चित्र खींचा गया है। " मुक्त ज्यों बँधा " की अर्थ-विपरीतता में जो विवशता है, वह दर्शनीय है। कविता की रचना में विविध स्तरीय समाषणा-शैली पर निराला का कितना अधिकार रहा है, उसका प्रमाण " राम की शक्ति-पूजा" है।

इस सारी निराशा, उद्वेग, संशय को उन्मूलित करते हुये जाम्बवान घटना-क्रम को एक गतिशील मोड़ देते हैं। वे शक्ति की उपासना करके सिद्ध प्राप्त करने की बात कहते हैं। उनकी यह सूक्ति अपनी अर्थवत्ता से पूरी कविता में अन्त-र्व्याप्त रहती है -

" आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर -

निराला जैसा पौरुषजीवी कवि निष्क्रिय प्रतिरोध, गतिशील अहिंसा को स्वीकार नहीं कर सकता। अंग्रेजों के शासन में पराधीन, तत्कालीन भारतीय जन-मानस के लिये यह उद्बोधन जितना प्रासंगिक था, उतना ही आज भी है। सच तो यह है कि श्रेष्ठ कवितायें अपनी मार्मिक संरचना से देशकाल तक सीमित न रहकर सार्वभौम अर्थ की व्यंजना करती हैं।" शक्ति की करो मौलिक कल्पना " में कवि निराला हिन्दी की अपनी प्रकृति को घोषित करते हैं। पुनर्जागरण काल में हिन्दी प्रदेश की - मध्य देश की - यह अपनी विशिष्टता है, देन है।

निराला अपनी कविता " राम की शक्ति पूजा " में अपनी सर्जन शक्ति की मौलिकता को स्वर देते हैं । वह शक्ति, जिसका उल्लेख निराला ने " आवाहन " जैसी कविता में किया है, अनुकरण से निर्मित नहीं होती, उसके लिये मौलिक चिंतन और कल्पना अपेक्षित है । शक्ति स्वत: अर्जित की जाती है । प्रसाद की श्रद्धा का उद्बोधन इस प्रसंग में देखा जा सकता है :

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय । (" कामायनी ")

शक्ति के इस आवाहन के लिये कृतसंकल्प राम प्रकृति-जगत में जिस विराट् पार्वती रूप की कल्पना करते हैं, वह दर्शनीय है । यह वस्तुत: शक्ति के प्रति निराला की अपनी एकात्मकता का प्रतिफलन है :

देखो, बंधुवर ,सामने स्थित जो यह भूधर,
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरंद-बिन्दु,
गरजता चरण -प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु,
दशदिश समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर,

यह एक प्रकार की ऊर्ध्व स्थिति है, जिसमें मन सर्वत्र उस परम सत्य को ही साक्षात्कार करता है । इस सम्पूर्ण चित्र को ये दो पंक्तियाँ उदात्तता से परिपूर्ण कर देती हैं :

उस महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व,
मानव के मन का असुर मंद, हो रहा खर्व ।

वैसे यह सारी शक्ति-विषयक कल्पना और उसकी उपासना मन के उन्नयन के लिये ही संपन्न हुई थी । उत्साह-पूरित राम सिद्धि के लिये दुर्गा का नवाधिवासीय जप प्रारम्भ करते हैं । उस पूरी स्थिति का एक विशद चित्र निराला की भाषा खींचती है :

आठवाँ दिवस मन ध्यान-युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर, का स्तर
हो गया विजित ब्रह्मांड पूर्ण, देवता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के, तप के समारब्ध,

ऊर्ध्व-संचरण की स्थिति के चित्रण में निराला कितने सिद्धहस्त हैं, यह द्रष्टव्य है। इस सारी साधना की नाटकीय परिणति नवें और अन्तिम दिवस के उस क्षण में होती है, जब साधक राम की परीक्षा के लिए दुर्गा पूजा का सुरक्षित कमल उठा ले जाती है। इस अतिप्राकृत दृश्य को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण करना चाहिये। बड़े उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मनुष्य को विघ्न-बाधाओं के पथ से गुजरना पड़ता है, अनेक बलिदान देने होते हैं। राम की इस हतप्रभ मन: -स्थिति में जैसे जीवन की असहायता, कातरता ध्वनित हो उठती है। राम कहते हैं -

"धिक्‌जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक्‌ साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध।
जानकी, हाय, उद्धार, प्रिया का न हो सका।"

राम की निराशा में निराला का अपना जीवन-जैसे कि भारत का सामूहिक जीवन-भी मुखरित हो उठा है: वह जीवन जिसे सदा ही बीहड़ रास्तों से गुजरना पड़ा। निराला का यह व्यक्तित्व शक्ति संपन्न, पर कारुणिक है।

कवि की अन्य कविताओं की अनेक पंक्तियाँ इस भाव-भूमि को व्यक्त करती हैं: "बह रही है हृदय पर केवल अमा (" स्नेह-निर्झर बह गया है"), मेरा अंतर वज्र-कठोर। देना जी भरसक झकझोर। मेरे दु:ख की गहन अंधतम। निशि न कभी हो भोर (" उत्साह")। और सब से बढ़कर" सरोज-स्मृति" के दात-विदात पिता की करुण वाणी याद आती है:" दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही।" चाहे राम हों, या तुलसीदास, निराला का व्यक्ति उनसे तादात्म्य कर लेता है। यह अंतर्मुखी स्वर कविता को कोरी बौद्धिकता से बचाकर अनुभव के निकट ले जाता है। राम की वेदना के मूल में केंद्रीय भाव यह है कि परम लक्ष्य उन्होंने पाया ही नहीं। कविता की अनेक अर्थ-स्तरीय भाषा स्वाधीनता-संग्राम के देशभक्त योद्धा की पीड़ा से भी उपर्युक्त पंक्तियों को संपृक्त कर देती है। उस अर्थ में जानकी परम्परागत सीता न रहकर भारतमाता का प्रतीक बन जाती है। पौराणिक

मिथक को सर्जनशील भाषा आधुनिक संवेदना के निकट ले जाती है । इस दृष्टि से द्विवेदीयुगीन और छायावादयुगीन कृतित्व की पौराणिक संवेदना का अन्तर उनकी भाषा की विविधस्तरीय सर्जनात्मकता का अंतर है ।

राम की साधनादीप्त बुद्धि उन्हें इस निराशा से उबरने की प्रेरणा देती है :

वह एक और मन रहा राम का जो न थका
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन ।

" दैन्य " और " विनय " की कमजोर भावनाओं से पौरुष को हानि पहुँचने की सम्भावना को निराला ने गहराई में महसूस की थी । यह उल्लेखनीय है कि जिस विद्युत गति से राम का मन बुद्धि के दुर्ग में पहुँचता है, वह भाषा में भी उसी प्रकार सजीव हो उठती है । पंक्तियों का प्रवाह और लय की द्रुत गति द्रष्टव्य है ।

अंतत: नीलकमल जैसी अपनी आँख के अर्पण द्वारा राम सिद्धि को प्राप्त करने के लिए उद्यत होते हैं । उनके इस संकल्प द्वारा उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण समझकर विराट्-स्वरूपा देवी उदित होती है और राम की विजय का आश्वासन देती है : " होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन ।" कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन ।'

शक्ति की मौलिक कल्पना में राम राम को देवी " नवीन पुरुषोत्तम " का संबोधन देती है । यह अन्तिम घटना नेत्रदान के लिये राम की संकल्प-बद्धता और देवी की उपस्थिति भी सूक्ष्म रूप में ग्रहण करनी होगी । शारीरिक और मानसिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति भी विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण कर उद्देश्य की पूर्ति करता है । योगमार्गी वैयक्तिक साधना का अन्याय के प्रतिकार के लिए उन्नत मानव में अदम्य शक्ति भर देने के उपाय-रूप में उपयोग पुनर्जागरण

युगीन चेतना के सन्दर्भ में निराला की श्रेष्ठ उपलब्धि है, जिसकाएक अन्य रूप उनकी " जागो फिर एक बार "(१) कविता में द्रष्टव्य है ।

" राम की शक्ति-पूजा " कविता का आरम्भ " रवि हुआ अस्त की गहन-गम्भीर पृष्ठभूमि के साथ होता है और उसका अन्त विराट् देवी रूप के अवतरण और राम में उनकी शक्ति की समाविष्टि के साथ होता है । यह करुणा से शक्ति की ओर यात्रा है । इसकी और वापसी यात्रा के भी अनेक विराट् और सुकुमार रूप निराला-काव्य में मिलते हैं । श्रेष्ठ कविताएँ आदि से अन्त तक अपनी गम्भीरता को ~~कमर~~ कायम रखती हैं ।" कामायनी " का 'हिम गिरि के उत्तुंग शिखर के साथ जैसा भव्य समारम्भ होता है, वैसे ही " आनन्द अखण्ड घना था " में उसका पर्यवसान भी होता है । यह करुणा से आनन्द की ओर यात्रा है । निराला और प्रसाद दोनों ही अपने-अपने ढंग से पुनर्जागरण को शक्ति और आनन्द से सम्पन्न करते हैं ।

" राम की शक्ति-पूजा " में संघर्ष के विरुद्ध राम की विजय को लेकर आलोचकों ने कविता की संरचना के विषय में कई तरह के विचार व्यक्त किये हैं । डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार 'राम के संघर्ष का चित्र जितना प्रभावशाली है, उतना उनकी विजय का नहीं ।'[1] इसी प्रकार डॉ० नामवर सिंह छायावादी कविताओं की सामंजस्यपरक परिणति मे असंतोष प्रकट करते हुए यही बात कहते हैं :छायावादी कवियों में छन्द को सब से अधिक दूरी तक ले जानेवाले निराला भी इस आकांक्षा (संतुलन) से न बच सके ।" राम की शक्ति-पूजा " का अन्त प्रमाण है ।[2]

वस्तुत: जहाँ तक प्रभावोत्पादकता का प्रश्न है, कुशल-से-कुशल कवि भी संघर्ष की तरह समाहार का चित्रण नहीं कर सकता । संघर्ष में जो जीवंतता, गतिमयता और प्रखरता होती है, वह कविता-भाषा की " डाइलेक्टिक " प्रकृति में निखर उठती है । रमेशचन्द्र शाह का कथन इस प्रसंग में उद्धृत किया जा सकता है :

" यथ का आनन्द प्रतिरोधों से भिड़ने और उन्हें अपनी गति से निर्वीर्य और परास्त करने का आनन्द है । यह आनन्द हमें निराला सब से अधिक देते हैं ।"[3]

---

१) निराला,पृ० १६७ (२) कविता के नये प्रतिमान, पृ० १८६

३) चार छायावादी कविताएँ और उनके कवि (कल्पना,पृ० ४५) वर्ष २२ अंक ३, मार्च,१९७१ ।

इस दृष्टि से समाहारगत त्रुटि की शिकायत संगत प्रतीत नहीं होती । कवि ने जादू की छड़ी के ज़ोर से राम की सिद्धि में पूर्णता नहीं दिखलाई है, वरन् इस सिद्धि तक पहुँचने के लिये राम को विविध संघर्षों का सामना करना पड़ा है । यहाँ तक कि ,अन्त में," धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध " के रूप में क्षोभ प्रकट करनेवाले राम शरीर के सर्वाधिक कोमल अवयव नेत्र को भी देवी के चरणों में चढ़ा देने को उद्यत हो जाते हैं । इस प्रकार विविध द्वन्द्वों की अग्नि में तप और निखर कर उन्हें विजय का आश्वासन प्राप्त हुआ है ।" शक्ति-पूजा " साधन और साध्य दोनों बन गयी है । नामवर जी की आपत्ति के निराकरण में अंधकार और प्रकाश की प्रतीक-योजना को भी रखा जा सकता है । दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(१) उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार

(२) है अमा-निशा-उगलता गगन घन अंधकार
\+ \+ \+ \+
भूधर ज्यों ध्यान मग्न ; केवल जलती मशाल ।

पराजय को गहराई में अनुभव करनेवाला, द्वन्द्व की पीड़ा को तीव्रता से झेलनेवाला कवि ही यह योजना कर सकता है । जो यह समाहार-साधक की अदम्य साधना को ही मूर्तिमन्त करता है । अत: यह कहना अधिक संगत होगा कि समाहार यहाँ शक्तिसेवी कवि की संरचना का अंग बन गया है । वह भीतरी भाव से ही नहीं, भाषा से भी पुष्ट है ; वह भाषा, जिसने अस्तित्व की खोज में विविध अप्रत्याशित मोड़ों से गुजरते हुए मनुष्य की यात्रा का स्पृहणीय चित्र कविता में उतारा है ।

(" कुकुरमुत्ता ")

निराला की व्यंग्यात्मक कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उनका काव्य" कुकुरमुत्ता " है, जिसमें भाषा के अभिजात संस्कार को अपने गहन अध्यवसाय

के बल पर निखारने का आग्रहपूर्ण प्रयास है । यह श्रमसाध्य कला सूक्ष्म सांस्कृतिक चिन्तन से संपृक्त होने के कारण बड़े आत्मविश्वास से निराला को श्रेष्ठ कलाकार और चिन्तक का समृद्ध व्यक्तित्व प्रदान करती है ।" तुलसीदास " की मूल समस्या पतनोन्मुख संस्कृति की पुरदा की है - मध्यकालीन विघटित संस्कृति में ह्रासोन्मुख मानव-मूल्यों की विडम्बना पर कवि ने गहरी दृष्टि डाली है । इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली की लोक-प्रचलित कथा का प्रस्तुतीकरण केवल माध्यम भर है । मूल वस्तु विराट् सांस्कृतिक प्रश्न है, जिसकी बहुरंग जटिलता को फेलने के लिए कवि ने उसी के वज़न की - शायद उसे संपूर्णता प्रदान करने के लिए उससे भी बड़ी - जटिलता शब्दों के रूप में प्रस्तुत की है । " राम की शक्ति-पूजा " और " तुलसीदास " काव्य के रचना-प्रसंग में इस वास्तविकता से अवगत होने की भाषागत आपत्ति नहीं उठाई जा सकती थी " राम की शक्ति-पूजा " और " तुलसीदास " दो प्रयोग हैं, सर्वश्रेष्ठ नहीं, ये दोनों अधिक सरल और सुगुम्फित भाषा में लिखी जा सकती थीं ।[१]

कविता का प्रारम्भ अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य के कलात्मक चित्र के साथ होता है । यों पृष्ठभूमि मध्यकालीन भारत की है, जब मुसलमानों के आक्रमण से पराभूत देश श्रीहत हो गया था, पर काव्यभाषा की उन्मुक्त प्रकृति के कारण यह सांस्कृतिक ह्रास सार्वभौम स्तर पर गृहीत हो सकता है । इस विघटित संस्कृति के रूप को कविता में ढालते हुए कवि ने शब्दों की विशिष्ट संयोजना, छन्द की नई बंदिश, रूपक की लाक्षी नियोजना की है -

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मंडल ;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।

प्रस्तुत छन्द का धरातल अभिव्यक्ति की कुशलता, सामान्यता से

---

१) कवि निराला - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १९०

दूर है । एक औसत काव्य-बोध का पाठक शब्दों के इस अप्रत्याशित प्रयोग से अवश्य ही असंतोष प्रकट करेगा । वह यहां तक कह सकता है कि इन पंक्तियों में सांस्कृतिक सूर्य के अवसान की पीड़ा कम है, शब्दों पर अपने प्रखर पाण्डित्य की छाप लगाने की ललक अधिक है, यानी संवेदना मन्द है, शब्द-चमत्कार अपनी पराकाष्ठा पर है । डॉ० रामविलास शर्मा ने पाठकों की प्रतिक्रिया को यों प्रस्तुत किया है :- " तुलसीदास " कविता दुरूह है - निराला को यह राय बार-बार सुनने को मिलती । उनके अनेक प्रशंसकों का भी कहना था -" जुही ", की कली " कितनी सुन्दर है - अब " शीतलच्छाय ", निश्चलत्प्राण " जाने क्या-क्या लिखने लगे है ? [१]

किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है । महीयसी संस्कृति के पतन का प्रकृतिव्यापी चित्र प्रकारान्तर से कवि के गम्भीर विषाद को स्वर देता है । एक-एक शब्द संस्कृति-चेता कवि की आन्तरिक प्रतिक्रिया का प्रतिफलन है । भारत का अर्थ है - प्रकाशसंपन्न । उस भारत का सूर्य - प्रकाशमान सांस्कृतिक गौरव-विलुप्त हो गया है । सांस्कृतिक सूर्य के दो विशेषण है -" प्रभापूर्य " और " शीतलच्छाय " । दोनों विशेषण कवि के स्वच्छंद प्रयोग के परिचायक है । प्रचलित प्रयोग है - प्रभापूर्ण, किन्तु निराला ने " प्रभापूर्य " का प्रयोग किया है, जो सुनने में अधिक अच्छा लगता है और " सूर्य " की तुक के साथ उसकी अनुरूपता बैठ जाती है, पर उसकी विशिष्ट अर्थ-क्षमता का उद्घाटन आगे प्रयुक्त " तमस्तूर्य " के संदर्भ में होता है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे । संस्कृति के सूर्य के लिए दूसरा विशेषण " शीतलच्छाय " सटीक है । इन दोनों विशेषणों से युक्त सांस्कृतिक सूर्य की टकराहट होती है -" अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मंडल "-से । विपरीत स्थितियों की ऐसी टकराहट का अंकन निराला-काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है । प्रकाश का विलोप अंधकार की सत्ता का सूचक है । इस प्राकृतिक दृश्य को कवि की कल्पनात्मक पकड़ यों अभिव्यक्ति देती है -" तमस्तूर्य दिङ्०मंडल " दिशाएं अंधेरे की तुरही बजा रही है । पतन के प्रतीकों में निराला की कल्पना आश्चर्यजनक रूप से क्रियाशील रहती है । यदि " राम की शक्ति-पूजा " में — " है अमा निशा; उगलता गगन घन अंधकार " वह भयावह बिंब है, तो " तुलसीदास

---

१) निराला की साहित्य-साधना (खण्ड १) पृ० २५० ।

में " तमस्तूर्य दिङ्०मंडल" के माध्यम से चतुर्दिक व्याप्त अंधकार- सूक्ष्म स्तर पर विघटन - का सांकेतिक चित्रण है । एक में गगन का मानवीकरण है, दूसरे में दिङ्०मंडल का । भाषा की मुक्ति का प्रयास निराला की रचना में हम बराबर देखते हैं, वे सर्जनात्मकता का स्रोत शब्द में न मानकर शब्द प्रयोग में मानते हैं - " तमस्तूर्य " का प्रयोग उल्लेखनीय है । " तूर्य " शब्द का " तम " के संदर्भ में प्रयोग नवीनता के साथ अर्थ की अनंत संभावनाओं से भरा हुआ है । विनिफ्रेड नवातनी ने शब्दों को उनके संदर्भ से जोड़कर विचार करने पर बल दिया है -" कविता के शब्दों का प्रश्न इस बात का प्रश्न है कि किस प्रकार शब्द प्रभाव डालते हैं और उन कलात्मक संदर्भों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनमें वे प्रविष्ट होते हैं ।[1] तूर्य-वादन में जो तीव्रता, उल्लास, आतंक का भाव है, वह पतन के सर्वग्रासी प्रभाव को ध्वनित करता है । इतने विराट् रूपक को इतने कम शब्दों में नियोजना निराला के असाधारण भाषा-अधिकार की परिचायिका है । इस " तमस्तूर्य " के साथ " प्रभातूर्य " पर दृष्टिपात करें, - बाहरी बनावट की समता अर्थगत विरोध के आलोक में अजीब प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है ।" प्रभातूर्य " की परिणति " अस्तमित आज रे " में होती है और दूसरी ओर" तमस्तूर्य " अपना प्रभूत आतंक जमाये हुये है ।

आगे शब्दों की विशिष्ट बानगी मुसलमानों के आतंकपूर्ण शासन का रूप प्रस्तुत करती है -

उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान ;

शासक के वास्तविक अर्थ से च्युत मुसलमान भारत छाती पर बैठकर शासन करते हैं, भारतीयों को प्रताड़ित करते हैं, जबकि उन्हें अपने "शिरस्त्राण" विशेषण को सार्थक करना चाहिए । यहाँ" शिरस्त्राण " का प्रयोग सिद्धान्त और व्यवहार के बीच की खाई को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है । इस सारी स्थिति की परिणति इन शब्दों में होती है -

है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।

---

1. The question of the diction of poetry is a question of how words affect and are affected by the artistic contexts they enter.
THE LANGUAGE POETS USE, p.32.

ऊपरी दृष्टि से सक्रिय प्रतीत होनेवाले, किन्तु सूक्ष्म रूप में खोखले भारतीय जीवन के लिए प्रयुक्त जल और शतदल का यह बिंब आधुनिक जीवन की ऐन्द्रजालिक विडम्बना को भी पूरे आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार वर्णन में बड़े गहरे स्तरों पर व्याप्त होकर यह बिंब काव्यभाषा का सामान्य अंग बन गया है। राजनैतिक विस्तार और आर्थिक संपन्नता की तुलना में संस्कृति का रूप सूक्ष्म और सुकुमार होता है; उसके मूल्यों को आत्मसात् करना कठिन कार्य है। "निश्चलप्राण शतदल" का बिंब अपनी प्रकृति में अत्यन्त सुकुमार संस्कृति की रिक्तता को कला के स्तर पर उतने ही सुकुमार ढंग से अभिव्यक्ति देता है, और जीवन की पुनर्रचना के रूप में कला की व्याख्या को व्यावहारिक स्तर पर विश्वसनीय बनाता है। पूर्ववर्ती "अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य" के साथ इस "निश्चलप्राण शतदल" को मिलाकर पढ़ें, तो निराला की संरचनागत कसावट का परिचय मिलेगा। सूर्यास्त होने पर शतदल का कुम्हलाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार संस्कृति के विघटन के समय सही अर्थों में स्वस्थ जीवन की परिकल्पना दुष्कर है। नवीन संदर्भ में प्रयुक्त किये जाने पर एक घिसा-पिटा शब्द भी अर्थ की कितनी विस्तृत छायाएँ उद्भूत कर सकता है, इसका बढ़िया उदाहरण "शतदल" है।

इस सांस्कृतिक संध्या की सर्वव्यापी सत्ता को निराला एक अन्य विराट अप्रस्तुत द्वारा मूर्तिमन्त करते हैं -

शत-शत शब्दों का सांध्य-काल
यह आकुंचित भ्रू कुटिल-भाल
छाया अम्बर पर जलद-जाल ज्यों दुस्तर

देश की सांस्कृतिक अकिंचनता से विषण्ण कवि-मानस अम्बर पर छाये हुए दुस्तर जलद-जाल से सांस्कृतिक संध्या को उपमित करता है। दीर्घ स्वरों की प्रमुखता और छंद की त्वरित गति मन के बढ़ते हुए प्रभाव-क्षेत्र को साकार कर देती है, जिसकी लपेट में भारत के विविध प्रांत आ जाते हैं।

तीसरे छंद में नाश के प्रतीक आक्रामक मुगलों के आतंक का भयावह चित्र प्रस्तुत करते हैं :

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर ;

"मुगल" के बजाय "मोगल" के प्रयोग में आक्रामकों की दुर्निवार शक्ति को अधिक ज़ोरदार अभिव्यक्ति मिली है। इन मुगलों की सेना बादल है, और दर्प से चलते हुए पठान जल से भरे नद हैं। "द" की अनेक बार आवृत्ति जैसे दर्पित आक्रामकों की शक्ति को मुखरित करती है। हिन्दी कविता की सुगठित-पद-योजना के उत्कृष्ट उदाहरण ये अंश हैं। इन आक्रामकों की सक्रियता का अल्प शब्दों में विस्तृत चित्र है: हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर ।

मुगलों के आक्रमण की यह प्रलयंकरी वर्षा, घन अंधकार, दुर्निवार, वज्रपात, शब्दों में किस प्रकार परस्पर संश्लिष्ट हो गए हैं, यह द्रष्टव्य है -

छाया ऊपर घन अंधकार -
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय धार, ध्वनि हर-हर ।

यहाँ छंद-योजना में निराला अपने व्यक्तित्व की सारी ओजस्विता, सारी सक्रियता का परिचय देते चलते हैं।

मुगलों से समर में परास्त बुन्देलों की श्री-हीनता को कवि ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है -

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड ;
निश्चल अब वही बुन्देलखंड, आभागत,

किरणों से प्रचण्ड सूर्य की भाँति बुन्देलखण्ड अंधकार-रूप रिपुओं को मर्दित कर देता था। समय के फेर से वही बुन्देलखण्ड अब निस्तेज हो गया है। उसकी पराजय को निराला ने बिम्ब की रेखाओं में बड़ी संवेदनशीलता से संगुम्फित कर दिया है।

नि:शेष सुरभि, कुरबक-समान
संलग्न वृन्त पर, चिन्त्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों, चिन्ह म्लान,छाया श्लथ ।

गंधहीन केतकी का वृन्त पर लटका रहना कोई अर्थ नहीं रखता । गौरवहीन बुन्देलखण्ड का अस्तित्व भी ऐसा ही है । उत्सव के बाद की शोभाहीनता विषाद को जन्म देती है, बुन्देलखण्ड का तेज विगत की वस्तु बन गया है, उसका वर्तमान आशा-उत्साह से शून्य है । उत्सव के बाद की नीरवता और गंधहीन कुसुम के बिंबों में प्रसाद ने भी अपने ढंग से सम्राट अशोक के वैराग्य-भाव और प्रेममूर्ति देवसेना के जीवन की करुणा को स्थान दिया है,

फिर निर्जन उत्सव-शाला
नीरव नूपुर, श्लथ-माला
सो जाती है मधुबाला,
सूखा लुढ़का है प्याला,
बजती वीणा न वहाँ मृदंग ।[१]

" संगीत-सभा की अंतिम लहरदार और आश्रयहीन तान, धूपदान की एक क्षीण गन्ध-रेखा, कुचले हुए फूलों का म्लान सौरभ और उत्सवों के पीछे का अवसाद, इन सबों की प्रतिकृति मेरा क्षुद्र नारी-जीवन ।"[२]

लगभग एक ही प्रकार के उपकरण विविध प्रसंगों में प्रयुक्त होकर किस प्रकार अर्थ के विविध स्तर खड़े करते हैं - यह इन उदाहरणों में देखा जा सकता है ।

पांचवें छंद में विघटित भारतीय मानस के प्रति कवि का गंभीर विक्षोभ ध्वनित है -

वीरों का गढ़, वह कालिंजर
सिंहों के लिए आज पिंजर ;
नर है भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते ।

---

१) लहर :" अशोक की चिन्ता ", पृ० ४८
२) स्कंदगुप्त, पृ० १३२

"नर" और "किन्नर" का विशिष्ट प्रयोग निराला की भाषा-क्षमता का उदाहरण है । जो वास्तव में पुरुषोचित शौर्य से संपन्न "नर" हैं, वे तो संग्राम-भूमि में युद्ध करते हुए मुगलों द्वारा बंदी बना लिये गये, पर जो किंपुरुष (किन्नर) हैं, वे अपने नाम की शोभा बढ़ाते हुए दासता पर उत्सव मना रहे हैं, उन्हें अपने राजनैतिक और सांस्कृतिक पराभव पर ग्लानि नहीं है, उनका पुरुषत्व विलुप्त हो गया है । इस प्रसंग में कवि ने दो पौराणिक दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है -

> पी कर ज्यों प्राणों का आसव
> देखा असुरों ने दैहिक दव,
> बंधन में फँस आत्मा-बांधव दुख पाते ।

कवि को कदाचित् आत्मिक ह्रास के लिए इनसे उपयुक्त पौराणिक दृष्टान्तों की प्राप्ति नहीं हो सकती थी । डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने निराला की भाषा में अप्रचलित प्रयोगों पर आपत्ति करते हुए इस छंद को उदाहरण रूप में रखा है - "निराला की भाषा का एक दोष यह भी है कि उन्होंने विभिन्न शब्दों से मनमाने अर्थों को लिया है, प्रायः उन शब्दों से कवि द्वारा ग्राह्य अर्थ प्रचलित नहीं है, अतः उसके द्वारा अभीष्ट अर्थ, कविता से व्यक्त नहीं होता, यथा "तुलसीदास" में - "किन्नर" का अर्थ नपुंसक व आत्म-बांधव का अर्थ आध्यात्मिक शक्तियों लिया गया है - नर हैं भीतर बाहर किन्नरगण गाते ।"[1]

किन्तु "नर" की तुलना में "किन्नर" को प्रयुक्त करने के कारण "किन्नर" के अर्थ-स्फुरण में कोई बाधा नहीं प्रतीत होती, प्रत्युत अर्थ-क्षमता अधिक बढ़ जाती है । एक तो किंपुरुष या नपुंसक कहने से पुरुषत्व से हीन चाटुकारों पर कवि के गंभीर व्यंग्य और क्षोभ की इतनी कुशलता से अभिव्यक्ति नहीं होती । दूसरे, यक्ष-किन्नरों के जीवन की जो एक विलासमय पौराणिक परिकल्पना हुई है, वह दासता पर विजय मनाते, गौरवशून्य भारतीयों के संदर्भ में बड़ी सटीक प्रतीत होती है । पंक्ति को एक बार फिर पढ़ें - "नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते ।" सच्चे वीर बंदीगृह में हैं, और नरनामधारी,

---

1 निराला का साहित्य और साधना, पृ० २१४

किन्तु वस्तुतः " किन्नर " बाहर उल्लास मना रहे हैं । कापुरुष और विलासी किन्नर-जाति की दोनों विशेषताएँ " किन्नर " संशोधन में समाविष्ट हो गई है ।

" आत्मा-बांधव " भी निराला का मौलिक प्रयोग है । संभवतः माया के बंधन की प्रभावकता को घोतित करने के लिए " आत्मा-बांधव " का प्रयोग उन्होंने किया है - बंधन, जो इतना दुष्कर है कि उसके जाल में आध्यात्मिक शक्तियां भी फँस जाती है - बंधन में फँस आत्मा-बांधव दुःख पाते ।

पौरुषवान् राजपूत और पौरुष का मिथ्याभास प्रस्तुत करनेवाले राजाओं का इसी प्रकार का एक और चित्र निराला प्रस्तुत करते हैं -

लड़- लड़ जो रण बाँकुरे, अमर,
हो शयित देश की पृथ्वी पर,
अदार, निर्जर, दुर्वर्ण, अमर, जातारण,

शक्ति की दुर्दशा द्रष्टव्य है - " अदार, निर्जर, दुर्वर्ण, अमर, जातारण " की " हो शयित देश की पृथ्वी पर " में परिणति मानव-जीवन की दो विरोधी स्थितियों को सामने रखती है । आगे निराला कहते हैं -

भारत के उर के राजपूत,
उड़ गए आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृप-वेश सूत- बंदीगण ।

" भारत के उर के राजपूत " का शब्द-संयोजन सच्चे वीरों के गौरव को अपने में समेटे हुए है । नृपवेशधारी सूत-बंदीगण का शेष रहना कोई अर्थ नहीं रखता ।

इसके बाद अनेक छंदों में कवि ने मुसलमानी सभ्यता के प्रसार को चित्रित किया है । वर्णन की आंतरिक एकता देखने योग्य है ; इस्लामी सैन्य-आक्रमण की वर्षा के बाद जैसे इस्लामी सभ्यता-रूपी शरद ऋतु आई है । प्राकृतिक उपमानों में परस्पर संबद्धता है -

अब, धौत धरा, खिल गया गगन,
उर-उर को मधुर, तापप्रशमन,

बहती समीर, चिर आलिंगन ज्यों उन्मन,
झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुंबन, संजीवन ।

भारतीय संस्कृति के सूर्य के अस्त होने पर मुसलमानी सभ्यता के चन्द्र का उदय हुआ है । इस विलासमयी सभ्यता के आकर्षण और उसके सम्मोहन का प्रकृति के सुकुमार उपकरणों द्वारा कवि ने सटीक चित्रण किया है । इस विलासमय वातावरण में औसत भारतीय जनता की स्थिति द्रष्टव्य है :

भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला- यह केवल कल्प-काल-
कामिनी कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता,
प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता ।

शब्दावली का सजा-सँवरा क्रम जैसे जीवन में जड़ हो गई निर्जीव मुखरता को स्वर देता है । कवि की दृष्टि में यह आमोदपूर्ण जीवन वास्तविक नहीं है, केवल कल्पना में सुख देनेवाला है - " यह केवल कल्प-काल ।" ऐसी दशा में जीवन मुक्त प्रवाह को कैसे आश्रय दे सकता है ?

प्राणों की छवि मृदु-मंद स्पंद
लघु गति नियमित-पद, ललित छंद

अन्तिम पंक्ति का तीखा व्यंग्य द्रष्टव्य है :-

होगा कोई, जो निरानंद ,कर मलता ।

विलासिता के संक्रमणातीत स्वरूप पर शायद इससे अच्छी टिप्पणी नहीं प्रस्तुत की जा सकती ।

छंद संख्या ८० में निराला ने देश की अकर्मण्य मनोवृत्ति पर तीव्र कशाघात किया है । वर्ग के कुल का चित्र इस संदर्भ में बहुत ताजा और सटीक है ।

सोचता कहाँ रे, किधर कूल
बहता तरंग का प्रमुद फूल ?
यों इस प्रवाह मे देश मूल सो बहता,
" छल-छल-छल " कहता यद्यपि जल,
वह मन्त्र-मुग्ध सुनता " कल-कल ",
निष्क्रिय, शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता ।

तरंग में बहता फूल अपनी गतिविधि भूल जाता है, किनारे का उसको बोध ही नहीं होता । ठीक यही दशा देश की भी है, जो इस्लामी सभ्यता के आकर्षण में फँसकर दिशा-ज्ञान खो बैठा है । पहले भी निराला ने कहा है :-

मोगल-दल-बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देश ज्ञान, शर-खरतर,

स्थिति की विडम्बना द्रष्टव्य है, जल का " छल छल छल " करते हुए बहना फूल को सावधान करता है कि वह किनारे को खोज ले , इस तरंग-प्रवाह में खतरा है । पर वह फूल मंत्र-मुग्ध-सा उस " छल छल छल " को कल-कल - सुन्दर-सुन्दर ही के रूप में सुनता है । उसका यह सौन्दर्य -प्रेम मिथ्या है, सर्जनात्मकता से रहित है, धारा के किनारे के पत्थर की भाँति वह इस आडम्बरयुक्त मिथ्या जीवन की छलना को नहीं समझ पाता । किनारे पर पड़े हुए पत्थर (कूलोपल) का उपमान अकर्मण्य जीवन को बड़ी सटीक अभिव्यक्ति देता है । तरंग में बहते फूल का बिंब सामान्य वर्णन की मात्रा में धीरे-धीरे पर्यवसित हो जाता है और इस प्रकार मार्मिक वर्णन और बिंब के संश्लेषण का एक स्पृहणीय रूप निर्मित होता है । अनुरणनात्मक ध्वनियों के अन्तर को कवि कितनी बारीकी से पहचानता है, यह " राम की शक्ति-पूजा " में बड़े विशद रूप में देखा जा सकता है," तुलसीदास" काव्य में भी " छल-छल-छल और " कल-कल " के विषम भाव द्वारा कवि अपनी इसी पहिचान को अभिव्यक्ति देता है । खतरे को न पहिचान कर आमोद-प्रमोद में डूबे,ग़ाफ़िल लोगों पर कवि ने सूक्ष्म व्यंग्य किया है । ध्वन्यात्मक शब्दों से ध्वनि,व्यंग्य,ग्लानि

की संश्लिष्ट व्यंजनाएँ संभव करना निराला की शब्द-क्षमता का प्रतिफलन है। तरंग " शब्द का प्रयोग क्षणिक, मिथ्या आकर्षण में फँसे देश के मानस के चित्रण के संदर्भ में बहुत उपयुक्त है। कला की बारीकी के साथ अगर चिन्तन की गरिमा भी हो, तो कविता की उत्कृष्टता सही मानें में अक्षुण्ण रहती है।

ऐसे संक्रमण-काल में युवक तुलसीदास का आगमन होता है, जिनके माध्यम से निराला ने भारतीय जीवन में जड़ हो गई वैचारिक गतानुगतिकता सांस्कृतिक रिक्तता के प्रतिरोध को चित्रित किया है। चित्रकूट में मित्रों के साथ पर्यटनार्थ गये हुए तुलसीदास की भावी कवि-चेतना को प्रकृति कुछ संकेत देती है। छायावादी कवि इन सूक्ष्म संकेतों को अभिव्यक्ति के स्तर पर भी कितने सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करते हैं, यह द्रष्टव्य है -

वह भाषा-छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा में रँग कर,
वह भाव कुरल-कुहरे -सा भरकर भाया।

प्रकृति के उस संदेश की भाषा स्पष्ट न होकर कुछ छिपती-सी खुली-सी आभा में रँगी हुई थी। तुलसीदास के कवि के मन में उससे जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है; उसको भी कवि ने सूक्ष्म उपमान में अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति-दर्शन से उत्पन्न भाव तुलसीदास के मन को कुहरे की कुण्डली-सा लगा, अर्थात् वह कुछ स्पष्ट था, कुछ नहीं। पर वह था अत्यन्त आकर्षण। ऐसे सूक्ष्म अंकन में भाषा अभिव्यक्ति ही नहीं, अभिव्यक्ति और अनुभव दोनों हो जाती है। इस पूरे दृश्य में कवि ने ऐसे काव्यभाषा की सूक्ष्म और अनिश्चित प्रकृति को भी व्यंजित किया है। दिनकर ने कुछ-कुछ इसी प्रकार की स्थिति इन शब्दों में रूपायित की है -

स्पष्ट शब्द मत पूछो, पूछो उनको जो धुँधियाले हैं,
वे धुँधले ही शब्द गुफाओं में प्रवेश पाने पर
एक साथ जोड़ते अनिश्चित को निश्चित आशय से

(" उर्वशी ")

प्रकृति के सूक्ष्म संकेत को निराला ने उसी सूक्ष्मता से भाषा में रूपायित किया है । काम का संदेश मनु के अन्तर्मन में किस प्रकार प्रवेश करता है, इसको प्रसाद भी इसी प्रकार सूक्ष्मता से अंकित करते हैं :-

था व्यक्ति सोचता आलस में
चेतना सजग रहती दुहरी,
कानों के कान खोल करके
सुनती थी कोई ध्वनि गहरी ।

(१ कामायनी, पृ०२८)

तुलसीदास के मानसिक संस्कार प्रकृति की छवि को देखकर जागने लगे । इसके लिए कवि ने एक आत्मीय बिम्ब की सृष्टि की है -

केवल विस्मित मन चिन्त्य नयन ;
परिचित कुछ, भूला ज्यों प्रियजन -

बहुत दिनों के बाद देखा गया प्रियजन एकबारगी पहचान में नहीं आता, तुलसीदास की स्थिति अपने विस्मृत संस्कारों के प्रति इसी प्रकार की हो गई । निराला इस स्थिति के चित्रण में एक ओर, अपेक्षाकृत सूक्ष्म बिम्ब प्रस्तुत करते हैं -

ज्यों दूर दृष्टि को धूमिल-तम तट-रेखा,
हो मध्य तरंगाकुल सागर,
निःशब्द स्वप्नसंस्कारागर ;
जल में अस्फुट छवि छायाकर, यों देखा ।

जैसे दूर से देखनेवाले को उस पार धूमिल रेखा दिखाई दे और बीच में तरंगाकुल सागर हो, तुलसीदास को भी अपने मन में संस्कारों का निःशब्द सागर दिखाई देता है, जिसके उस पार सत्य की अस्फुट छवि विद्यमान है ।

यह सारा व्यापार मनोजगत में सम्पन्न हो रहा है, प्रकृति भी कवि के इस संस्कार-जागरण से अवगत हो गई - उसकी उन्मुक्त आत्मीयता शब्दों में सजीव हो उठी है :-

तरु-तरु-वीरुध-वीरुध तृण-तृण
जाने क्या हँसते मसृण, मसृण,

जैसे प्राणों से हुए उन्मुक्त, कुछ लख कर ;
भर लेने को उर में, अथाह,
बाँहों में फैलाया उछाह ;
गिनते थे दिन, अब सफल-बाह पल रख कर

प्रथम पंक्ति में शब्दों के दुहरे प्रयोग प्रकृति के उल्लास, उसकी गतिशीलता को मूर्तिमान् करते हैं। ध्वनियों में परस्पर समता जैसे सचमुच प्राकृतिक जगत के आन्तरिक संतुलन को ध्वनित करती है। भारत के भावी कवि से आत्मिक स्तर पर जुड़ कर प्रकृति के जड़ पदार्थ अपनी वेदना - सूक्ष्म स्तर पर संस्कृति की समस्या - को यों प्रस्तुत करते हैं :-

कहता प्रतिजड़, " जंगम जीवन !
भूले थे अब तक बन्धु प्रमन
यह हताश्वास मन भार श्वास भर बहता ;
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि-धूसरित छवि,
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता ।"

बड़े प्रतीकात्मक ढंग से निराला ने गौरव-शून्य तत्कालीन भारत की वेदना को स्वर दिया है। इसीलिए जब डॉ० रामरतन भटनागर कहते हैं " निराला के साहित्यिक मूल्यांकन में सांस्कृतिक दृष्टि की उपेक्षा नहीं की जा सकती" [१]- तो इस कथन की सत्यता समझ में आती है। शरीर की भूख के साथ मन की भूख भी बड़ी प्रबल होती है। मानसिक स्तर पर रिक्तप्राय देश की व्यथा को " यह हताश्वास मन भार श्वास भर बहता" और " छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता ।" के शब्द-प्रयोगों ने सीधी और मार्मिक अभिव्यक्ति दी है।

पतन की स्थितियों का निराला ने गहराई में अनुभव किया है और वे इस प्रसंग को और विस्तार देते हैं, जहाँ प्रकृति - जगत् की सारी अव्यवस्था तत्कालीन भारतीय जीवन को समेटती चलती है :-

---

१) निराला और नवजागरण, पृ० ३०१

छलती आँखों की ज्वाला चल,
पाषाण-खण्ड रहता जल-जल
ऋतु सभी प्रबलतर बदल-बदल कर जाते ;
वर्षा में पंक-प्रवाहित सरि ;
है शीर्ण-काय - कारण हिम-अरि ;
केवल दुख देकर उदरंभरि जन जाते ।

सूर्य अपनी प्रचण्ड ज्वाला से पाषाण-खण्डों को जलाता रहता है, वर्षा में कीचड़-पानी से भरी नदी शरद्-काल में संकुचित हो जाती है, और उसकी क्षीणता के मूल में हिम-अरि (सूर्य) है । इस प्रकार आतंककारी अपना आतंक जमाकर चले जाते हैं ।" उदरंभरि " में आततायियों की स्वार्थ-वृत्ति पर गहरा व्यंग्य है । यह विशुद्ध तत्सम प्रयोग अर्थ की सर्जनात्मक आवश्यकता का प्रतिफलन है ।

आगे के दो छंदों में प्रकृति स्पष्ट शब्दों में तुलसीदास को आत्मिक जागरण का संदेश देती है । इसके पश्चात् इस्लामी सभ्यता की अतिशय विलासिता को एक मादक बिम्ब में प्रस्तुत कर वह मौन हो जाती है -

अब स्मर के शर-केशर से झर
रँगती रज-रज पृथ्वी, अम्बर ;
छाया उससे प्रतिमानस-सर शोभाकर ;
छिप रहे उसी से वे प्रियतम
छवि के निश्छल देवता परम ;
जागरणोपम यह सुप्ति विरम भ्रम, भ्रम-भर ।

पार्थिव ऐश्वर्य ने पूरी पृथ्वी - आकाश-सभी को अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेट लिया है, कामदेव के केशर-रूप शर हैं, उनसे झरती रज पृथ्वी-अम्बर को रँग रही है। वास्तविक आलोक को उसने धूमिल कर दिया है, अतः मनुष्य दिग्भ्रमित होकर माया को ही जागरण समझ बैठा है ।" भ्रम, भ्रमभर " में ध्वन्यात्मक आवृत्ति इस माया के मिथ्या आकर्षण की ओर संकेत कर देती है ।

प्रकृति के संदेश से प्रभावित तुलसीदास के मानसिक प्रसार को निराला ने बड़े उदात्त ढंग से काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है :-

बहकर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल
हो गया चित्त कवि का त्यों तुलकर उन्मन
वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन ।

सुरभित वायु वन को विकल कर जाती है, ठीक इसी तरह प्रकृति के संदेश ने भी तुलसीदास के चित्त को उन्मन कर दिया । यह उपमा बड़ी सटीक है । मन की ऊर्ध्व उड़ान को सहज भाव से कवि अन्तिम तीन पंक्तियों में स्थान देता है । बद्ध संस्कारों की सीमा को पार कर मन मुक्ताकाश में विचरण करता है । विहंग का रूपक इस ऊर्ध्व-यात्रा के प्रारंभ को कविता का अनुभव बना देता है । अन्तिम पंक्ति-" छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन " का शब्द - विन्यास भी सचमुच धीरे-धीरे संस्कारों की सीमा पार कर अगोचर सत्य के निकट पहुँचते मन को रूपायित करता है । स्वयं निराला ने काव्य में प्रतिष्ठापित विराट् रूपों के अक्ष में सार्थक व्यवधान पर बल दिया है । वास्तव में चित्रों तथा भावनाओं के भीतर से चिरंतन सत्य में पहुँचना, अपार सौन्दर्य से भावना तथा चित्रों की आकृतियों को मिला देना कविता की पूर्णता है ।" तुलसीदास " में ऊर्ध्व-संचरण के ये दृश्य कविता की इसी पूर्णता की धारणा के व्यावहारिक निदर्शन हैं ।

तेतालवें छन्द में प्राकृतिक दृश्य के माध्यम से मन की ऊर्ध्व-उड़ान का और भी विस्तार वर्णित है :-

दूर, दूरतर, दूरतम शेष,
कर रहा पार मन नभोदेश,
सजता सुवेश, फिर-फिर सुवेश जीवन पर,
छोड़ता रंग, फिर-फिर सँवार
उड़ती तरंग ऊपर अपार
संध्या-ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अम्बरतर ।

तुलसीदास का मानस क्रमश: दूर से दूरतर से दूरतम स्तर में प्रवेश करता ही जाता है। इस प्रक्रिया में वह सबे हुए संस्कारों की सतह को पार करता जा रहा है, संध्या कालीन सूर्य की किरणें भी आकाश में ऊपर उठती हैं।

मन की इस ऊर्ध्व उड़ान में तुलसीदास तत्कालीन भारतीय संस्कृति का वास्तविक आभास पा जाते हैं। पराधीन भारतीय मानस का सही चित्र निम्न छंद में उतरा है :-

बँध भिन्न-भिन्न भावों के दल
क्षुद्र से क्षुद्रतर हुए विकल।
पूजा में भी प्रतिरोध-अनल है जलता,
हो रहा भस्म अपना जीवन,
चेतनाहीन फिर भी चेतन
अपने ही मन को यों प्रतिमन है छलता।

युग-सम्पृक्ति के अभाव में ऐसी पंक्तियों की रचना नहीं हो सकती थी। मानवीय स्वभाव की विचित्रता इन पंक्तियों में समा गई है। क्षुद्र भावों से परिचालित, सकीर्णात्मक दृष्टि से शून्य मनुष्य जड़-पुंज हो रहा है, पर वह अपने को चेतन समझता है। " चेतनाहीन फिर भी चेतन " का विरोधाभास द्रष्टव्य है। और, इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का मन अपने ही मन को धोखा दे रहा है। मानवीय प्रकृति की इस विचित्र विडम्बना को काम के शाप में प्रसाद ने भी अभिव्यक्ति दी है -

हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता। [१]

आगे कवि जर्जरित वर्ण-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करता है। भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विघटन के मूल में बहुत कुछ निम्न वर्ग की शोचनीय दशा है :-

---

१) कामायनी, पृ० ६०१

चलते-फिरते पर निस्सहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय;
आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में ;
रण के अश्वों से शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र -जीवन -संबल, पुर-पुर में

यह उल्लेखनीय है कि तुलसीदास का ऊर्ध्व-संचरण जहाँ उन्हें सूक्ष्म समस्याओं पर विचार करने के लिए दृष्टि देता है, वहीं सभ्यता के विकास में छोटे प्रतीत होनेवाले, पर वस्तुतः उसके अविभाज्य अंग शूद्रगण के प्रति उनके मन में गंभीर संवेदनशीलता को स्थान देता है। बड़े मार्मिक भावचित्र द्वारा उनके जीवन की विवशता और कदर्थना को कवि ने स्वर दिया है। यह पूरा छंद भाषा के लोच का बढ़िया उदाहरण है। "दलमल जाते ज्यों, दल के दल" में "द" की आवृत्ति "दलमल" की क्रिया को सचमुच साकार कर देती है।

इस सामूहिक पतन से पीड़ित कवि-मानस के निश्चय भाव की अत्यन्त कलात्मक अभिव्यक्ति निम्न छंद में हुई है :-

इस छाया के भीतर हैं सब,
है बँधा हुआ सारा कलरव,
भूले सब इस तम का आसव पी-पीकर।
इसके भीतर रह देश-काल
हो सकेगा न रे मुक्त भाल
पहले का-सा उन्नत विशाल ज्योतिःसर।

कवि की भीतरी छटपटाहट भाषा में साकार हो उठी है। भारतीय जीवन की गत्यात्मकता, सक्रियता समाप्त हो चुकी है, जीवन का सारा स्पंदन बँध गया है -"है बँधा हुआ सारा कलरव" बड़ा सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग है। "बादल-राग" में मुक्त विकास के अभिलाषी निराला बंधन को (जो जड़ता का प्रतीक है) किसी भी मूल्य पर स्वीकृति नहीं दे सकते। दूसरा

विशिष्ट प्रयोग " तम का आसव " है - भूले सब इस तम का आसव पी-पी कर ।" " तम का आसव " अपने सूक्ष्म-अमूर्त रूप से एक संश्लिष्ट बिंब की सृष्टि करता है ।" तम " अपने आपमें विभ्रम , जड़ता और अज्ञान का प्रतीक है और सांस्कृतिक विघटन के इस प्रसंग में उसकी ये व्यंजनाएँ और सघन हो जाती हैं । " आसव " खुमारी अलसता विलासिता और उन्माद की मिली-जुली व्यंजनाएँ उद्भूत करता है ।" तम का आसव " प्रयोग में कवि ने दोनों तरह की अर्थ-छायाओं को परस्पर संगुम्फित कर दिया है , और इस प्रकार यह सघन बिंब दिग्भ्रमित विलासमय जीवन का बड़ा विशद रूप प्रस्तुत करता है । आगे की पंक्तियाँ इस बात का स्पष्ट संकेत देती है कि कवि का आक्रोश नपुंसक नहीं है, मृत गौरव के पुनर्स्थापन के लिये वह संकल्पबद्ध है :-

इसके भीतर रह देश-काल
हो सकेगा न रे मुक्त-भाल
पहले का-सा उन्नत विशाल ज्योतिःसर ।

तुलसीदास की ऊर्ध्वमुखी चेतना इस अज्ञानांधकार को विमोचित करने के लिए अपने को संकल्पबद्ध करती है, उसने यह भलीभाँति समझ लिया है कि मुक्ति इस्लामी सभ्यता के परे है । कवि के निश्चय को मूर्त करनेवाला यह विराट बिंब द्रष्टव्य है, जिसमें शब्दों का समुचित संयोजन अर्थ की व्यंजना-क्षमता में वृद्धि करता है :-

करना होगा यह तिमिर पार -
देखना सत्य का मिहिर-द्वार -
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय -

तिमिर " और " मिहिर " का बाह्य ध्वनि-साम्य और आंतरिक अर्थ-विरोध (छं० सं० १ में प्रभापूर्ण " और तमस्तूर्ण " की भांति) गति की पुष्टि करता है । सत्य का द्वार " मिहिर " का है, उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है, पर संकल्पवान् व्यक्तित्व बाधाओं का अतिक्रमण करके वहाँ तक पहुँचता ही :-

लड़ना विरोध से द्वन्द्व-समर
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर-
जाना, भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय ।

ये पंक्तियाँ भी संकेत करती हैं कि देश की सीमा को लाँघ कर ही आत्मिक आलोक की उपलब्धि हो सकती है । इसी भाव से संबद्ध एक और तेजदीप्त चित्र द्रष्टव्य है :-

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम,
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम,
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम हरने को -
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार -
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार ;
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को ।

तुलसीदास की प्राण-चेतना सामूहिक स्तर पर क्रियाशील हो गई है । वह अपना ही नहीं, भारत देश का अपार भ्रम हरने को उद्यत है । निराला की काव्यभाषा का सतही अध्ययन करने पर कोई इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि उनके काव्य में ओज का समावेश उनकी समास-प्रधान क्लिष्ट शब्दावली द्वारा हुआ है, पर वास्तविकता यह नहीं है । जानकीवल्लभ शास्त्री ने निराला के काव्य में अन्तर्निहित ओज का बहुत सटीक उद्घाटन किया है -" समस्त शब्दों द्वारा ओज-पुष्टि करने की रूढ़ि के भी वे क़ायल नहीं हैं । कवि की आंतरिक शक्ति के बिना पदों में विद्युत्कांति आ नहीं सकती ।" [१]

कवि की इस आन्तरिक शक्ति के बड़े अच्छे उदाहरण उपर्युक्त दोनों छन्द हैं, जिनमें समस्त शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है, परुष वर्ण-योजना का भी कोई आग्रह नहीं है, पर इसके बावजूद दोनों छन्द भरपूर ओजस्विता से युक्त हैं ।

तुलसीदास का यह दृढ़ संकल्प अपनी पत्नी रत्नावली के स्मृति-चित्र को देखकर डगमगा जाता है । बड़ी मनोवैज्ञानिक कुशलता से निराला ने तुलसीदास के ऊर्ध्वोन्मुख मानस के चित्रण के ठीक बाद रत्नावली के प्रबल आकर्षण का प्रसंग रखा है । रत्नावली के कामिनी-रूप की शोभा अत्यन्त सटीक बिंब में प्रस्तुत हुई है :-

---

१) साहित्य-दर्शन, पृष्ठ ३०६

वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम ।

" वामा " में निहित अर्थ-छायाएँ उसके किसी अन्य पर्याय में नहीं आ सकती थी । तुलसीदास के साधना मार्ग पर पत्नी रत्नावली की कामिनी-मूर्ति बाधा -स्वरूप होकर उसी प्रकार खड़ी हो गई, जिस प्रकार किसी यात्री की राह में नदी पड़ जाए । नारी-आसक्ति से स्खलित तुलसीदास की यह स्थिति बड़े सुकुमार ढंग से निराला प्रस्तुत करते हैं :-

" जाते हो कहाँ ?" तुले तिर्यक्
दृग, पहना कर ज्योतिर्मय स्रक्
प्रियतम को ज्यों, बोले सम्यक् शासन से ;
फिर लिये मूँद वे पल-पक्ष्मल-
इंदीवर के-से कोश विमल ;
फिर हुई अदृश्य शक्ति पुष्कल उस तन से ।

यह सारा प्रेम-व्यापार तुलसीदास की कल्पना में ही घटित हो रहा है । रत्नावली के बंकिम सौन्दर्य को " तुले तिर्यक् दृग " में कवि ने गूँथ दिया है, जैसे - उन बड़े-तिरछे नेत्रों ने प्रिय को ज्योति की माला पहना दी हो । " दृग " और " स्रक् " की आंतरिक ध्वनि-योजना अपने कोमल शब्द-विन्यास से इस आह्लाद -भरे वातावरण को साकार कर देती है । कमल और भ्रमर के अप्रस्तुतों को लेकर कवि-गण आकर्षण का चित्रण परम्परा से करते आ रहे हैं । निम्नलिखित छन्द में तुलसीदास के मोह-चित्रण में ये ही अप्रस्तुत हैं, पर उनकी संयोजना में नवीनता है, वाक्य-विन्यास में विशिष्टता है :-

उस ऊँचे नभ का गुंजन पर,
मंजुल जीवन का मन-मधुकर,
खुलती उस-मुख-छवि में बँधकर, सौरभ को ;
बैठा ही था सुख से क्षण-भर ,
मूँद गये पलों के दल मृदुतर,
रह गया उसी उर के भीतर, अकाम हो ।

यह निराला की बहुमुखी प्रतिभा है, जिसके कारण वे एक ओर मन की ऊर्ध्व-उड़ान के बड़े विशद चित्र पूरे आत्मविश्वास के साथ काव्य में प्रतिष्ठित करते है, और दूसरी ओर मानवीय आकर्षण की प्रभाववत्ता को बहुत सधे ढंग से पकड़ते हैं । " तुलसी उस दृग-छवि में बँधकर " का तरल सौन्दर्य-अंकन दर्शनीय है । मन किस प्रकार धीरे-धीरे आकर्षण की ओर उन्मुख होता है और आकर्षण किस त्वरा से उसको अपने अधीन कर लेता है, उसको शब्दों में निराला ने मूर्त कर दिया है ।

तुलसीदास चित्रकूट यात्रा से घर लौट आते है । पत्नी के आकर्षण-पाश में बँधे उन्हें सृष्टि-व्यापी सौन्दर्य के मूल में उसी की मूर्ति दिखलाई पड़ती है । छायावादी कवि जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को भी किस प्रकार सार्वभौम रूप में प्रस्तुत करते हैं, यह निराला के इन तीनों चित्रों (४०,४१,४२,) में देखा जा सकता है । जैसे प्रकृति में जो भी है, वह रत्नावली से संपृक्त है । तुलसीदास रत्नावली को सृष्टि-रहस्य के रूप में देखते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में उसका शारीरिक आकर्षण प्रधान है । निराला उनके इस विभ्रम का खण्डन प्रस्तुत छन्द में बड़े उदात्त ढंग से करते हैं :-

जिस शुचि प्रकाश का सौर-जगत्
रुचि-रुचि में खुला, असत् भी सत्
वह बँधा हुआ है एक महत् परिचय से,
अविनश्वर वही ज्ञान भीतर ;
बाहर भ्रम-भ्रमरों को, भास्वर ;
वह रत्नावली-सूत्रधर, पर आशय से ।

वह रत्नावली विश्व की सूत्रधर है, पर बाह्य रूप से नहीं, उस आन्तरिक रहस्य से, जो संसार की एकता का कारण है। कुछ-कुछ त्रिपुर सुन्दरी की-सी परिकल्पना यहाँ पर है ।" भ्रम-भ्रमरों" का प्रयोग कवि का अपना है । और " किन्नर "" आत्मा-बांधव " (७)," कुल-क्वारित चाल " (६) जैसे मौलिक प्रयोगों की तरह इसे भी अर्थबोध का शिकार होना पड़ा है । निराला के विविध

मौलिक शब्द-प्रयोगों, समास-रूपों से खीजते हुए श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी ने बड़ी कड़ी, किन्तु अपक्व टिप्पणी प्रस्तुत की है - " जिस खड़ीबोली का रूप अनस्थिरता के वाग्जाल से निकलकर भारतेन्दु जी ने स्थिर किया, जिसको पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी तथा अन्य महारथियों ने परिमार्जित एवं नियंत्रित किया, निराला जी के " तुलसीदास " में वही खड़ीबोली फिर से पूर्व काल के अनस्थिरता भँवर में इधर-उधर बुरी तरह भटकने लगी ।" [1]

" तुलसीदास " काव्य का कोई भी प्रबुद्ध अध्येता इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकता । उक्त आलोचक की दृष्टि भाषा-वैज्ञानिक स्थिरता पर अधिक है, सही माने में सर्जनात्मक काव्यभाषा पर कम ।" निरंकुशा: हि कवय: " से सैद्धान्तिक स्तर पर सहमत होकर भी व्यावहारिक रूप में उसको ध्यान में नहीं रखा जाता, यह आलोचना के लिए एक विडम्बनामयी स्थिति है । निराला-काव्य में शब्द-प्रयोग की स्वच्छंदता लगभग हर जगह अर्थ की सघनता के लिए है (लगभग का प्रयोग उनकी काव्यभाषा के प्रति किसी अतिरंजनामय दृष्टिकोण की संभावना को समाप्त करने के लिये है ।), पांडित्य-प्रदर्शन के अभिप्राय से नहीं । कवि ने " भ्रम-भ्रमरों " का अर्थ टिप्पणी में किया है - भ्रम में पड़े हुए लोग - संस्कृत भाषा की " भ्रम् " धातु भटकने ", " घूमने ", " चक्कर लगाने " का अर्थ देती है । स्वयं " भ्रमर " शब्द में भटकने की क्रिया का आभास निहित है । यहाँ " भ्रम-भ्रमरों " के प्रयोग में संस्कृत धातु भ्रम् के अर्थ और " भ्रमरवृत्ति " (भटकाव) दोनों का सन्निवेश है । चूँकि प्रसंग माया के आकर्षण जाल का है, अत: यह प्रयोग और सार्थक प्रतीत होता है ।

तुलसीदास रत्नावली के प्रति आसक्ति को ही जीवन का केन्द्रीय तत्व मान बैठते हैं :-

उस प्रियावरण प्रकाश में बँध,
सोचता,-" सहज पड़ते पग सध ;
शोभा को लिए अर्थ औ अघ " घर-बाहर,
वह विश्व सूर्य, तारक-मंडल
दिन, पक्ष, मास, ऋतु वर्ष चपल
बँध गति प्रकाश में युत सकल पूर्वापर ।"

---

१) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा, पृ० ८०

एक-एक शब्द को कवि किस सावधानी से संयोजित करता है, यह उल्लेखनीय है। तुलसीदास का नारी के प्रति आकर्षण वास्तविक प्रेम नहीं, मोह है -" प्रियावरण प्रकाश " - प्रिया का वास्तविक प्रकाश नहीं। ऐसा मोह-आविष्ट मन अगर यह सोचे - सहज पड़ते पग सघ - तो कोई आश्चर्य नहीं। सांस्कृतिक ह्रास को अंकित करते हुए पहले कवि लिख चुका है -" अपने ही मन को यों प्रति मन है छलता।" तुलसीदास की स्थिति इससे भिन्न नहीं है, और इस दृष्टि से उनका मोह पहले चित्रित देश-व्यापी चेतना के स्खलन का ही प्रतिरूप है। भ्रमित मन अपने आपको किस प्रकार तर्क से संतुष्ट करता है, यह निम्न छंद में द्रष्टव्य है :-

बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति ?
गतिहीन जीव को कहाँ सुरति ?
रति-रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति -केवल क्षति ;
यह क्रम-विनाश ; इससे चलकर
आता सत्वर मन निम्न उतर
छूटता अंत में चेतन स्तर, जाती मति।"

तुलसीदास को मोह का बंधन ही सत्य प्रतीत हो रहा है। मोह से रहित जीवन उनके लिए गतिहीन है। उनके तर्क की चरम सीमा देखिए - " रति -रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति, केवल क्षति," -" रति" शब्द यहाँ अर्थ की जो -छायाएँ उद्भुत करता है, वे उसके अन्य पर्याय में से विवृत नहीं हो सकती थीं।" रति" में शारीरिक चेष्टा, संभोग-भाव की जो व्यंजनाएँ हैं, वे तुलसीदास की साम्प्रतिक मोह-परवश स्थिति से जुड़ जाता है।" क्षति " का प्रयोग भी शरीर-सुख को एकान्तिक महत्व देनेवाले तुलसीदास की इस मनःस्थिति के अनुरूप है। केवल क्षति -केवल क्षति" की आवृत्ति उनकी मिथ्या तर्क-वृत्ति को बल देती है।

इसी प्रकार के तर्कों से अपने आकर्षण -भाव को संगत सिद्ध करते हुए तुलसीदास की स्थिति को कवि कामदेव के मादक चित्र द्वारा यथार्थ रूप में अंकित करता है :-

"सोचता कौन प्रतिवश-चेतन-
वे नहीं प्रिया के नयन, नयन ;

वह केवल वहाँ मीन-केतन, युवती में ;
अपने वश में कर पुरुष-देश
है उड़ा रहा ध्वज-मुक्त केश ;
तरुणी-तनु आलम्बन -विशेष,पृथ्वी में ।

प्रस्तुत छंद निराला के भाषा-प्रयोग का एक श्रेष्ठ उदाहरण है । चेतना-शून्य मनुष्य भला क्यों सोचे कि उसका मोह भ्रम है, सत्य नहीं । तुलसीदास नारी के जिन नेत्रों में लोकोत्तर प्रभाव के दर्शन करते हैं, वे नेत्र वास्तविक ज्ञान के नेत्र नहीं हैं । वहाँ केवल कामदेव का वास है, जो अपने वासनामय रूप द्वारा मनुष्य को कर्त्तव्य-पथ से विचलित करता है । शब्द-प्रयोग की सजगता देखिए-' वह केवल वहाँ मीन केतन, युवती में ।' युवती में वह केवल मछली की ध्वजा वाला काम है, आँखें मछली हैं, और ध्वजा-रूप केश हैं । तुलसीदास को अपनी ओर खींचकर रत्नावली में स्थित वह कामदेव उसके केश-रूपी अपनी ध्वजा उड़ा रहा है । तरुणावस्था के सघन आकर्षण की व्यंजना में यह प्रयोग सदाम है -' तरुणी-तनु आलम्बन-विशेष, पृथ्वी में ।' युवती का शरीर कामदेव के लिए विशेष आलम्बन है ।

तुलसीदास के तर्कों का खोखलापन कवि इतने विस्तार से, विविध बिंबों में प्रस्तुत कर रही है, यह भी साभिप्राय है । लक्ष्य तुलसीदास नहीं है, लक्ष्य है - सांस्कृतिक चेतना से शून्य , विलासिता के गर्त में गिरी तत्कालीन जनता । सार्वभौम स्तर पर हर दिग्भ्रमित पंगु संस्कृति की खामियों का चित्रण निराला का लक्ष्य हो सकता है । आगे वे कहते हैं :-

वह ऐसी जो अनुकूल युक्ति
जीव के भाव की नहीं मुक्ति
वह एक मुक्ति,ज्यों मिली शुक्ति से मुक्ता
जो ज्ञानदीप्ति ,वह दूर, अमर
विश्व के प्राण के भी ऊपर
माया , वह, जो जीव से सुघर संयुक्ता ।

तुलसीदास की इच्छाओं के अनुकूल जो जीव की मुक्ति के लिए नहीं है । शुक्ति से मिलित मुक्ता कुछ नहीं होती, उसी प्रकार तुलसीदास के भाव भी

भोग के लिये हैं, वे मुक्त नहीं हैं । वास्तविक ज्ञानालोक इस स्थूल भाव के परे है ।

पत्नी के प्रति इतनी गहन आसक्ति से बँधे तुलसीदास के जीवन में एक मोड़ आता है । एक दिन रत्नावली का भाई अपनी बहन को घर ले जाने के लिए आता है । कथा के स्थूल अंश का निर्वाह वर्णन नितान्त टकसाली भाषा में कवि करता है । रत्नावली के भाई का यह आत्मीय आक्षेप भाषा की रवानगी के कारण बहुत स्वाभाविक बन पड़ा है :-

" हो गई रतन कितनी दुर्बल
चिन्ता में बहन, गई तू गल ?
माँ, बाबूजी, भाभियाँ सकल पड़ोस की
है विकल देखने को सत्वर
सहेलियाँ सब ताने देकर
कहती हैं, बैठा वर के कर, आ न सकी ।"

भाषा के एकान्तिक आभिजात्य के निकट जनसामान्य से जुड़ी हुई भाषा के इस रूप का प्रयोग निराला के शिल्पगत दोहरे रचाव का द्योतक है ।" यहाँ ताने देकर " बैठा वर " के कर " जैसे प्रयोग भाषा- शैथिल्य के सूचक नहीं हैं, अपितु वर्ण्य-स्थिति और वर्णन की समानुरूपता के प्रतिफलन हैं ।

बहुत छोटे शब्द-प्रयोग भाषा की समाहार शक्ति में कितनी वृद्धि कर देते हैं, इसका प्रमाण ६४वें छंद में " कुंकुम-शोभा " प्रयोग में देखा जा सकता है -

बोली भाभी, लाना कुंकुम-शोभा की ।

रत्नावली के लिए " कुंकुम-शोभा " का यह बिंब उसके सौभाग्य , श्री की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है, और समग्र छंद को अपनी आभा से आलोकित करता है । यहाँ कला-चेष्टा और सहजता का समन्वय उल्लेखनीय है, जिसके कारण रत्नावली की भाभी का यह प्रयोग मार्मिक कथन में संक्रमित हो जाता है, और वस्तु एवं बिंब का संयुक्त रूप प्रस्तुत करता है । शब्दों की प्रवण-शीलता ऐसे अंशों में देखी जा सकती है ।

मानव-हृदय में विरोधी भावों की एक साथ अवस्थिति के चित्रण की दृष्टि से छायावादी कवियों में प्रसाद सिद्धहस्त हैं। विशेषत: उनकी 'कामायनी' में इस स्थिति के चित्र बड़ी संख्या में हैं। निराला ने रत्नावली के मन में उठते दो परस्पर विपरीत भावों की टकराहट में एक भाव की विजय का बड़ा संश्लिष्ट रूप निम्न बिंब में प्रस्तुत किया है -

उस प्रतिमा का, आया तब खुल
मर्यादागर्भित मर्म विपुल,
धुल अश्रु-धार से हुई अतुल छवि पावन,
वह घेर-घेर निस्सीम गगन
उमड़े भावों के घन पर घन,
फैला, ढक सघन स्नेह-उपवन, यह सावन।

एक ओर रत्नावली अपने पति के प्रति सघन से भरी हुई है, दूसरी ओर पिता के परिवार की ममता भी उसे बाँधे हुए है। भाई के उलाहने उसे और भी संकुचित कर देते हैं। अन्तत: परिवार की ममता विजय पाई। भावों के सावनकालीन बादलों ने रत्नावली के हृदय -रूपी निस्सीम गगन को घेर लिया। प्रिय के स्नेह का उपवन उन बादलों द्वारा ढक दिया गया। अन्तिम चार पंक्तियों की गतिशीलता में रत्नावली के आन्दोलित भाव सजीव हो उठे हैं।

रत्नावली अपने कन्या-धर्म की मर्यादा-निर्वाह के लिए भाई के साथ पितृ-गृह जाने को उद्यत हो जाती है। उसकी आंतरिक ग्लानि और उसके उन्मोचन के प्रयास को कवि ने एक पौराणिक बिम्ब में रूपायित किया है :-

फिर पृथ्वी है जिसकी वधीण वह सीता,
अंक में उसी के व्याप्त लीन -
निज मर्यादा पर समासीन,

डॉ॰ प्रतिभा कुलश्रेष्ठ ने इस बिम्ब की प्रसंग - प्रतिकूलता पर आपत्ति प्रकट की है - इस छंद में ग्लानि-पीड़ित रत्नावली की मन:स्थिति को सबल बनाने के लिए निराला ने सीता के भूमि-गर्भ में विलीन होने का जो बिम्ब

प्रस्तुत किया है, वह प्रसंगानुरूप न होने के कारण कथ्य को उसकी संपूर्णता में रूपायित न कर उसे और अधिक उलझा देता है, फलतः कवि का अभीप्सित बिम्ब सहृदय के मन पर समनुरूप प्रभाव-छवि अंकित नहीं कर पाता।[१]

यह ठीक है कि इस प्रसंग में सीता के पृथ्वी में धँसने का बिम्ब कुछ जटिल प्रतीत होता है, किन्तु रत्नावली के ग्लानि-भाव और मर्यादा-निर्वाह की उसकी चेष्टा को बहुत गहरा रंग देता है। कामुकता के स्तर पर उतर आई तुलसीदास की आसक्ति और पूरे पितृ-कुल एवं पास-पड़ोस की आक्षेप-पूर्ण प्रतिक्रिया की पृष्ठभूमि में रत्नावली की यह द्विधाग्रस्त स्थिति सामान्य से कुछ अधिक ऊपर उठ जाती है और इस दृष्टि से उसको अंकित करनेवाला यह पौराणिक बिम्ब सटीक प्रतीत होता है।

ऐसे जटिल बिम्बों के बीच अभिव्यक्ति का यह धरातल भी दर्शनीय है, जो निराला की काव्य-भाषा की विशिष्ट समाहार-शक्ति का प्रतीक है :-

लेते सौदा जब खड़े हाट,
तुलसी के मन आया उचाट ;
सोचा, अब के किस घाट उतारें इनको ;
जब देखो, तब द्वार पर खड़े,
उधार लाये हम, चले बड़े !
दे दिया दान तो खड़े पड़े अब किनको !

रत्नावली के भाई को कैसे वापिस घर भेजने के लिए तुलसीदास किसी उपाय की तलाश में है, किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम है कि रत्नावली अपने भाई के साथ उनकी अनुपस्थिति में चली गई है। इस वास्तविकता की पृष्ठभूमि में तुलसीदास द्वारा उपाय-कौशल की सोच (" सोचा, अबके किस घाट उतारें इनको") बड़ी विनोदपूर्ण हो जाती है। भाषा की यह मुहाविरेदानी इस विनोद को गहरा रंग देती है।

---

१) छायावाद का काव्य-शिल्प, पृ० ३६३

घर आकर वस्तुस्थिति से अवगत होने पर उनके भावुक मन को ठेस लगती है। पत्नी से दूरी बहुत असह्य हो जाती है, और इस दूरी में उसके प्रति आकर्षण और सघन हो जाता है। संगीत की तान का बिंब लेकर 'निराला' इस मनोवैज्ञानिक सत्य को अंकित करते हैं :-

वह आज हो गई दूर तान,
इसलिए मधुर वह और गान,

तान के दूर होने पर गीत अधिक प्रिय लगता है, तुलसीदास का मन पत्नी के दूर हो जाने से मोह का अधिक अनुभव करने लगा। फलत: वे पत्नी के पितृ-गृह चल देते हैं। पति के इस अप्रत्याशित और अशोभनीय से रत्नावली का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। परिवार के सदस्यों की कानाफूसी और भाभी के तीखे व्यंग्य (" यह पहलवान रतन की") ने उस क्षोभ में ग्लानि का भी समावेश कर दिया। रत्नावली की मानसिक स्थिति को कवि ने द्रौपदी के रूपक में बड़ी सटीक अभिव्यक्ति दी है :-

बोली मन में होकर अदाम
रक्खो, मर्यादा पुरुषोत्तम !
लाज का आज भूषण, अक्लम नारी का ;
खींचता और, यह कौन ओर,
पैठा उसमें जो अधम चोर !
खुलता, बस अंचल, नाथ, चीर साड़ी का !

इस छंद के 'अदाम' और 'अक्लम' शब्दों पर भी कृष्णकिशोर चतुर्वेदी ने आपत्ति प्रकट की है -' अदाम' और अक्लम ' व्यर्थ के शब्द ठूँसे गये हैं। 'अदाम' का अर्थ असमर्थ और 'अक्लम' का अर्थ न थकनेवाला किया गया है।[१]

किन्तु यह आपत्ति असंगत है। रत्नावली की विवशता को व्यंजित करने के लिए' अदाम ' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस नाजुक स्थिति का सामना करना नव-परिणीता रत्नावली के लिए एक समस्या है।' मर्यादा पुरुषोत्तम'

---

१) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा, पृ० ५०

का संबोधन मर्यादा-हरण के प्रसंग में सर्वथा उपयुक्त है । नारी का लाज का भूषण अक्षुण्ण रहे, यही उसकी कामना है । रत्नावली किंकर्तव्यविमूढ़ है, तुलसीदास के मन में कौन-सा चोर पैठा हुआ उनके वस्त्रों को खींच रहा है ? टिप्पणी में इस रूपक को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है -" मोह का चोर दुःशासन है, रत्नावली द्रौपदी है, जिसका चीर खींचा जा रहा है ।[१] श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी इस व्याख्या से असंतुष्ट होकर निराला के भाषा-प्रयोग पर आक्षेप करते हैं -" ऐसे कहिए, तो बेहतर होगा कि छायावाद का कवि दुःशासन है, भाषा द्रौपदी है, जिसका चीर खिंचता चला जा रहा है ।"[२]

वस्तुतः लाज-हरण के प्रसंग में द्रौपदी के चीर-हरण का रूपक बिलकुल सटीक है, अतः इस आधार पर निराला या छायावादी काव्यभाषा पर खींच-तान का आरोप लगाना समीचीन ही नहीं है ।

शयन-कक्ष में तुलसीदास रत्नावली का एक नवीन रूप देखते हैं :-

कवि-रुचि में घिर छलकता रुचिर
जो, न था भाव वह छवि का स्थिर
बहती उलटी ही बाण रुधिर-धारा वह,
लख-लख प्रियतम-मुख पूर्ण इन्दु
लहराया जो उर-मधुर सिन्धु,
विपरीत ज्वार, कण-बिन्दु-बिन्दु द्वारा वह

एक ओर तुलसीदास का आसक्ति-परवश भाव है, दूसरी ओर रत्नावली का तीव्र मानसिक उद्वेलन है ।" बहती उलटी ही बाण रुधिर-धारा वह " उसके उद्वेलन को मूर्त कर देता है । बाल उर-सिन्धु में प्रिय-इन्दु के दर्शन से विपरीत ज्वार उमड़ रहा है, क्यों क्षोभ है, स्निग्धता नहीं । बिंब-विधान का परंपरित रूप लेकर भी कुशल कवि किस प्रकार उसे नये संदर्भ से आलोकित कर देता है, यह प्रस्तुत छंद में देखा जा सकता है । इन्दु और सिंधु का परंपरागृहीत रूप लेकर निराला विपरीत ज्वार के सटीक आरोपण द्वारा अपने मन्तव्य-बोध को

---

१) तुलसीदास, पृ० ८८

२) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा, पृ० ८७

निरस्त करने को कटिबद्ध रत्नावली के प्रखर व्यक्तित्व के अंकन - में कृतकाम होते हैं ।

तुलसीदास इस नवीन रूप को देखते भर हैं, समझ नहीं पाते, उनके मानस में अभी भी रूप का आकर्षण ही अन्तर्व्याप्त है । रत्नावली ने अपने आपको संकल्पबद्ध कर लिया है, उसका स्थूल रूप एक विराट् सूक्ष्मता में परिणत हो जाता है :-

बिखरीं छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन - नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता;
नि:संबल केवल ध्यान - मग्न
जागी योगिनी अरूप-लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रियभाव -मग्न निरुपमिता ।

सूक्ष्म स्तर पर स्त्री के जागरण का यह चित्र संपूर्ण आधुनिक काव्य में दुर्लभ है । शक्ति-उपासक निराला इस प्रखर व्यक्तित्व के अंकन के लिए सर्वथा समर्थ थे । वे रूप को ही नहीं, अरूप को भी पकड़ लेते हैं । भाव-शून्य, निस्संग रत्नावली बिना किसी सहारे के सत्य की साधना में लीन है । तुलसीदास के चंचल मन के सम्मुख रत्नावली का यह विराट् योगिनी रूप द्रष्टव्य है -" वह खड़ी शीर्ण प्रिय भाव -मग्न निरुपमिता । स्वर में झर-झर जीवन भर कर रत्नावली पति को प्रबोधित करती है :-

" धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए ।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम ।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए ?

कोरे वेदान्तियों पर यह तीखा व्यंग्य है ।" राम के नहीं काम के सूत कहलाए " में " सूत " शब्द तुलसीदास की निम्नस्तरीय वासना-वृत्ति की व्यंजना करता है । वे " सूत " हो गए हैं - अनुचर, पराधीन - उनका स्वतंत्र

व्यक्तित्व नहीं रहा । तुलसीदास रूप के इस अरूप-परिवर्तन से स्तब्ध हो जाते हैं । उनके आन्तरिक सुप्त संस्कार जागृत हो उठते हैं और तब उनकी दृष्टि रत्नावली के रूप में तेज-पुंज के दर्शन करती है :-

देखा, वामा वह न थी, अनल प्रतिमा वह,

इसके पूर्व, प्रकृति-दर्शन से प्रभावित तुलसी-मानस का ऊर्ध्व संचरण नारी के कामिनी रूप से अवरुद्ध हो गया था । तब उन्हें रत्नावली में " वामा " का रूप दृष्टिगोचर हुआ था :-

वामा इस पथ पर हुई वाम, सरितोपम !

और अब नारी-उद्बोधन से उत्प्रेरित उनकी चेतना को वही " वामा "" अनल-प्रतिमा " प्रतीत हुई । यह एक सुखद विडम्बना है कि नारी का मोह उन्हें कर्तव्य से विचलित कर बैठा था और अब उसका तेजदीप्त व्यक्तित्व उन्हें ऊर्ध्व दृष्टि प्रदान करता है । पत्नी को सरस्वती रूप में वे देखते हैं । इस तरह की विराट् कल्पना " राम की शक्ति-पूजा " में पर्वत में पार्वती रूप की अवतारणा द्वारा उद्भूत हुई है । इस दिव्य भाव के फलस्वरूप तुलसीदास एक बार फिर ऊर्ध्व-संचरण करते हैं :-

दृष्टि से भारती की बँध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर ;
केवल अम्बर - केवल अम्बर फिर देखा ;
धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि-ताराहर,
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर क्षर-रेखा ।

इस ऊर्ध्व क्षेत्र का अनुभव धूमायमान धुएँ के समुद्र के अनुभव से जुड़ा हुआ है । सीमाओं के अवसान का बड़ा मार्मिक रूपायन शब्दों में कवि ने किया है ।" केवल अंबर" की आवृत्ति विराट्-भाव के अंकन के लिए अतुलनीय है । रंगीन शब्द-अम्बों का एकान्त लोप इस बात का सूचक है कि कवि ऊर्ध्व-संचरण के अनुभव से बड़ा गहरा तादात्म्य स्थापित कर चुका है, वह शब्दों की रंगीनी

में सूक्ष्मानुभावों का मिथ्याभास नहीं प्रस्तुत कर रहा है। तुलसीदास की मुक्त स्थिति का अनुभवपरक अंकन निम्न छन्द में हुआ है :-

'थे मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित ;
अपनी असीमता में अवसित प्राणाशय।
जिस कलिका में कवि रहा बंद,
वह आज उसी में खुली मंद,
भारती-रूप में सुरभि-छंद निष्प्रश्रय।

उनके बाह्य नेत्र मुँदे हुए थे, पर ज्ञान-नेत्र जाग्रत थे। प्राणों के तादात्म्य को संवेद्य बनाने के लिए कली में निहित सौरभ की उपमा सटीक है। उनकी सरस्वती के मुखरित होने का अंकन बड़ी सुकुमार रीति से हुआ है। यह जागरण संपूर्ण जगत् को प्रभावित कर देता है, एक अनोखा मुक्ति-भाव उद्भूत होता है। शब्दों में भी आन्तरिक उल्लास का स्पंदन हो रहा है -

बाजी बजती लहरें कल-कल
जागे भावाकुल शब्दोच्छल,
गूँजा जग का कानन-मण्डल, पर्वत-तल ;
सूना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित, दूना,
आतुर भावों से जो भूना, था निश्चल

जागरण के प्रभात का चित्र कवि की मौलिक कल्पना से अनुप्रेरित है -

जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
भरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल ;
बाँधो बाँधो किरणें चेतन ;
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमा बल।'

भारत का सांस्कृतिक जागरण जैसे इन शब्दों में समाहित हो गया हो । पूर्वाचल के ज्योतिर्मय प्रपात भरने में चेतना के स्फुरण की व्यंजना है । " बाँधो, बाँधो, किरणें चेतन " बड़ा सुन्दर प्रयोग है - जैसे कवि इंगित करता है कि सर्जनशील जीवन चेतना को अपने भीतर आत्मसात् कर ले । आगे जड़ और चेतन के संघर्ष में चेतन की विजय को कवि ने पूरे आत्मविश्वास से अंकित किया है :-

होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ का चेतन से निशिवासर,

" रामचरितमानस " में वर्णित राम तथा रावण के रूप में दो संस्कृतियों - चेतन और जड़ - के संघर्ष की व्यंजना है । इसी संदर्भ में निराला जैसे कवि - कर्म की चरम परिणति को भी स्वर देते हैं । कोरी तुकबंदी ,और कला-वैभव से ऊपर उठकर कवि को अपनी सर्जना में विश्व-जीवन की चेतना को मुखरित करना है । अनुभव और भाषा की एकरूपता के उदाहरण-स्वरूप ये दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

निश्चेतन, निज तन मिला विकल
छलका शत-शत कल्मष के छल
बहतीं जो, वे रागिनी सकल सोएँगी ;

यहाँ शब्दों के बेरोक बहाव में जैसे सचमुच चेतना का उत्स प्रवाहित हो रहा है, जो छल की रागिनी के प्रवाह को अवरुद्ध करनेवाला है । आगे इसी प्रसंग में कवि एक प्रभविष्णु बिंब प्रस्तुत करता है -

तम के अमार्ज्य रे तार-तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश-धार ;
जग-वीणा के स्वर के बहार रे, जागो ।

" देश-काल के शर से बिंध कर अशेष छविधर कवि " जाग गया है। इस जागरण के फलस्वरूप " तम के अमार्ज्य तार-तार " पर प्रकाश की किरणें पड़ गई हैं । जीवन के स्पंदन से ओत-प्रोत इस जग-वीणा के तारों से बसंत (जो नव-जीवन का प्रतीक है) की रागिनी निःसृत होगी ।

तुलसीदास" काव्य में" तम" शब्द का कवि ने कई प्रकार से उपयोग किया है -" तमस्तूर्य " तम की तुरही (छंद सं० १)" तम का आसव " तम की मदिरा (छंद सं० ३१)" तम के अमाज्य तार-तार " - तम के न मार्जन योग्य तार-तार (प्रस्तुत छंद में) । विनिफ्रेड नवाटनी ने रूपक की प्रकृति पर विचार करते हुए बड़ी संगत बात कही है कि रूपक उन वस्तुओं को कहा जा सकता है, जो हमारी भाषा के विद्यमान मूलार्थक शब्दकोश में पहले से प्रयुक्त नहीं हुई हों[1]

" तम" के इन विविध रूपकात्मक प्रयोगों को हम लें, तो यही बात पायेंगे । सामान्य शब्दकोष में न तो तम की तुरही जैसा प्रयोग है, न तम का आसव और न ही तम के अमाज्य तार तार का । लेकिन सामान्य भाषा की तुलना में ये लाक्षणिक प्रयोग अर्थ को कितनी गहनता और विस्तार देते हैं, यह उल्लेखनीय है । एवं तम " शब्द निराला द्वारा प्रयुक्त इन विविध संदर्भों में विविध अर्थ - छायाएँ उद्भूत करता है । वैसे भी" तम " शब्द अर्थ की दृष्टि से इतना लचीला और व्यापक है कि उसमें अंधकार, पतन, तमतत्व, राहु, अज्ञान, वासना, मोह - का समावेश हो जाता है । इस रूप में इन विविध अर्थ-छायाओं का पोषण" तम" का दूसरा पर्याय" अंधकार " नहीं कर पाता ।" तमस्तूर्य " में अंधकार के विजय-पर्व का चित्र है," तम का आसव " में खुमारी , विलासिता, वासना की छायाएँ हैं," तम के अमाज्य तार तार" में गहन अंधकार-सूक्ष्म स्तर पर पंचीभूत अज्ञान की दुर्निवार शक्ति - की व्यंजना है ।" तम के अमाज्य तार तार" पंक्ति में" अमाज्य" और तार-तार" शब्द विश्लेषणीय है ।" अमाज्य" में बद्धीभूत हो गए अंधकार की गहरी व्यंजना है ।" अमाज्य " का निषेधात्मक प्रयोग इस अमार्जन के भाव को बढ़ देता है ।" तार तार" में भी यह ध्वनि है कि पूरी वीणा में कहीं भी स्पंदन का अवशेष नहीं है, उसके सारे तार मौन हो गए हैं । यह आवृत्ति (" तार तार ") निराला की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियों की याद दिला देती है :-

---

1. A metaphor is thus a set of linguistic directions for supplying the sense of an unwritten literal term. (This is why metaphor can 'say' thing not provided for in the existing literal vocabulary of our language.) We should note that metaphor directs us to the sense, not to the exact term.
THE LANGUAGE POETS USE. p.59.

वृद्ध जटा-मुकुट, हो विपर्यस्त, प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल ।[१]

राम के जटा-मुकुट उनके शरीर पर फैल गये हैं, इस फैलाव को चित्रात्मकता और सघनता देने के लिए कवि ने शरीरावयवों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है - पृष्ठ पर, बाहुओं पर वक्ष पर, विपुल । ठीक इसी प्रकार " तार तार " के प्रयोग में अंधकार के प्रसार को बल मिला है । इस निविड़ अज्ञानांधकार से उत्तीर्ण होती कवि-वाणी को उद्बोधित करते हुए निराला एक गहरी बात कहते हैं -
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर माँगो ।

कवि यहाँ सही माने में उदार संस्कृति का रूप प्रस्तुत कर रहा है, वह संस्कृति, जो पहले देकर तब कुछ लेती है । पतन की गहरी पहचान और उसके विस्तृत चित्रण के निकट सांस्कृतिक दासता की यह कल्पना वही कवि कर सकता है, जिसने कोरी भावुकता और आवेशपूर्ण नारेबाज़ी से ऊपर उठकर बड़ी सूक्ष्मता से संस्कृति की पुष्ट चेतना का अनुभव किया हो ।" तुलसीदास " के संदर्भ में निराला की इस उपलब्धि का सही मूल्यांकन डॉ० रामरतन भटनागर ने किया है —" पतनोन्मुख संस्कृतियाँ लेती ही अधिक हैं, देती कुछ नहीं । यह विषम स्थिति होती है । कवि इस विषम स्थिति से राष्ट्र को उबारना चाहता है ।"[२] इस अविचलित संकल्प के साथ तुलसीदास रत्नावली से विदा माँग कर आलोक का प्रसार करने के लिए विश्व-जीवन में सम्मिलित होते हैं । वे अपनी पत्नी का जो भव्य चित्र अब देखते हैं, उसमें जैसे उनके आगामी और गौरवपूर्ण जीवन की झलक है । निराला ने " शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य " के अस्तमित होने से काव्य का प्रारंभ किया था, उसकी समाप्ति " पुष्कल रवि - रेखा " के चित्र में होती है " जो काव्य की संपरनागत एकता का सूचक है, और जो " राम की शक्ति-पूजा " के विधान से सहज तुलनीय है (" रवि हुआ अस्त " : " होगी जय होगी जय ----")

वह अन्धकार बाहर आकर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा -

---

१) राम की शक्ति-पूजा
२) निराला और नवजागरण, पृ० १०४

संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा ।

इस लाक्षणिक वर्णन में कवि ने जैसे व्यक्तित्व के विस्तार, संस्कृति की चेतना, जागरण की जय-यात्रा को समेट लिया है । इतने सूक्ष्म स्तर पर, कविता के अनुभव को दाग़ किये बिना, व्यक्तित्व के विघटन और उन्नयन का यह सांगोपांग निर्वाह निराला के अद्भुत निर्माण-सौन्दर्य और शक्ति का प्रतीक है ।

("कुकुरमुत्ता")

"गीतिका", "राम की शक्ति-पूजा", "तुलसीदास" के भाषागत आभिजात्य के बाद "कुकुरमुत्ता" की ठेठ शब्दावली पर आधारित भाषिक संरचना निराला-काव्य-और साथ ही आधुनिक हिन्दी काव्य-का एक सुखद आश्चर्य है, जिसमें काव्यभाषा को समस्त आभरणों से मुक्त कर अधिक स्वायत्त, आत्मनिर्भर और यथार्थग्राही बनाने की पहली महत्वाकांक्षी और साहसिक कोशिश है । पिछली तीनों रचनाओं में सर्जनात्मकता को विकसित करने के लिए शब्दों के तत्सम रूपों को गहन अध्यवसाय के बल पर, रखने की प्रवृत्ति है, और पराकाष्ठा पर पहुँची हुई इस प्रवृत्ति की व्याति-पूर्ति "कुकुरमुत्ता" करता है । "व्याति-पूर्ति" शब्द का प्रयोग इन रचनाओं के आभिजात्य — जो वस्तुत: सर्जनात्मक है - की अवमानना करने के उद्देश्य से नहीं किया गया है, वरन् अति की सीमा पर जाकर तत्सम शब्दावली के प्रयोग- फिर भले ही वह कितना भी स्पृहणीय क्यों न हो - पर नियन्त्रण रखते हुए, और इस प्रकार काव्यभाषा को गतिशीलता प्रदान करते हुए अभिव्यक्ति के सामान्य धरातल की क्षमता को प्रकाशित करने के लिए किया गया है ।

"कुकुरमुत्ता" का भाषा-प्रयोग निराला के प्रौढ़ियुक्त काव्य के

भाषागत आदर्श का विलोम होता हुआ भी उसका विरोधी नहीं कहा जा सकता, जैसा कि दूधनाथ सिंह ने "कुकुरमुत्ता" की भाषिक संरचना का नढ़िया विश्लेषण करने के बावजूद - कदाचित् पुराण-शैली का आश्रय लेने के कारण - उसके नए शब्द प्रयोगों की प्रशंसा करते हुए कहा है -" यह चुनौती या शब्द-संसार से यह संघर्ष और यह विजय अप्रतिम है, क्योंकि यह संघर्ष दूसरों की अपेक्षा अपने ही द्वारा अर्जित, आविष्कृत और सफलतम रूप में प्रयुक्त शब्द-बंध के विरुद्ध है ।[१] -

सच तो है यह कि जब किसी कवि में एक ही काल में या विभिन्न कालों में - भाषा के विविध स्तर कार्यशील दिखाई देते हैं, और साथ ही उन विविध स्तरों में संवेदना के लिहाज़ से आन्तरिक अनुशासन निहित रहता है, तो यह सीमित दायरे में न बँधकर अपना उन्मुक्त प्रसार करनेवाली उसकी प्रतिभा को सूचित है । विज्ञान की सामान्यत: विरोधी प्रकृति की तुलना में साहित्य की इस संपृक्ति को ध्यान में रखने पर निराला के आरंभिक क्लैसिकल काव्य और "कुकुरमुत्ता" में परस्पर विरोध नहीं प्रतीत होगा, वरन् यथार्थ (यहाँ यथार्थ के सीमित अर्थ सामान्यता-नग्नता के बजाय उसके व्यापक अर्थ-समूची वास्तविकता — से आशय है) की पकड़ के रूप में दोनों एक दूसरे के पूरक सिद्ध होंगे ।

एकबारगी इस कथन में विसंगति प्रतीत हो सकती है, लेकिन वास्तव में "कुकुरमुत्ता" अपनी विषय-वस्तु और भाषिक संरचना में कवि पूर्ववर्ती महत्वाकांक्षी प्रयोग "तुलसीदास" की याद दिला देता है । "तुलसीदास" में जर्जरित संस्कृति की सुरक्षा की समस्या है, उसके उदात्त-सूक्ष्म मूल्यों में केन्द्रीकरण का प्रश्न है, और उसी के अनुरूप संस्कारशील शब्दों की अर्थ-गरिमा को सोच्छीन कर प्रस्तुत करने की रचनात्मक आकुलता है । "कुकुरमुत्ता" में काव्य के परंपरित मानदण्ड के अनुसार वर्जित और इसलिए एक कवि के लिए - जो प्रतिष्ठित भी हो - खतरनाक चुनौती के रूप में नाम से ही नगण्य, "कुकुरमुत्ता" जैसी नगण्य वस्तु की अवतारणा है - भाषिक आभिजात्य के सभी उपादानों - सुघर शब्दावली सुकुमार छन्द, लोकार लय - की एकान्तिक उपेक्षा के साथ । निश्चय ही इसके

---

१) "कुकुरमुत्ता", काव्य आभिजात्य में मुक्ति, पृ० ३२ ।

प्रणयन का साक्ष्य बधिर विश्व के कानों में बारबार अपना राग भरनेवाला निराला का विराट् बादल व्यक्तित्व कर सकता था । 'कुकुरमुत्ता' में सामान्य-अकिंचन को उसकी सारी क्षुद्रताओं विशालताओं के साथ निराला ने उघाड़ा है, और जीवन की पुनर्रचना की कोशिश में जो भाषा प्रस्तुत की गई है, वह उपेक्षित जनसामान्य के जीवन से रची गई है । भाषिक संरचना की दृष्टि से 'तुलसीदास' और 'कुकुरमुत्ता' अपने विरोध में समान हैं ।

प्रयोगशील कवि ने अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि के जिस धर्म को उद्घाटित किया है, वह इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

> इसको न ज़रूरत आज देववाणी की, हम खुद ढालेंगे
> जीवन की भट्टी में भाषा, जो भाषा रूप बना लेंगे ।
>
> (तारसप्तक : अपने कवि से कविता - भारतभूषण अग्रवाल)

जीवन की भट्टी में निर्मित भाषा की शुरुआत 'कुकुरमुत्ता' के साथ होती है । हास्य और व्यंग्य के आवरण में कुंठरीली और शायद इसीलिए तनाव के कारण अधिक जोरदार 'कुकुरमुत्ता' की रचना क्रान्तिम है । इस दृष्टि से निराला के समानधर्मा कवि सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा निराला-काव्य का उत्कृष्ट, मध्यम और साधारण कोटियों में विभाजन और 'कुकुरमुत्ता' के लिए उनका यह कथन-उनकी (निराला की) कुकुरमुत्ता की रचना अधिकतर उनके मन की कुण्ठा तथा तिक्तता की ही परिचायक है[2] - असंगत है ।

'कुकुरमुत्ता' का रचना-विधान बेजोड़ है । एक नवाब की बाड़ी में अनगिनत फूलों (जिनमें फ़ारस के गुलाब भी हैं) के बीच गन्दे में जुगा देकर उगे हुए कुकुरमुत्ता पर कवि की नज़र पड़ती है और उसके माध्यम से वह साधारण , महत्वहीन और उपेक्षित को उसकी पूरी लम्बाई में वैभित करता है । इस लेखन के मूल में निष्क्रिय दया या करुणा न होकर भरपूर तनाव और विनोद

---

१) छायावाद : पुनर्मूल्यांकन, पृ० ४७ ।

२) वही, पृ० ६६ ।

(जो आधुनिक भाव-बोध का वैशिष्ट्य है) का संयोग है। आरंभ में कवि का पैना वर्णन देखा जा सकता है -

एक सपना जा रहा था
साँस पर तहज़ीब की,
गोद पर तरतीब की ।

इस तहज़ीब-तरतीब के आगे आभिजात्य के सूचक विविध फूलों का उल्लेख है, जो नव्वाब की बाड़ी में अपने आप उगे नगण्य कुकुरमुत्ता की आत्म-निर्भरता और ठेठपन को रंग देते हैं। बाड़ी के इन फूलों की सपाट वर्णनात्मकता 'कुकुरमुत्ता' काव्य की सोद्देश्य गद्यात्मकता का प्रतिफलन है, वह कोरी इति-वृत्तात्मकता का पोषण नहीं करती। क्लैसिकल शैली के उत्कृष्ट प्रणेता निराला ने कुकुरमुत्ता की ठेठ देसी अकड़ को गद्यात्मक कलाकार के समूचे आत्मविश्वास के साथ अभिव्यक्त किया है -

आया मौसिम, खिला फ़ारस का गुलाब,
बाग पर उसका पड़ा था रोबोदाब;
वहीं गंदे में उगा देता हुआ बुत्ता
पहाड़ी से उठे-सर ऐंठ कर बोला कुकुरमुत्ता -
अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट ।'

यहाँ भाषिक संरचना के भी रूप द्रष्टव्य हैं, फ़ारस के गुलाब का अंकन फ़ारसी-उर्दू शब्दों के आभिजात्य में हुआ है, और नगण्य 'कुकुरमुत्ता' शब्दों के ठेठ प्रयोग में सजीव हो उठा है। 'अबे' और 'सुन बे' के तिरस्कार-सूचक संबोधनों में निहित ठेठ अंदाज़ ऐंठकर बोलनेवाले कुकुरमुत्ता का सीधा चित्रण संभव करता है। 'अशिष्ट' संबोधन की तल्खता 'कैपीटलिस्ट' के अंग्रेज़ी संबोधन के साथ मिलकर गहरे विरोधभाव की सृष्टि करती है। गुलाब-सूचक स्तर

पर अभिजात वर्ग - की पौरुषहीनता पर चोट करने के लिए निराला सामान्य जीवन से लिये गए दो बिंबों की नियोजना करते हैं -

हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर रखकर वे पीछे को भगा
औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर
तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर ,

यहाँ 'औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर' और 'तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर' जैसे बिंबों में निहित व्यंग्य-विनोद के ठेठ, बेलौस रूप की काव्यात्मक अर्थवत्ता अनदेखी नहीं की जा सकती ।

इसी तरह गुलाब पर कटाक्ष करते हुए कुकुरमुत्ता की मुखरता निम्न पंक्तियों में ऐतिहासिक संदर्भ के कारण विशेष प्रभावशाली हो गई है, जिसमें सौन्दर्य को परे करके उपयोगिता को महत्त्व दिया गया है -

चाहिये तुझको सदा मेहरुन्निसा
जो निकाले इत्र, रू, ऐसी दिशा
बहा कर ले चले लोगों को, नहीं कोई किनारा
जहाँ अपना नहीं कोई भी सहारा
ख्वाब में डूबा चमकता हो सितारा
पेट में डंड पेले हों चूहे, जबाँ पर लफ़्ज़ प्यारा ।

मेहरुन्निसा (नूरजहाँ का वास्तविक नाम) के प्रसंग ने एक अभिजात और विलासी परिवेश की अवतारणा कर दी है, जिससे 'कुकुरमुत्ता' के विनोद में एक अतिरिक्त रवानगी आ गई है । अंतिम दोनों पंक्तियों में तद्भव और उर्दू शब्दावली के मेल से गुलाब पर किया गया कशाघात एक काटते हुए व्यंग्य की सृष्टि करता है । गुलाब ऐसे समाज दिखलाता है कि लोग मुँह से रस की बातें करते हैं और पेट में चूहे डंड पेलते हैं । तथाकथित अकाव्यात्मक शब्दों की गहरी अर्थ-व्यंजकता देखने योग्य है - 'पेट में डंड पेले हों चूहे, जबाँ पर लफ़्ज़ प्यारा ।' आभिजात्य पर सीधा और करारा व्यंग्य करने का यह बिल्कुल ठेठ देसी अंदाज़ उल्लेखनीय है, जो गुलाब के माध्यम से विकृतिजनित सभ्यता के दुहरे रूपों पर सदा आक्रमण करता है ।

तद्भव शब्दों पर आधारित अज्ञेय की उत्तरकालीन काव्यभाषा की सर्जनात्मकता को सराहते हुए डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने तत्सम शब्द-प्रयोगों पर आधारित निराला की सर्जनात्मक काव्यभाषा की समकक्षता में उसे स्थान दिया है, जो सही हो सकता है। लेकिन जब वे कहते हैं -" छायावादी काव्यभाषा में निराला की शक्ति-सामर्थ्य सब से गहरी थी, पर उस तत्सम शब्दावली-प्रधान-भाषा की अपने आप में सीमाएँ भी थीं, जिनका अतिक्रमण करना परवर्ती कवि को अपने सर्जनात्मक संचरण के लिए ज़रूरी महसूस हुआ -" तो इस कथन का अंतिम अंश मान्य नहीं प्रतीत होता। तत्सम शब्दावली -प्रधान भाषा की सीमाओं का अतिक्रमण परवर्ती कवि को नहीं करना पड़ा, उसके पूर्व स्वयं इस तत्सम शब्दावली के कुशल प्रणेता ने ही उसका अतिक्रमण कर दिया था।" कुकुरमुत्ता "," नये पत्ते " और इनके साथ" अणिमा " की अनेक कविताएँ इस बात का प्रबल साक्ष्य है। इसीलिए यह कथन कुछ अतिरंजित-सा लगता है - और अज्ञेय की श्रेष्ठता इसमें है कि अपने नये ढंग से सर्जनात्मक शक्ति विकसित करके वे निराला से तुलनीय हो जाते हैं।[1]

वस्तुतः निराला की विकासशील भाषा चेतना तत्सम और तद्भव दोनों शब्दावली पर आधारित काव्यभाषा के प्रणयन में समान और सहज रूप से चल रही है, जिसके फलस्वरूप" प्रमापूर्व"," तमस्तूर्य"," स्वप्नसंस्कारागार", " कल्पनोत्सार"," तम के अमाज्य रे तार-तार " (तुलसीदास) जैसे भरपूर संस्कार-शील शब्दों में कवि ने सांस्कृतिक चेतना को मूर्त कर दिया है, और दूसरी ओर " पेट में डंड पेले हों चूहे जबाँ पर लफ़्ज़ प्यारा " जैसी नितान्त औसत मानसिकता की परिचायक शब्दावली में भाषा और अनुभव का सीधे रचनात्मक रिश्ता स्थापित किया है।

गुलाब की भर्त्सना के बाद" कुकुरमुत्ता" अपनी विशिष्टता का बखान करता है -

देख मुझको मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे पर चढ़ा

---

१) अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० ६१ ।

और अपने से उगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता

कहने का यह बेलौस अंदाज़ अनुपेक्षणीय है, जिसमें शब्दों की सपाटता में व्यक्तित्व पैदा कर दिया गया है। सामान्य जन की आत्मनिर्भरता को तूल देते हुए कुकुरमुत्ता का औद्धत्य- जिसे आत्मविश्वास कहना अधिक उपयुक्त होगा- भाषा में उभर उठा है :

तू है नकली, मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक
तू रँगा और मैं धुला
पानी मैं, तू बुलबुला

' तू है नकली, मैं हूँ मौलिक ' की ललकार सामान्य-साधारण की स्वनिर्मित शक्ति को स्वर देती है, जिसमें स्थायित्व की प्रतीति 'पानी, मैं, तू बुलबुला' के बिंब द्वारा होती है।

कुकुरमुत्ता जब अपनी तारीफ़ के पुल बाँधता है, तो अजीबोगरीब स्थिति उत्पन्न होती है। सृष्टि-व्यापी विस्तार में वह अपने को विद्यमान मानता है। चीन का छाता, भारत का छत्र, महायुद्ध का पैराशूट, विष्णु का सुदर्शन चक्र, यशोदा की मथानी, राम का धनुष , बलराम का हल - सभी में उसकी सत्ता अन्तर्व्याप्त है, इतना ही नहीं -

सुबह का सूरज हूँ मैं ही
चाँद मैं ही शाम का।

इतिहास, भूगोल, दर्शन, संगीत, साहित्य-भाषा- गरज यह कि दुनिया की हर चीज़ उसके प्रभाव-क्षेत्र में है। ऐसे अंशों में कवि की निरीक्षण-शक्ति द्रष्टव्य है। कुकुरमुत्ता के इस सृष्टि-व्यापी महत्त्व को स्थापित कर वह क्या कहना चाहता है, यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। ऊपरी दृष्टि से देखने पर तो कुकुरमुत्ता की इस लम्बी-चौड़ी डींग में निरर्थकता की प्रतीति होती है ;

किन्तु इसकी व्यंजनाएँ गहरी हैं । एक स्तर पर यह कवि की अद्वैत दृष्टि हो सकती है, जिसके कारण वह सभी वस्तुओं- छोटी बड़ी - के मूल में कुकुरमुत्ता को देखता है, और इस तरह काव्य के स्तर पर सामान्य-साधारण की सार्वभौम प्रतिष्ठा संभव हो पाती है । दूसरे मोड़ पर निराला जैसे यह ध्वनित करते हैं कि सामान्य-साधारण कितना मुखर होता है, आत्म-प्रशंसा का इच्छुक होता है और इस रूप में कुकरमुत्ता के अतिरंजित महत्त्व का अंकन कर प्रकारान्तर से वे उसे उसकी बड़बोली के कारण उपहासास्पद भी सिद्ध करते चलते हैं । कुल कहना यह है कि युग-द्रष्टा कवि की भाँति निराला इस कविता में जन-साधारण की शक्ति को उसकी पूरी नग्नता और पूरे विस्तार में प्रस्तुत करते हैं ।

बीच-बीच में व्यंग्य के गहरे छींटे पूरी कविता में एक विनोदमय वातावरण को क़ायम किये रहते हैं :

कहीं का रोड़ा कहीं का पत्थर
टी० एस० एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़नेवालों ने भी जिगर पर रख कर
हाथ, कहा," लिख दिया जहाँ सारा "।

प्रस्तुत पंक्तियों में विख्यात प्रयोगधर्मा कवि एलीयट और उसके अन्धभक्तों पर बड़ा करारा व्यंग्य है ।"जैसे दे मारा" और" जिगर पर रखकर हाथ " की व्यंजना द्रष्टव्य है । तथाकथित प्रोग्रेसिव की" औशीली कलम" पर भी काटता हुआ व्यंग्य किया गया है :

जैसे प्रोग्रेसिव का कलम लेते ही
रोका नहीं रुकता जोश का पारा ।

और कहीं" चिढ़ूदी" तथा" बाब " का साथ-साथ प्रयोग अनोखे वैचित्र्य और हास्य की सृष्टि करता है :

चाहे के हों बीच के या बाब के
चढ़े हैं चिढ़ूदी के हों या बाब के ।

कुकुरमुत्ता' के दूसरे खण्ड का आरंभ नव्वाब के बाग के बाहर पड़े झोपड़ों की दीन दशा के वर्णन से होता है। निम्नवर्गीय मनुष्यों के दयनीय जीवन को वर्णन में प्रामाणिक बनाने के लिए उसी से सिरजी हुई यह भाषा अपनी अर्थवत्ता में अनुपम है :

जाह गन्दी, रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, ज़िन्दगी की लन्तरानी-
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ
सेलरों की परों की थी गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे।

' जाह गंदी, रुका सड़ता हुआ पानी / मोरियों में, ज़िन्दगी की लन्तरानी,' की सपाटता में जो संप्रेषण अनुस्यूत है, वह भाषा के साथ अनुभव की तल्खी की ओर संकेत करता है। इस पंक्ति में बद्ध-विरामों की नियोजना जैसे कवि की परिवेश-प्रवण दृष्टि को उभारती है। कवि पूरी निर्ममता से, बिना किसी संकोच या जल्दबाज़ी के, निम्नवर्गीय जीवन में भयावह यथार्थ को उजागर कर रहा है। आगे ' ज़िन्दगी की लन्तरानी ' के नमूने के रूप में ' बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ / सेलरों की परों की थी गड्डियाँ / कहीं मुर्गी कहीं अण्डे / धूप खाते हुए कण्डे' का प्रस्तुतीकरण एक तिलमिला देनेवाली कसक की सृष्टि करता है। इस विषम वातावरण की परिणति इस प्रकार होती है -

हवा बदबू से मिली
हर तरह की बासीली पड़ गई।

यह अपने में बड़ी बात है कि जहाँ तत्सम शब्दों के भरपूर और दक्ष उपयोग से कवि ने हिन्दी के अभिजात शब्दकोश की संवर्धना की है, वहीं कुकुरमुत्ता' के माध्यम से, बेहद मामूली, ग्रामीण और रूखे-कठोर शब्दों में भरा-पूरा आत्मविश्वासी व्यक्तित्व सिरजा है, और इस परंपरित धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि कविता की रचना के लिए संस्कारशील शब्द ही उपयुक्त होते हैं।

इस गन्दी बस्ती में नव्वाब के खादिमों के साथ बागबान भी रहते हैं। मालिन की लड़की गोली से नव्वाब की बेटी बहार की घनिष्ट मित्रता हो गई है। एक दिन बहार के अनुरोध पर गोली उसके साथ बाग की सैर करने जाती है। यहाँ विविध सुगन्धित पुष्पों के बीच सहसा गोली की नजर कुकुरमुत्ता पर पड़ती है। गोली की प्रतिक्रिया और उससे प्रभावित बहार की स्थिति का अंकन देखने योग्य है।

> सकपकाई, बहार देखने लगी
> जैसे कुकुरमुत्ते के प्रेम से भरी गोली दगी।
> भूल गई, उसका था गुलाब पर जो कुछ भी प्यार।
> सिर्फ वह गोली को देखती रही निगाह की धार।
> टूटी गोली जैसे बिल्ली देखकर अपना शिकार
> तोड़ कर कुकुरमुत्ते को होती थी उनके निसार।

अपनी सखी बहार से कुकुरमुत्ता के बखान में गोली निपट ठेठ ढंग अपनाती है :

> सच समझ लो, इसका कलिया
> तेल का भूना कबाब,
> भाजियों में वैसा जैसा आदमियों में नव्वाब।"

गोली द्वारा कुकुरमुत्ता की इस बढ़ी-चढ़ी तारीफ से चिढ़कर बहार की नौकरानी उसे डाँटती है। कवि अभिजात वर्ग की इस खीझ का आनन्द लेता हुआ टकसाली विशेषण के माध्यम से उस पर व्यंग्य करता है :

> नहीं ऐसा कहते री मालिन की
> छोकड़ी बंगालिन की।"
> डाँटा नौकरानी ने -
> चढ़ी-आँख कानी ने।

यानी नौकरानी तक - चूँकि वह नव्वाबजादी (अभिजात वर्ग) की नौकरानी है - कवि की नजर से नहीं बच सकी है। कुकुरमुत्ता का कबाब खाने के

लोभ से परवश हुई नव्वाबज़ादी बहार कुकुरमुत्ता पर निसार होती अपनी सखी गोली, नौकरानी और टैरियर कुत्ते के साथ गोली की झोंपड़ी में आती है। इसका परिहासमय चित्रण कवि करता है -

चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे मुक्खड़ फ़ालोवर
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर
आधुनिक पोयट (Poet)
पीछे बाँदी बचत की सोचती
कैपीटलिस्ट कैट।

इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह के निराले व्यंग्य-चित्रों की निकट नियोजना की शुरुआत कर निराला हिन्दी कविता की संवेदना को एक नया मोड़ देते हैं। "डिक्टेटर", "मुक्खड़ फ़ालोवर", "कैपीटलिस्ट कैट" और सब से बढ़कर "आधुनिक पोयट" की यहाँ अच्छी-खासी खबर ली गई है :

गोली की माँ द्वारा पकाये गये कुकुरमुत्ता के कलिया-कबाब को शौक से खाकर बहार अपने पिता नव्वाब से उसका ज़िक्र करती है। नव्वाब भी लोभ के वशीभूत होकर अपने माली से कहते हैं :

"कुकुरमुत्ता चलकर ले आ तू ताज़ा-ताज़ा।"

माली के निषेधात्मक उत्तर पर गुस्से से काँपते हुए नव्वाब माली को कुकुरमुत्ता उगाने का हुक्म देते हैं। माली के इस उत्तर के रूप में निराला चोट करते हुए व्यंग्य की सृष्टि के साथ "कुकुरमुत्ता" काव्य की समाप्ति करते हैं :

बोला माली, "फ़रमाएँ माफ़ ख़ता,
कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।"

"कुकुरमुत्ता" के माध्यम से जन-साधारण और सर्वहारा की अदम्य जीवनी-शक्ति और उनकी अकृत्रिम जीवन-पद्धति का सहानुभूतिपूर्ण उद्घोषण यहाँ कवि करता है। और, जन-साधारण के जीवन में रची-बसी भावना की सिद्धि जिससे जुड़ी हुई है, वो किसी के आदेश से नहीं बनती, वरन् स्वतः सम्भव रूप में विकसित होती है। हिन्दी काव्यभाषा के इस नये और अपेक्षाकृत अकृत्रिम आयाम का गहराई में संस्पर्श कर निराला ने परवर्ती कविता की स्वाभाविक और गद्यात्मक प्रकृति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है।

("स्नेह-निर्भर बह गया है")

निराला के गीतों में - विशेषतः तत्सम आभिजात्य के सघन आकर्षण से मुक्त गीतों में एक ओर आत्मदारण की अनुभूति जितनी विशद और गंभीर है, दूसरी और उतना ही अपनी रचनात्मकता और आत्मदान का तीखा, सालता हुआ (प्रसाद की तरह प्रशांत, तटस्थ नहीं) एहसास है। ये दोनों तत्व जटिल, सूक्ष्म और अपने में विशिष्ट है तथा इनकी टकराहट अधिकतर गीतों में अर्थ-प्रक्रिया को सघन और संचरणशील बनाती है।" स्नेह-निर्भर बह गया है" (१६४२ ई०) निराला का ऐसा ही गीत है।

अपने छीजते प्राण-तत्व के लिए कवि ने रेत का जो बिंब प्रस्तुत किया है, वह निस्सारता, क्षणिकता और आकर्षण शून्यता की अर्थ-छायाएँ उद्भूत करता है :

स्नेह-निर्भर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

स्नेह-संवेदना से शून्य, मृत्यु के सूनेपन को अनुभूत करनेवाला व्यक्ति अपने क्लांत तन के लिए ऐसी परिकल्पना करे, तो वह कविता का विशिष्ट, रचनात्मक अनुभव बन जाता है। रेत का बिंब अपने मितकथन में मारवाड़ी जीवन की खोखली शून्यता को विवृत करता है।

आगे कवि आम की सूखी डाल के बिंब में से विगत के वैभव और वर्तमान की अवसन्न स्थिति का करुण किन्तु भव्य चित्र विकसित करता है :

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है," अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है।"

आम की डाल सूख जाने के कारण शोभाविहीन हो गई है, फिर उसके पास आकर पिक और शिखी कलरव क्यों करें ? प्रकृति तो नूतनता को प्रश्रय देती है न । इस संश्लिष्ट प्रकृति बिंब में निराला ने जीवन की विडंबनामयी स्थिति पर बहुत गहरी दृष्टि डाली है - अर्थात् जीवन फलता-फूलता है आकर्षण है, शोभा है । उनके अभाव में वह दूसरों के लिए तो उपेक्षणीय हो ही जाता है, खुद अपने लिए वह शून्यता यन्त्रणामय होती है, क्योंकि अस्तित्व -कामी मनुष्य इस तरह की दयनीय स्थिति से कहीं-न-कहीं आहत अवश्य होता है । फिर रचनाकार के सामान्य से कहीं समृद्ध और संवेदनशील मानस पर तो खासतौर से इसका असर पड़ता है । कोयल की मधुरिम ध्वनि और मोर का उल्लासपूर्ण नृत्य अपने अर्थ-संचरण -प्रक्रिया मे जीवन की उन्मुक्तता, समृद्धि और आकर्षण को उभारते हैं और इनका न हो सकना एक तरह से खालीपन तथा उत्सव-शून्यता की प्रतीत कराता है । आम की सूखी डाल के लिए अर्थहीन पंक्ति की बिंब-योजना कवि के अकेलेपन से उपजी निरर्थकता की अनुभूति को विवृत करती है । अर्थहीन पंक्ति की विडंबना में संभावना शून्य जीवन की रिक्तता को कितनी कुशलता से रखा-गया किया गया है, यह देखा-जाना चाहिये । यहाँ कवि की सुकुमार और सजग विराम-विन्यस्ति समूचे अनुभव को और सघन कर देती है :

नहीं जिसका अर्थ -
जीवन दह गया है ।

" नहीं जिसका अर्थ " के बाद ठहराव अर्थ शून्य जीवन के विषाद को गहरा देता है, जैसे कवि-और पाठक भी - इस अर्थशून्यता पर एक क्षण के लिए रुककर विचार कर रहा हो । अर्थहीन पंक्ति का यह बिंब दूसरे संदर्भ में कही गई निराला की ही उक्ति का स्मरण करा देता है :" ज्यों हों वे शब्द मात्र ।" (" राम की शक्ति-पूजा ")

मगर भोगे हुए अनुभव झुठाये नहीं जाते, रचनाकार कहीं-न-कहीं यह समझता है कि उन अनुभवों का महत्व न पहचानना मानों जीवनानुभव का अपमान करना है । फिर निराला जैसे आत्मविश्वासी, मौलिक रचनाकार की

चेतना में अपनी अर्थवत्ता की अनुभूति बराबर रहना स्वाभाविक भी है। आगे आम की सूखी डाल के बिंब में से उनका यही आत्म-तोष विवृत हुआ है :

दिये हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित चल ;
पर, अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है।

आम की सूखी डाल ने अपने यौवन में फल-फूल का दान किया है, यानी सर्जनशील व्यक्तित्व जगत को अनुभावन-क्षमता प्रदान करता है उसे समृद्ध करता है। आत्म-धारणा का तीसरा अंश यहाँ पर दार्शनिक की तटस्थता से संपृक्त हो जाता है, जो रुदन नहीं लाता, अनुभव को महिमाशाली बना देता है :

पर, अनश्वर था सकल पल्लवित पल
ठाट जीवन का वही,
जो ढह गया है।

ठाट ऊपरी चमक-दमक, आकर्षण, वैभव का प्रतीक है। वह ढह गया है, पर जो स्थायी तत्व है, सर्जन-प्रक्रिया का परिणाम है, वह सुरक्षित है। आंतरिक समृद्धि अक्षुण्ण है। रचनाकार का जो "पल्लवित पल" रहा है, वह समय के स्तर पर विलुप्त हो जाने पर भी प्रभाव के स्तर पर अनश्वर है। रचनाकार के और जगत् के मानस में उसकी स्मृति सदा बनी रहती है।

अंतिम बंद में पुलिन पर अब न आनेवाली प्रियतमा का चित्र भी इसी बाहरी शून्यता को उरेहता है :

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा,
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

यहाँ 'क्षमा' शब्द का संगत प्रयोग निराशा, वेदना के 'स्वशब्दवाच्यत्व' का अतिक्रमण कर अर्थ को विशदता देता है। यहाँ निराला फिर वही बात दूसरे ढंग से कहते हैं कि एक रूप में तो आत्म-क्षय हो रहा है, लेकिन दूसरे रूप में वह अपनी रचनात्मकता के माध्यम से जीवंत है, स्थायी है।

इस तरह आम की डाल का यह संश्लिष्ट बिंब बहुत दूरी तक वर्णन में परिव्याप्त हो जाता है, और फिर बिंब तथा वस्तु की संपृक्त स्थिति संभव होती है। इस प्रक्रिया में एक ओर विषाद उभरता है, दूसरी ओर सन्तोष। और दोनों का संश्लेषण इस गीत का मूल अनुभव है, जिसमें दार्शनिक की तटस्थता और रचनाकार की संसक्ति एक साथ घुली-मिली है। गीत में लय की विशिष्ट बनावट उसके ठहराव में देखी जा सकती है, जिसमें अन्तर्मन की थकावट रस-बस गई है। और इस तरह कवि का आत्मानुभव हर स्तर पर रचना के अनुभव में रूपांतरित हो गया है। निराला की भव्य और संश्लिष्ट माणिक संरचना का प्रीतिकर साक्षात्कार इस तरह के द्वन्द्वात्मक अनुभूतिपरक गीतों के माध्यम से किया जा सकता है।

(' बेला ')

खड़ीबोली पर आधारित हिन्दी काव्यभाषा की सांगीतिक संभावनाओं के दूरगामी विस्तार की कोशिश निराला के संपूर्ण काव्य-सृजन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वैसे गीत-रचना की ओर निराला का झुकाव अपने प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' से लेकर अंतिम काव्य-संग्रह 'सांध्य-काकली' तक रहा है, लेकिन 'गीतिका', 'बेला', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' की सृष्टि उन्होंने खास संगीतात्मकता के उद्देश्य से की है। एक छोर पर है 'गीतिका' (१९३६ ई०), जिसमें निराला ने तत्सम शब्द-वैभव और बँगला-संगीत से रचना के स्तर पर विशेष प्रभावित होते हुए हिन्दी भाषा की ध्वन्यात्मक क्षमता की परख की है, दूसरी छोर पर हैं 'अर्चना' (१९५० ई०) 'आराधना' (१९५३ ई०) और 'गीतगुंज' (१९५४ ई०)

जिनका गीति-सौन्दर्य प्राय: शब्दों की अयौगिक तद्भवता के आश्रय में फला-फूला है। इन दोनों छोरों के बीच में है - बेला (१८४३ ई०), जिसमें कवि ने घोषणापूर्वक एक नया मोड़ लिया है - " बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। प्राय: सभी तरह के गेय गीत इसमें हैं। ++ बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग लहरों की ग़ज़लें भी हैं, जिनमें छंद:शास्त्र का निर्वाह किया गया है। काव्य की कसौटी भी है। पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जाएगी, अगर उन्होंने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिए, यों आज भी ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं, खड़ीबोली के गीत खुलकर नहीं गा पाते।[१]

" बेला " इस दृष्टि से एक मौलिक प्रयोग है जिसकी रचना में कवि के कई मन्तव्य हैं, एक तो, उर्दू-फ़ारसी की ग़ज़ल परंपरा का हिन्दी में स्थान बनाना। दूसरे उच्चारण संगीत की शुद्धता की दृष्टि से खड़ीबोली को ब्रजभाषा के पड़ेपन से मुक्त करना। फिर सब से बड़ी बात यह कि ऐसी काव्यभाषा की रचना, जिसका कवि के अनुसार गद्य करने की आवश्यकता नहीं। संघटन की दृष्टि से यह स्पष्ट ही कविता को अधिक स्वायत्त और एकान्वित करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न है। इस साहसिक प्रयोग की क्षमता-अक्षमता की सब जानकारी इसके गीतों के अनुशीलन से हो सकती है।

फ़ारसी छंद और अभिव्यक्ति-सामग्री में हिन्दी शब्दावली के योग की दृष्टि से इसका गीत उल्लेखनीय है :-

> बँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन।
> हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।

" अन्तिम टुकड़े बहार के दिन " का गीत की अन्तिम पंक्तियों में निर्वाह है। " बहार के दिन " का संपूर्ण उल्लास, उन्मुक्त विलास पूरे गीत में मुखरित हो गया है। कवि ने उर्दू ग़ज़लों की चमत्कारिकता के साथ हिन्दी शब्दों की नियोजना में संयमशील मौलिकता विकसित की है। उदाहरणार्थ -

> निगाह रुकी कि केशरों की चाँदनी ने कहा,
> सुगन्ध-भार के होते हैं ये बहार के दिन।

---

१) बेला। आवेदन

ग़ज़ल के इस विधान में छायावादी काव्य का विशिष्ट बिंब " सुगन्ध-भार " अर्थ की मौलिक छायाएँ उद्भूत करता है । उर्दू-हिन्दी का एक और सुन्दर संयोग इन दो पंक्तियों में देखा जा सकता है -

हवा चली, गले खुशबू लगी कि वे बोले
समीर-सार के होते हैं ये बहार के दिन ।

गीत संख्या १६ " हँसी के फूले के फूले हैं वे बहार के दिन " में भी इसी तरह की आवृत्तियाँ हुई हैं । उर्दू-हिन्दी शब्दावली के संयोग का बहुत स्वच्छ, निखरा हुआ रूप इस गीत में देखा जा सकता है । गीत संख्या १६ में पारस्परिक आकर्षण का अंकन बेलाग भाव से किया गया है -

उनके बाग़ में बहार,
देखता चला गया ।
देखा फूलों का उभार,
देखता चला गया ।

उर्दू शायरी की परंपरा और प्रकृति के अनुरूप यह खुला प्रणय निवेदन बड़ी साफ़गोई से कवि प्रस्तुत करता है -

मैंने उन्हें दिल दिया,
उनका दिल मिला मुझे ।
दोनों दिलों का सिंगार,
देखता चला गया ।

इस तरह के उदाहरण लोकप्रियता और संगीतात्मकता की दृष्टि से सफल बन पड़े हैं । पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या इन गीतों में सृजन के गहरे तत्व हैं ? कहाँ तक यह नई कथन - भंगिमा अनुभव की उसकी सूक्ष्मता में छूती है ? वस्तुतः इस तरह के गीतों की रचना में निराला की दृष्टि कुछ दूसरी ही रही है, जिसका आभास " बेला के आवेदन " और स्वयं इन गीतों के विश्लेषणों से होता है । उर्दू ग़ज़लों की चमत्कारिकता, बोधगम्यता इस तरह के गीतों में आ सकी है, भले ही वह पूरी मात्रा में न हो, जिसके लिए निराला स्वतः दोषी

नहीं है। हिन्दी भाषा की प्रकृति शुरू से ही व्यंजना-प्रधान रही है, उसके गंभीर मिज़ाज का तालमेल उर्दू शायरी की प्रदर्शन प्रियता से पूरी तौर पर नहीं बैठ पाता। लेकिन 'बेला' के इन गीतों में उर्दू ग़ज़लों की नफ़ासत, कोमलता और विशेषतः मीर, ग़ालिब जैसे शायरों की चमक देखने को नहीं मिलती, इसीलिए इनमें वैसी गहराई भी नहीं है। उदाहरण के लिए ग़ालिब का एक बहुत प्रसिद्ध प्रौढ़ और साथ-ही सीधा सादा शेर लिया जा सकता है -

मौत का एक दिन मुअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती ?

यहाँ बड़े परिचित-सामान्य शब्दों में एक गहरी जीवन-दृष्टि को मुखरित किया गया है। " बेला " के छंदों में निराला की काव्यभाषा अपनी सारी प्रायोगिक संभावनाओं के बावजूद उर्दू ग़ज़लों की सादगीपरक गहराई को छूने में असमर्थ रही है। जहाँ निराला अपनी ज़मीन पर हैं, जैसे " गीतिका " के क्लासिकल गीतों में परवर्ती गीतों के मौलिक, तद्भव-विधान में या खुद " बेला " के ही हिन्दी प्रकृति के अनुकूल कुछेक गीतों - यथा, " बाहर मैं कर दिया गया हूँ " या " मिट्टी की माया छोड़ चुके " में, वहाँ वे पूरे अधिकार के साथ जटिल संवेगों, प्रौढ़ जीवन-स्थितियों को छूते चलते हैं।

सामान्य हिन्दी-उर्दू शब्दों के मेल से बने गीतों की तुलना में अधिक असफल रचना-विधान उन गीतों का है जिनमें कवि फ़ारसी छंदों को संस्कृत निष्ठ शब्दों में बाँधता है। गीत संख्या २० और २८ इसके उदाहरण हैं। संस्कृत भाषा का उदात्त गंभीर प्रसार रूप फ़ारसी छंद के लोच, प्रवाह को क़ायम नहीं रखता, अपितु कुण्ठित कर देता है। एक अंश द्रष्टव्य है -

अशब्द हो गयी वीणा,
विषाद बजता था।
अमिय धारणा नव-जीवन
प्रसाद बजता था।

यह मिलता है कम पढ़कर कुछ गीत सुन्दर बन पड़े हैं,
जैसे ४४वाँ गीत -

दुर्दिन को करो सफल

जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से मरो सकल ।

जागरण के दिव्य भाव को अनुभव के स्तर पर प्रखर संवेदनशीलता से कवि ने मुखरित किया है । शब्द-प्रयोग देखने योग्य है -

जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से मरो सकल

जहाँ " जीर्ण "," यौवन " और " जीवन " अपने सामान्य अर्थ से कुछ अधिक गहरे रंग उभारते हैं । हिन्दी छन्द की अपनी ज़मीन पर रची गई ये पंक्तियाँ जाग्रति का उन्मुक्त प्रसार करती हैं और इस रूप में " गीतिका " के प्रसिद्ध जागरण-गीतों के समकक्ष रखी जा सकती हैं -

जागरूक कलरव से
मरे दिशाएँ स्तव से
धरती के नव, नव से
फूले फूल खुले कमल ।

गीत संख्या ४० और ४१ के तत्सम शब्द-संयोजन में क्रमशः नश्वरता और आत्मिक मुक्ति के अनुभव को स्थान मिला है । ४० वें गीत का अंतिम अंश भाषा की अनौपचारिकता और संवेदना की जटिलता का अच्छा नमूना है -

माया का सुन्दर खिला जाल,
जो सरल वही पैसा कराल,
जग की मिक्षुणा से छूटने को
सत्य भी सदा भ्रम के परिचय ।

४१ वाँ गीत अपने रचना-विधान की शक्तिमत्ता और प्रखरता में अकेला है -

क्या मुक्ति, दूर कर के बंधन
[illegible] व्याकुल फूल और क्रन्दन ।
जिस प्रकार यहाँ मत्यक्षानुभूता से मुक्त संयमित दृष्टि दुःख

और बाधाओं के विरुद्ध संघर्ष करता है, उसी प्रकार भाषा तटस्थ, प्रखर और ठोस है -

विष से जर्जर कर विषय-अनल
त्याग की ज्वाला नि:शिख अचपल,
हों भस्म स्वार्थ के कुप्रसंग,
देख ले विश्व यह अभिनंदन ।

'पारस' और 'पाश' 'विष' और 'विषय' के अलंकार-प्रयोग कवि उद्बोधन में बड़ी स्वाभाविकता से संक्रमित हो जाते हैं, और इस प्रकार अलंकार एवं भाषा का रचनात्मक रिश्ता जुड़ता है। हिन्दी काव्यभाषा की सुगठित -पद योजना अद्भुत भाव-सृष्टि के उदाहरण-स्वरूप इस तरह की पंक्तियाँ रखी जा सकती हैं -

यह देख दाव में छिपी आग
सावन वर्षण कर, जाग-जाग
मोह के तिमिर में मिहिर सदृश
तू ज्योतिर्मय जन कर वंदन ।

जीवन-मुक्त की स्थिति का साक्षात्कार ७८ वें गीत में भी हुआ है, जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ देखने योग्य हैं -

मिट्टी की माया छोड़ चुके
हाँ, वे, अपना घट फोड़ चुके ।
नभ की सुदूरता से ऊँचे
जीवन के क्षण अब वे [illegible] ,
आकर्षण के अभिलाषी के
[illegible] की सब वे तोड़ चुके ।

यहाँ सरल और सूक्ष्म शब्दावली पर आधारित प्रतीक और शब्दों का सार्थक संयोजन हुआ है। मिट्टी की माया छोड़ना, घट का फोड़ना -

जैसे प्रयोग परंपरा से प्रचलित होने पर भी चुके हुए नहीं लगते, नश्वरता के छूँछे प्रयोग अपने परिवेश के निर्मित करने में तत्पर थे प्रयोग प्रतीक रूप में व्यवहृत किये जाकर विशेष भास्वर बन पड़े हैं । ठेठ घरेलू अन्दाज़ में सचमुच जीवन के क्षणों का छोटापन हल्कापन उभरता है । आकर्षण की शक्ति और उसके अतिक्रमण को अभियान के चित्र में कवि ने नए ढंग से प्रस्तुत किया है -

आकर्षण के अभियानी के
गतिक्रम को जब वे तोड़ चुके ।

गीत संख्या ७६ की बनावट दूसरे तरह की है, जिसमें कला-प्रयास और अनुभव की पकड़ दोनों का समुचित समन्वय है -

वेश-रूखे अधर-सूखे
पेट-भूखे, आज आये ।
हीन-जीवन दीन-चितवन
क्षीण आलम्बन बनाये ।

शोषित जनता की स्थिति का यथार्थ अंकन इन पंक्तियों में हुआ है । " वेश रूखे ", " अधर-सूखे " , " पेट भूखे और " हीन जीवन ", " दीन चितवन " जैसे मौलिक समासों की ध्वनि-आवर्तों के रूप में नियोजना सायास होने पर भी खटकती नहीं, क्योंकि वास्तविकता से वह जुड़ी हुई है ।

" बेला " का ३१ वाँ गीत निस्संदेह निराला के श्रेष्ठतम गीतों में से है, जो अपने नए रचना-विधान में एक साथ अनेक स्तरों पर विकसित होता है । अर्थ की दृष्टि से कुछ-कुछ अस्पष्ट सा यह गीत जैसे काव्यभाषा की अनिर्दिष्ट प्रकृति को ही स्वर देता है । पहली पंक्ति इस प्रकार है :

बाहर मैं कर दिया गया हूँ । भीतर, पर, भर दिया गया हूँ ।

" बाहर " और " भीतर " जैसे बिल्कुल साधारण शब्दों में अर्थ की विविध-स्तरता गूँथ-अलूँथ होती है । एक स्तर में यह पंक्ति कवि और उसके परिवेश के बीच तीव्र संघर्ष, अलगाव का बोध कराती है । अपने निर्वासन अपमान और उसकी अवहेलना को विशेष ढंग लहजे में (जो गैर -रोमाण्टिक कविता

की विशेषता है)" बाहर मैं कर दिया गया हूँ" द्वारा कवि ने व्यक्त किया है, वह इस चोट को उतनी ही गहराई देता है। इस गहराती हुई चोट पर "भीतर, पर, भर दिया गया हूँ" का शब्द-प्रयोग अनुलेप का काम करता है। "मैं अकेला" और "स्नेह-निर्झर बह गया है" में कवि विषाद और उपलब्धि के संतोष की सम्मिश्रित अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दे चुका है। प्रस्तुत गीत में, कुछ दूसरे ढंग से बाहरी जिन्दगी के खालीपन, चुके हुए संदर्भों से उत्पन्न विषाद और उसके साथ आन्तरिक समृद्धि से उपलब्ध पूर्णता के सुख को स्वर दिया गया है। "भीतर पर" पर के बाद अर्द्ध-विराम ("भीतर, पर, भर दिया गया है") "भीतर भर जाने" के शब्दातीत सुख को सुकुमार ढंग से व्यक्त करती है। यह भरा जाना कई रूपों में हो सकता है - एक तो अपने रचनात्मक कवि-व्यक्तित्व के माध्यम से दूसरे, आत्मिक मुक्ति के साक्षात्कार से। आगे की पंक्तियाँ प्रतीकात्मक भाषा में कवि-मानस का अन्तर्विरोधी वृत्तियों को उभारती है -

ऊपर वह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है,
सख्त तने के ऊपर नर्म कली है,
इसी तरह भर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।

"बाहर" और "भीतर", "ऊपर" और "नीचे" क्रमशः कठोरता और कोमलता, रुक्षता और स्निग्धता की सहस्थिति जटिल मानवीय वृत्ति का बोध कराती है, जिसका अंकन भी उतनी ही जटिलता से, शब्दों की अनायास सूक्ष्म प्रकृति में हुआ है। "बर्फ" और "नदी" "सख्त तने" और "नर्म कली" की यह योजना बड़ी सटीक है।

कवि ने गीत के अन्तिम अंश में आत्मिक साक्षात्कार, मानसिक तृप्ति के अनुभव को मूर्तिमन्त कर दिया है, विशेषतः इस अंश की पहली पंक्ति में -

भीतर, बाहर, बाहर, भीतर, देखा जब से, हुआ अनश्वर;
माया का साधन यह नश्वर,
ऐसे ही भर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।

"भीतर", बाहर, बाहर, भीतर; देखा जब से हुआ अनश्वर' की संरचनागत सादगी में छिपी हुई जटिलता उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब और मोमिन

की याद दिला देती है -

न था कुछ तो खुदा था,
कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने
न मैं होता तो क्या होता ? ("गालिब")
\+ + + + +
तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता।। ("मोमिन")

यद्यपि निराला की पंक्तियों का इन उद्धृत शेरों से कोई संवेदनागत साम्य नहीं है, गालिब के शेर में अहं के एहसास, अस्तित्व की अनुभूति से उत्पन्न विषाद का अंकन है, मोमिन के शेर में प्रिय के निकटतम सान्निध्य की स्थिति का अद्वैतमूलक चित्रण है, तथापि संप्रेषण की सादगी और इस सादगी में अनुस्यूत एक बेबसी के एहसास (भीतर बाहर, बाहर भीतर, देखा जब से, हुआ अनश्वर", "डुबोया मुझको होने ने। न मैं होता तो क्या होता" "जब कोई दूसरा नहीं होता") की दृष्टि से तीनों उद्धरण समानान्तर दिशा की ओर बढ़ते प्रतीत होते हैं। "बेला" के प्रस्तुत गीत का "अनश्वर" शब्द अनेक सूक्ष्म-गंभीर अर्थ छायाएं उद्भूत करता है, जिसमें सांसारिक संसर्ग से मनुष्य निवृत्ति का भाव उतना नहीं है, जितना मरणधर्मा होने के बावजूद गहरी रचनात्मकता से परिपूर्ण व्यक्तित्व का आत्म विश्वास है। पहले भी "स्नेह-निर्झर बह गया है" गीत में कवि कह चुका है - "पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल।"

जन-साधारण में प्रचलित गीत रूप कजली को छन्द में गीत में एक नये और प्रभावशाली ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है -

काले काले बादल छाये न आये बीर जवाहर लाल।
कैसे कैसे नाग मंडलाये न आये बीर जवाहर लाल।

जवाहर लाल नेहरू को लक्ष्य कर कवि ने शोषित जनता की दुर्दशा

कों, वर्षा के रूपक में विनोदमय रीति से अंकित किया है । अंकन की यह विनोदमयता शोषण की पीड़ा को और तीव्र कर देती है -

> पुरवाई की है फुफकारें, छन-छन ये विष की बौछारें,
> हम हैं जैसे गुफा में समाये, न आये वीर जवाहर लाल ।

' बेला ' में संवेदना के वैविध्य के पीछे भाषा की विविध भंगिमाएं, छंदों के नवीन रूप हैं, लेकिन कुछेक को छोड़कर ' बेला ' के लगभग सभी गीत एक नये प्रयोग के आकर्षण से अधिक संसक्त हैं, रचनात्मकता का कोई गहरा उन्मेष उनमें नहीं दिखलाई देता । इतना ज़रूर है कि खड़ीबोली की उच्चारणगत मौलिकता और गेयता की स्थापना में ये गीत एक सीमा तक कामयाब हुए हैं, जो यहाँ कवि का एक खास उद्देश्य रहा है ।

(' नये पत्ते ')

सही माने में सामान्य-साधारण जीवन-स्थितियों से जुड़ी हुई भाषा की शुरुआत निराला के ' कुकुरमुत्ता ' से होती है, जो अपनी बेजोड़ संरचना के कारण समूचे आधुनिक हिन्दी काव्य में ऐतिहासिक महत्व रखता है । ' कुकुरमुत्ता ' के प्रथम संस्करण में (जो एक संकलन है) ' कुकुरमुत्ता ' कविता के अलावा अन्य सात कविताएँ हैं - (१) ' गर्म पकौड़ी ', (२) ' प्रेम-संगीत ' (३) ' रानी और कानी ' (४) ' खजोहरा ' (५) ' मास्को-डायलाग्स ' (६) ' स्फटिक-शिला ' और (७) ' डेढ़ ' । कालांतर में निराला ने इन सातों कविताओं को अपने एक काव्य संकलन ' नये पत्ते ' में सम्मिलित कर लिया (द्र० ' कुकुरमुत्ता ' की भूमिका) और ' कुकुरमुत्ता ' का दूसरा संस्करण स्वतंत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ ।

' कुकुरमुत्ता ' से शुरू हुई भाषा के ठेठ विकास की यात्रा ' नये पत्ते ' में और आगे बढ़ती है। यहाँ पर आकर कवि जीवित-सामान्य को विविध संदर्भों में पकड़ने की कोशिश करता है ।

'नये पत्ते' की पहली रचना 'रानी और कानी' कुरूपता को काव्य-विषय बनाने का बढ़िया और साहसिक उदाहरण है । कहना न होगा कि यह कुरूपता, यथार्थ की विषमता शब्दों के सपाट, ठेठ और गद्यात्मक प्रयोग की वजह से कविता के स्तर पर बहुत विश्वसनीय लगती है । इस छोटी कविता की यह बेजोड़ कसावट दर्शनीय है -

माँ उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम ;
लेकिन उसका उल्टा रूप,
चेचक के दाग, काली, नक-चिप्टी
गंजा सर, एक आँख कानी ।

यह निरा हास्य की उत्पत्ति करनेवाला चित्र नहीं है, बल्कि हमारी संवेदना को झकझोरने वाला है । अपनी काली, एक आँख कानी, चेचक के दाग वाली कन्या को आदर से रानी कहना भयावह यथार्थ को देखकर भी अनदेखा करती माँ की ममता का सूचक है। यहाँ कहने के नितान्त अनौपचारिक ढंग से कितना तीखा संप्रेषण किया है, यह देखने योग्य है । विषमता की ऐसी ही तिलमिला देनेवाली चोट कविता के अंत में भी देखी जा सकती है , जिसमें पड़ोस की औरत के ताने से विचलित माँ अपनी 'कानी रानी' के ब्याह न होने की बात सुन मन मसोस कर रह जाती है और सयानी रानी पर उसकी अजीब प्रतिक्रिया होती है -

सुनकर कानी का दिल हिल गया,
काँपे कुल अंग
दाईं आँख से
आँसू भी बह चले माँ के दुख से,
लेकिन वह बाईं आँख कानी,
ज्यों-की-त्यों रह गई रखती निगरानी ।

पंक्तियों की ठेठ गद्यात्मकता में कुरूप रानी की पीड़ा और शारीरिक कमी दोनों मुखरित हो उठी है । उसकी बाईं आँख माँ के दुःख

में हिस्सा बँटाती है, किन्तु बाई आँख (जो कानी है) सारी सहानुभूति के बावजूद अपनी असमर्थता के कारण केवल भयानक यथार्थ को नग्न करके ही रह गई--

लेकिन वह बाई आँख कानी
ज्यों की त्यों रह गई रखती निगरानी ।

यहाँ 'निगरानी' में जो नग्न सत्य की कड़ी मार है, वहीं कविता का मर्म निहित है ।

'जुही की कली' के सर्जक ने 'रानी और कानी' में अनुभव और भाषा का एक सर्वथा नया धरातल परखा है । इसी प्रकार रोमाण्टिक और क्लैसिकल कलाकार का एक नया आयाम 'नये पत्ते' की एक दूसरी कविता 'प्रेम-संगीत' में देखा जा सकता है, जिसमें अन्तर्जातीय प्रेम की स्वच्छंदता का विनोदमय चित्रण है और इस दृष्टि से शीर्षक की अभिजात शब्दावली 'प्रेम-संगीत' कविता के वर्ण्य के संदर्भ में बड़ी अर्थपूर्ण लगती है । कविता में सपाट किन्तु वक्र भाषा का तेवर द्रष्टव्य है -

बम्हन का लड़का
    मैं उसको प्यार करता हूँ ।
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनिहारिन वह
आती है होते तड़का
    उसके पीछे मैं मरता हूँ ।

काव्य-विषय के रूप में 'गर्म पकौड़ी' की अवतारणा कुछ-कुछ उसी प्रकार के साहस और नवीनता की सूचक है, जैसे छायावादी काव्य के प्रारंभ में 'नीरव प्रेम', 'उच्छ्वास', 'छाया', 'आँसू', 'स्वर', जैसी सूक्ष्म विषय-वस्तुओं पर लिखने की प्रवृत्ति विकसित हुई थी । 'गर्म पकौड़ी' में जन-साधारण का तीव्र-दुर्निवार आकर्षण मुखरित हुआ है । यों नये वस्तुओं की योजना देखने योग्य है -

मेरी नींद खुल गई,
खिड़कियाँ खिल रहीं ,

लार कीबूँदें कितनी टपकीं,
पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रक्खा मैंने
कंजूस ने यों कौड़ी ।

शायद इससे मारक व्यंग्य अन्य किसी अप्रस्तुत के माध्यम से नहीं हो सकता था । सारी दुर्गति के बावजूद व्यक्ति गर्म पकौड़ी को दाढ़ तले उसी प्रकार दबा रखता है, जैसे कंजूस की कौड़ी हो । गर्म पकौड़ी के प्रति लोभ और उस लोभ से उत्पन्न हानि का अंकन एक अन्य प्रयोगवादी उपमान से कवि करता है

पहले तूने मुझको खींचा,
दिल लेकर फिर कपड़े-सा फींचा,

नितान्त गंभीर विषयों की सर्जना के साथ निराला हल्के-फुल्के प्रसंगों के अंकन में कितने दक्ष हैं, यह इन उदाहरणों में देखा जा सकता है । "कपड़े सा फींचा " जैसे ठेठ घरेलू प्रयोग का अनुपम काव्यात्मक उपयोग सराहनीय है । कविता के पूरे वातावरण से ये अंतिम पंक्तियाँ जुड़ी हुई हैं -

अरी, तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी ।

यहाँ 'ब्राह्मण' के बजाय 'बम्हन ' के प्रयोग में एक विनोद और तिरस्कार-सूचक भाव है । यह एक मामूली-सा संबोधन अपने विशिष्ट संदर्भ की अर्थवत्ता से संपृक्त होकर परिहास भाव की सृष्टि करता है, जिसमें समय के चक्कर में पड़े ब्राह्मण-देवता पर व्यंग्य है - अध्ययन- अध्यापन के गुरु-गंभीर कार्य को छोड़कर वे जीविकोपार्जन हेतु रसोइया हो गये हैं ।

इन छोटी कविताओं के क्रम में 'मास्को-डायलाग्स ' जैसी कविता उल्लेखनीय है, जिसमें वर्णन की नितान्त स्थूल भाषा का प्रयोग करने के बावजूद एक सूक्ष्म संदर्भ के कारण निराला बड़े प्राणवान् व्यंग्य की सृष्टि में सफल हुए हैं । प्रारंभ की चार पंक्तियाँ ही इस कथन की पुष्टि कर देंगी -

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
बहुत बड़े सोशलिस्ट
मास्को-डायलाग्स लेकर आये हैं मिलने ।

कविता में मामूली अनुभवों का यथार्थ अंकन संभव करने के लिए उसमें रसी-बसी भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। निराला इस तथ्य से परिचित होने के कारण श्रीयुत गिडवानी की औसत मानसिकता को निरावरण करने के लिए ऐसे प्रयोग करते हैं :-

फिर कहा - मेरे समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं,
 एक से हैं एक मूर्ख ;
उनको फँसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है
ज़रा देख लीजिए
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर,

इसी कारण यहाँ 'साला' और 'उल्लू के पट्ठों' जैसे अपशब्द खटकते नहीं। इन तथाकथित बहुत बड़े सोश्यलिस्ट और उपन्यास-लेखक की छिछली मानसिकता का और भी निर्मम पर्दाफ़ाश कवि अन्तिम पंक्तियों में करता है -

देखा उपन्यास मैंने
श्री गणेश में मिला -
पृथ्व अनेकरूपी श्यामा मुझे प्रेम है।
उसको फिर रख दिया, देखा 'मास्को-डायलाग्स'
देखा गिडवानी को

इस वर्णन में व्यंजित तीखे व्यंग्य के विषय में कुछ कहना उसके महत्व को घटाना ही होगा।

'[illegible]' तथा 'स्फटिक-शिला' कविताएँ लम्बी और वर्णनात्मक हैं, और इनमें यथार्थवादी शिल्प का पूरे विस्तार में प्रयोग हुआ है। कोमलता और शिल्प दोनों स्तरों पर शिथिलता के समावेश के कारण ये कविताएँ आलोच्य का पात्र नहीं हैं, किन्तु इन के अध्ययन के बाद यह बिना किसी अतिरंजना

से कहा जा सकता है कि ये दोनों कविताएँ निराला के साहसिक और साथ-ही सफल प्रयोग हैं ।

" खजोहरा " के आरंभ में कवि ने बादलों के लिए बड़े प्रयोगवादी ढंग के उपमान प्रस्तुत किये हैं -

दौड़ते हैं बादल काले काले
हाईकोर्ट के वकले मतवाले
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे
धान सूखे देखकर नहीं तरसे
जहाँ पानी भरा वहाँ कूद पड़े
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े ।

काले-काले बादलों की काले गाउन पहने हाईकोर्ट के वकीलों से तुलना ऊपरी तौर पर एक कौतुक की सृष्टि करती है, लेकिन गंभीर दृष्टि से बादलों के माध्यम से वकीलों पर व्यंग्य करने के लिए कवि ने इस बिंब की सृष्टि की है । वकील के बजाय " वकले " का प्रयोग एक कौतुक की उत्पत्ति करता है । बादल उचितानुचित स्थान का ख्याल किये बिना बरस जाते हैं, सूखे धान देखकर तरसते नहीं । ठीक इसी प्रकार हाईकोर्ट के वकील-निर्धन पर तरस नहीं खाते, वो वस्तुतः बहुत मंद होते हैं । निराला के " बादल-राग " की विराट् बिंब-योजना से " खजोहरा " के इस प्रारंभिक बादल-वर्णन का मेल करने पर निराला की विविध अभिव्यक्ति प्रणालियों का बोध होता है । आगे दो अन्य अप्रस्तुत बड़े घरेलू ढंग के हैं -

फिर भी यह बस्ती है मौज पर
नाजिल है नानी की गोद पर,
नाम है सिल्ली वली है गुलुम्बी
जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी ।

फिर ग्रामीण वातावरण के एक नितान्त आत्मीय चित्र के साथ सावन में घर आई हुई बुआ की कथा चलती है । बुआ बाग के ताल

में एक दिन नहाने जाती है ; लेकिन समीपवर्ती आम की डाल पर स्थित बड़ा-सा खजोहरा उनका सारा मजा किरकिरा कर देता है। विनोदपूर्ण ढंग से कवि इस दृश्य को अंकित करता है -

बुआ के ऊपर की आम की जो डाल
    झोंके से पुरवाई के हिली तत्काल।
क्षमा माँगने को मदन जैसा बैठा,
    डाल पर बड़ा-सा खजोहरा था,
रोयाँ हर एक उसका तीर फूल का था,
    सुन्दरी की ओर को तना हुआ।
बुआ के कन्धे पर टूट कर आया,
    काँटे के पहले ही पिलोया हुआ,

सारे शरीर में खुजली से परेशान बुआ का बिना धोती बदले घर की ओर भागना इन पंक्तियों में साकार हो उठा है -

धोती बदलनी थी, पर न बदल सकी
    भात भीख गाय की करती थे भँगी।
अँधेरा हो आया था, इतनी भलाई,
    कोई उनको न देख पाया भगाई।

सारी पीड़ा को पीछे करते हुए अंत का यह परिहास-भाव देखने योग्य है -

बुआ ने कहा खजोहरा
    नहाते-नहाते मुझको लग गया।"
घी ले आई अम्मा, पूछा, "कहाँ लगे ?"
    बुआ ने कहा कि नहीं कहीं जाय।

आभिजात्य के धरातल से अलग होकर निम्नस्तरीय जीवन को उसके छोटे-बड़े अनुभवों के साथ संयुक्त करने की क्षमता "खजोहरा" जैसी कविताओं में देखी जा सकती है। कवि पूर्ववर्ती शालीन काव्य की तुलना में "खजोहरा" की

तीखी आलोचना करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है - सौन्दर्यप्रियता का यह " एण्टीक्लाइमेक्स " है, जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँचता है।[१]

किन्तु " सरोजस्मृति " में अश्लीलता के बजाय सामान्य-साधारण के जीवन की कुछ स्थितियों का बड़े उन्मुक्त भाव से व्यक्त हुआ है। यदि अश्लीलता है, तो वह जन-सामान्य के जीवन में है, रचनाकार के चित्रण में नहीं, जो स्वयं अपनी में कुंठ और सहज है। संवेदना और अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि का यह साहस है, जिसके कारण सामान्य-साधारण जन के मामूली से लगनेवाले अनुभवों को वह काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठापित करता है।

" स्फटिक-शिला " में बहुत अनौपचारिक रीति से कवि चित्रकूट की यात्रा का वर्णन करता है, जिसमें उसकी यथार्थ-प्रवण दृष्टि धार्मिक स्थल की मनोहरता के वर्णन की ओर उन्मुख न होकर अत्यन्त सामान्य दृश्यों तुच्छ समझे जानेवाले लोगों पर टिकी है। एक शूद्रा नारी के प्रति कठोर करुणा इस सपाट गद्यात्मकता में उभर उठी है -

मैंने देखा, बड़ा मेला
   मन उसका समाज से
चोट खाई हुई वह रामजी के राज से,
   कुत्तों को मिला नहीं,
   किसी कुछ भी कहीं
   ढाढ़स बँधाया मैंने मीठे-मीठे शब्द कहकर
   देखती रही वह आँसुओं की आँखों रह रहकर

यहाँ " बड़ा मेला। मन उसका समाज से " में शूद्र नारी के हृदय के विक्षोभ, दीनता की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति मिली है। आगे " चोट खाई वह रामजी के राज से / कुत्तों को मिला नहीं / किसी कुछ भी कहीं " में झूठी धार्मिकता-आध्यात्मिकता पर प्रहार है। जैसे " रामजी के राज " प्रयोग

---

१) कवि निराला, पृ० ६३

में व्यंग्य की सूक्ष्म ध्वनि अन्तर्निहित है। और, इन सब के बाद " मीठे मीठे शब्दों की निष्क्रिय मिठास, खोखली दया शब्दों में उभर उठी है।

स्वच्छंद अभिधात्मकता, अभिव्यक्ति के खुलेपन का बड़ा सटीक उदाहरण प्रस्तुत करता है " स्फटिक शिला " का अन्तिम अंश, जिसमें स्फटिक-शिला देखते हुए यात्री की आँख सद्य:स्नाता युवती पर पड़ती है -

आँख पड़ी युवती पर
आयी थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,
घायल दृगों का मुख खुला हुआ छोड़कर।
बदन कहीं से नहीं काँपता
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।

एक बँधी-बँधाई दृष्टि अगर इस अंकन में अश्लीलता देखती है,तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन उन्मुक्त दृष्टि से देखने पर अवांछनीय वर्जना से मुक्त इस बेलौस चित्र की सराहना करनी पड़ेगी, जिसमें नारी-शरीर के प्रति विस्मय या घृणा का कुंठा भाव न होकर एक अकृत्रिम आत्मीयता है, सहज प्रतिक्रिया है और जो आधुनिक भाव-बोध के अधिक निकट है। इस सारी मानवीय क्रिया-प्रतिक्रिया को सीता और जयंत के पौराणिक प्रसंग से जोड़ देना बड़ी अप्रत्याशित और साहसिक कल्पना का प्रतिफलन है -

वर्तुल उठे हुए उरोजों पर पड़ी थी निगाह
चोंच पैठी जयंत की, नहीं पैठी कोई चाह
देखने की मुक्ति और,
छेदे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन काँप उठा याद आई जानकी।
क्या तुम राम की,
ऐसी चिर बंदिनी।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि का द्वन्द्व यहाँ द्रष्टव्य है, जिसके फलस्वरूप वह नितान्त स्वाभाविक मानवीय व्यापार को पौराणिक प्रसंग की परिणति देकर एक प्रकार से क्षति-पूर्ति करने की चेष्टा करता है, यथार्थ को उदात्त कल्पना से संपृक्त कर उसकी तीव्रता को कम कर देता है। जानकी के स्मरण के नाते भले ही वह उस नग्न नारी-शरीर से अपने को पृथक कर ले, पर इसमें संदेह नहीं कि अवचेतन मानस को उभारने का उसका उद्देश्य व्यर्थ नहीं हुआ है। हिन्दी-काव्य के संदर्भ में नई और इसीलिए साहसपूर्ण- ऐसी स्थितियों को, उनके समूचे द्वन्द्व में रूपायित कर सकने की चेष्टा को केवल अश्लीलता का " बिल्ला " देना समीक्षा की संकीर्णता का सूचक होगा। शब्दों ने अपनी सारी सपाटता में नग्न शरीर और (साथ-ही) नग्न मानस की क्रिया और प्रतिक्रिया को एक जीवन्त चित्र बनाने की बढ़िया कोशिश की है।

विवेच्य कविताएँ " कुकुरमुत्ता " के प्रथम संस्करण में भी देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त " नये पत्ते " की कविताओं " थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा " " राजे ने अपनी रखवाली की ", " कुत्ता भौंकने लगा, " डिप्टी साहब आये " महगू महगा रहा -" में यथार्थ की विविध भूमियों का अंकन वर्णन की नितान्त गद्यात्मक, किन्तु व्यंग्य-प्रवण भाषा में हुआ है और इसमें " कुकुरमुत्ता " की कविताओं के आगे की विकास-यात्रा का बोध होता है। विशेषता यह है कि " मास्को-डायलाग्स " की तरह इन कविताओं में भी वर्णन के भीतर से व्यंग्य की अमिट ध्वनि सुनाई पड़ती है, अभिधा के बावजूद उनमें " स्वशब्दवाच्यत्व " नहीं है। " महगू महगा रहा " का एक ताज़ा उदाहरण देखने योग्य है -

आजकल पण्डितजी देश में विराजते हैं।
माताजी को स्विटज़रलैण्ड के अस्पताल
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं।

यहाँ एक-एक शब्द में (जो अलग-अलग नितान्त सामान्य हैं,) किन्तु विशिष्ट क्रम में अनोखे हैं) कथनी और करनी के बीच के अंतराल पर कड़ा

तराशता हुआ व्यंग्य कवि ने किया है । निराला की यह व्यंग्य-प्रणाली उन्हें आधुनिक भाव-बोध में विशिष्ट स्थान देती है ।

' नये पत्ते ' - और साथ ही ' कुकुरमुत्ता ' और ' अणिमा ' काव्य-संकलन की कुछ यथार्थपरक कविताओं के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण प्रश्न सीधे उठाया जा सकता है क्या निराला जन-साधारण के जीवन से अभिषिक्त इस भाषा को उतना ही समर्थ, प्राणवान् और अर्थ-प्रवण बना सके हैं, जितना कि रोमाण्टिक और क्लैसिकल काव्य की तत्सम शब्द-प्रधान भाषा को ?

भाषा के अभिजात और सामान्य दोनों धरातलों का संस्पर्श निराला ने समान दक्षता से किया है और जन-साधारण के जीवन से सिरजी उनकी भाषा में कोई बचैना नहीं है, कोई हीनता-ग्रन्थि नहीं है । ' कुकुरमुत्ता ' की लंबी-चौड़ी डींगों में ' सबोहरा ' की ग्राम्य-प्रकृति के वर्णन में ' स्फटिक-शिला ' के ठेठ, देशी वातावरण के अंकन में निराला पूरे आत्म-विश्वासपूर्वक टकसाली भाषा का प्रयोग करते चलते हैं ।

(परवर्ती गीत : ' अर्चना ', ' आराधना ', ' गीतगुंज ')

निराला का परवर्ती काव्य (' अर्चना,' आराधना ', ' गीतगुंज ') अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर पर उनके पूर्ववर्ती काव्य से जुड़ा हुआ है, और कुछ मानों में कवि की पिछली उपलब्धियों को नये संदर्भ में प्रस्तुत करता है । इन परवर्ती गीतों की काव्यभाषा का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है - (१) इन तीनों गीत - संकलनों का बहुत बड़ा भाग हिन्दी भाषा के निजी सौन्दर्य, लोकात्मक सांगीतिक संभावना से युक्त है, और एक-एक दिन में इस प्रकार के कई गीतों की रचना अपने आप में इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत देती है कि गीत-रचना में ऐसी निराला की प्रतिभा बड़े बेलाग भाव से, आत्म-विश्वास को साधन किये हुए, लोक-तत्व को काव्य में प्रतिष्ठित करती है, जैसे इन गीतों में कवि ' गीतिका ' के संस्कार-निष्ठ शब्दों की रचनात्मक क्षतिपूर्ति

करता है, कुछ-कुछ उसी तरह - जैसे " राम की शक्ति-पूजा " , " तुलसीदास " जैसी अभिजात शब्दावली वाली कविताओं के बाद " कुकुरमुत्ता " , " नैला " और " नये पत्ते " के जन-प्रयोगों में ; (२) तत्सम शब्दावली में अनुस्यूत सूक्ष्म अर्थ-छवियों से संपन्न " गीतिका " के गीतों के समकक्ष परवर्ती गीतों की सामान्य शब्दावली में अर्थ का तनावयुक्त संप्रेषण दर्शनीय है, और इस रूप में ऐसे गीतों के मध्य " अर्चना " , " आराधना " , " गीतगुंज " के कुछ संस्कृतनिष्ठ गीत भी हल्के लगने लगते हैं । (३) यों तो निराला काव्य का एक बड़ा भाग भाषा और संवेदना के स्तर पर रहस्य, दुरूहता से भरा हुआ है (विशेषतः गीतों के प्रसंग में " गीतिका " से अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं) किन्तु पूर्ववर्ती काव्य की रहस्यमयता , दुरूहता बहुत अंशों में साभिप्राय है, वहाँ भाषा के मौलिक, रचनात्मक प्रयोग हैं, अनुभव की जटिलता है, दूसरी और परवर्ती गीत-सृष्टि में अक्सर ऐसा लगता है कि निराला अपनी मानसिक और शारीरिक रुग्णता के फलस्वरूप अस्पष्ट हो गये हैं, बहुत प्रयत्न करने के बाद भी गुत्थी नहीं सुलझती । " आराधना " का " (जब) हाथ हमारे है (गीत सं० ३२) द्रष्टव्य है । कहीं शाब्दिक खिलवाड़ में कवि पूरे गीत के समन्वित प्रभाव को समाप्त कर देता है - " बन जाय भले शुक की उनसे " (" अर्चना " , " गीत सं० ७) इसका उदाहरण है या " आराधना " के " आज मन पावन हुआ है / जेठ में सावन हुआ है की ताजी शुरुआत को यह चामत्कारिक और अस्पष्ट परिणति दी गई है -

कटा था जो पटा रह कर,
फटा था जो सटा रह कर,
हटा था जो डटा रह कर,
अचल था, पावन हुआ है ।

छंद की तुकों के साथ स्वच्छंद खिलवाड़ को बड़े विस्तार में " आराधना " के " हलके हल के पैमाने क्या " गीत में देखा जा सकता है । कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

हलके हलके हलके न हुए
हलके हलके हलके न हुए

उफले उफले फल के न छुए
बैठाने थे थ तो दाने क्या ?

ऐसे प्रयोग किसी सर्जनात्मकता से उत्प्रेरित नहीं लगते और अगर कहीं (कवि की मानसिक गहराइयों में) इनमें सर्जन के तत्त्व हैं, तो वे कुहासे से आच्छादित है। कवि की इस अभिव्यक्ति प्रणाली का एक अन्य रूप उन गीतों में देखा जा सकता है, जिनमें वह शब्दों की लय से, उनके संगीत से खेलता रहता है, अर्थ की ओर उसका ध्यान नहीं रहता - उदाहरणार्थ " आराधना " के इस गीत में, जिसे पूरे-का-पूरा उद्धृत किया जा रहा है -

हँसो मेरे नयन,
बसो मेरे श्रवण।
हरो मेरे हरण,
मरो मेरे मरण,
चलो मेरे चरण,
पलो मेरे शयन।
गहो मेरे प्रखर,
बहो मेरे प्रवर,
कहो मेरे इतर,
चहो मेरे चयन।

परवर्ती गीतों में विनय, भक्ति ,तादात्म्य, कातरता, नश्वरता की अनुभूतियों को प्रधानता मिली है। " गीतगुंज " में इस भावभूमि से कुछ हटकर प्रकृति के यथार्थ अंकन में कवि की वृत्ति रमी है। इनके अतिरिक्त महायुद्ध के बाद के स्वप्न-भंग से उत्पन्न क्षोभ और निराशा की मिली-जुली अनुभूतियाँ अनेक गीतों का विषय बनी है। प्रणय के कुछ नितान्त आत्मीय गीत भी इन संकलनों की विशेषता है। इन विविध संवेदनाओं से युक्त गीतों में से कुछेक के विश्लेषण से परवर्ती काव्यधारा के अर्थों का एक सुस्पष्ट चित्र निर्मित हो सकेगा।

कहीं सामान्य शब्दावली में दूरगामी संभावनाएँ निहित हुई हैं। " अर्चना " के दो गीत द्रष्टव्य है :-

प्यास लगी है, बुझाओ,
अमृत के घूँट पिलाओ ।

प्रणय की तृप्ति और आत्मिक मुक्ति के अनुभव को इस गीत में एक कर दिया गया है । बड़े आत्मीय प्रतीकों में कवि बेबसी के दुःख से उबरने की अनुनय करता है :-

समझा है अपना सपना है,
कुटिया में तपना- तपना है
निठुर शीत-जल में कँपना है,
मुरझी आस जिलाओ -
अमृत के घूँट पिलाओ ।

दूसरे गीत " बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु " में गीत की अनुभूतिगत तीव्रता और सुकुमारता को भी मूर्धन्य कर दिया गया है -

बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु
पूछेगा सारा गाँव ,बन्धु !

यहाँ नाव के न बाँधने की अनुनय और सारे गाँव के पूछने की आशंका में जो लोक-लज्जा का भाव है, वह हिन्दी के अपने तद्भव-रूप से समन्वित इस गीत में रूपायित हो उठा है । उल्लेखनीय यह है कि चित्र सामान्य जन-जीवन का है, किन्तु कवि ने उसमें सूक्ष्म और सुकुमार संवेदना अनुस्यूत कर दी है ।

प्रेयसी की स्मृति से उद्भूत आह्लादकारी रोमांच और छिपी प्रणय भावना में इस तरह विवृत हुई है -

यह घाट वही जिस पर हँसकर
वह कभी नहाती थी धँस कर
आँखें रह जाती थीं फँसकर
काँपते थे दोनों पाँव बंधु ।

* " हँसकर ", " धँसकर " , " फँसकर " जैसी तद्भव बोलचाल की पूर्वकालिक क्रियाएँ प्रणय के उन्मुक्त अनुभव को बेलौस ढंग से व्यक्त करती हैं ।

सकते हैं ।" दुखता रहता है अब जीवन "(२२) में जीवन की रुग्णता, असहायता, शोभाहीनता को उदास प्रकृति के अनुभव में संगुम्फित कर दिया गया है :-

दुखता रहता है अब जीवन,
पतझड़ का जैसा वन-उपवन ।
झर झर कर जितने पत्र नवल
कर गये रिक्त तनु का तरुदल
हैं चिह्न शेष केवल संबल
जिनसे लहराया था कानन ।

अन्तिम अंश में कवि के मानस में जीर्णता के एहसास अन्त के अहसास में से उपजा अवसाद और उसमें एक दार्शनिक निर्द्वन्द्वता उभरती है :

यह वायु बसंती आई है,
कोयल कुछ टाण कुछ गाई है,
स्वर में क्या भरी कुढ़ाई है,
दोनों ढलते जाते उन्मन ।

३७ वें गीत की नयी अभिव्यक्ति-प्रणाली देखने योग्य है -

मेरा फूल न कुम्हला पाये
जड़ उलीच कर मूल सींचकर
लौटे तुम तरुवर के साये ।

गीत की सारी आशावादिता - प्रकृति के प्रसन्न-उन्मुक्त चित्र, मन की जीवनाकांक्षा - के बावजूद तनाव द्रष्टव्य है -

लौटी ग्राम वधू पनघट से,
लगा चितेरा अपने पट से,
बँधी नाव खिलती है तट से,
कवि के अग्नि-प्राण उकसाये ।

सारी निश्चिन्तता के बावजूद 'कवि के अग्नि-प्राण उकसाये' में जीवन की बेचैनी और तड़प गहरी हो गई है। इस तरह की पंक्तियाँ आधुनिक

भाव-बोध को बिल्कुल निकट से संस्पर्श करती है ।

" मन न मिले न मिले कहि के पद " में ज्ञान-हीन मानव की दुर्दशा पर तीखा व्यंग्य है -

गलती रही वासना की लत,
न बना यौवन, न बना जीवन,
मरे हुए उपवन में अनमन
मानव रहा अमान भरा-मन ।

अंतिम अंश में कवि का विद्रोह और तीव्र हो गया है -

ज्ञान गया तो प्राय: पशु है,
वसु न हुआ तो निर्बल वसु है,
वसुंधरा में केवल दस्यु है,
अपने प्रण में अपण ,न बान्धव ।

" ज्ञान गया तो प्राय: पशु है" में "प्राय:" का प्रयोग ज्ञानहीन मानव के पशुत्व -भाव को हल्का नहीं करता, वरन् और सघन कर देता है, जैसे "तोड़ती पत्थर " कविता में " प्राय: " का प्रयोग दुपहर के भाव को कम न कर और गहराई दे देता है - " प्राय: हुई दुपहर । "

आत्मिक मुक्ति के अनुभव को बहुत घरेलू ढंग से निराला ने प्रस्तुत गीत " दक्षिण भी छाँह तुमने छीनी / कर ली सुगम रति की भीनी " में मुखरित किया है -

बिस नस ले आना मन भाया,
समझे भी कुछ न समझ पाया,
ऐसे निष्काम हुई काया,
जैसे कोई साड़ी झीनी ।

झीनी साड़ी का अप्रस्तुत सारे प्रसंग को आलोकित कर देता है और निष्कामता का भाव कहीं गहरे जाकर मन को छू लेता है । आत्मिक मुक्ति के प्रसंग में इस तरह का घरेलू अप्रस्तुत,आत्मीयता,तन्मयता की अर्थ-छायाएँ उत्पन्न करता है ।

'गीतागुंज' के 'बादल रे, जी तड़पे' में शब्दों के परिचित सामान्य रूप मन की बेचैनी, अवसाद और घुमड़न को मार्मिक अभिव्यक्ति देते हैं -

बादल रे, जी तड़पे ।
किये उपाय सैकड़ों तन के
मन के, चरण मिले सज्जन के,
व्यर्थ प्रार्थना जो अब है
पन्जर पिन्जर कर के ।

निराशा, उद्वेग की सघनता का अंकन में - अंधकार के प्रसार में - उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है -

अब अँधियाली ही बढ़ती है,
छाया छाया पर चढ़ती है,
प्राणों के घन श्याम-गगन से
बूँदों कभी न बरसे ।

परवर्ती गीतों में लय के बहुत सुन्दर, काव्यात्मक प्रयोग निराला ने किये हैं, जो इन गीतों की लोक-प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में उन्मुक्त बन पड़े हैं, उन गीतों में, जिनमें प्रशान्ति का भाव है, मूक असहायता है, वैराग्य है । लय का यहाँ ठहरा-ठहरा रूप भाषा से संवेदना को जोड़ता है । 'अर्चना' के कुछ गीत 'निविड़ विपिन पथ अराल' (४०), 'वेदना बनी, मेरी अवनी' (४२), 'तुम से जो मिले नयन' (५५) इसके उदाहरण हैं । खासतौर से 'आराधना' में यह प्रवृत्ति अपने अत्यन्त रचनात्मक रूप में सक्रिय है - ४६वाँ गीत द्रष्टव्य है -

मन का समाचार
कहो विश्वाधार ।
गहन कण्टक जटिल
मग पड़े पग शिथिल
गया है हृदय छिल
ली पंक का भार ।

कोई नहीं और,
एक तुम हो ठौर
दूर सब का पौर
भव से करो पार ।

जिसमें कातरता और विनय सिर्फ लय के इस ठहराव में मुखरित हो गये हैं । लय का और अधिक कलात्मक उपयोग ६२ वें गीत में द्रष्टव्य है, जहाँ शब्दों की विशिष्ट संयोजना, वाक्य का मौलिक रूप एक नई संवेदना जाग्रत करता है -

मग्न तन, रुद्धवा मन
जीवन विषण्ण वन ।
क्षीण क्षण क्षण देह
जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्षण ।
चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषारण ।

कला-चेष्टा और सहजता का ऐसा निखरा हुआ रूप करुणा और कातरता के इस वातावरण में प्रस्तुत करना अपने में स्पृहणीय है । पूर्ववर्ती गीतों में अकेला", " स्नेह-निर्भर बह गया है", के समकक्ष यह गीत अपने रचना विधान और लय की सरलता -सादगी में एक विशिष्ट स्थान रखता है । शब्दों में कवि ने द्रवणशील करुणा भर दी है ।" क्षीण क्षण क्षण देह / जीर्ण सज्जित गेह " में मानव जीवन के दो विरोधी दृश्यों - उतार-चढ़ाव- की अवतारणा है । निराला की सार्थक पद-सृष्टि का बड़ा करुण पर भव्य रूप ऐसे गीतों में देखा जा सकता है । अन्तिम पंक्ति" दो शरण, दोषारण" में चमत्कार का उपयोग कितनी आध्यात्मिक भावुकता, संवेदनात्मक लिहाज़ के

साथ हुआ है - यह नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता । अलंकरण यहाँ भाषा-प्रवाह में एकरस हो गया है, भाषा हो गया है । कवि के आकुल प्राण दोनों के लिए संग्राम-स्वरूप आराध्य की शरण चाहते हैं ।

बड़े खामोश रूप में ठेठ शब्द प्रयोगों पर आधारित निराला के परवर्ती गीत संगीत और काव्य का संपृक्त अनुभव प्रस्तुत करते हैं । " अर्चना " के ६६वें गीत में नश्वरता और ईश्वर-निर्भरता को इसी ठेठ शब्दावली में अभिव्यक्त किया गया है -

कौन गुमान करो ज़िन्दगी का
जो कुछ है कुल मान उन्हीं का ।

शरीरोत्सव और शरीर-सौन्दर्य के विविध अंकनों के मध्य निराला का यह अंकन भी द्रष्टव्य है, जो संतों की भाव-भूमि के बहुत करीब उन्हें ले जाता है -

बाँधे हुए घर-बार तुम्हारे,
माथे है नील का टीका,
दाग-दाग कुल अंग-स्याह है,
रंग रहा है फीका -
तुम्हारा कोई न जी का ।

" आराधना " का २६वाँ गीत शब्दों के अनौपचारिक रूप और भंगिमा का बड़ा बढ़िया उदाहरण है । इस गीत की लय भिन्न कोटि की है-

सुख का दिन डूबे डूब जाय ।
तुमसे न सहज मन ऊब जाय ।

समर्पण और भिक्षा का तीव्र-मुखर रूप इस गीत में है । " गीतगुंज " का प्रसिद्ध गीत " अनरस की आँखें भर आईं " (७) ठेठ और प्रतीकात्मक शब्दों में गीत का एक विशिष्ट भंगिमा प्रस्तुत करता है -

अनरस की आँखें भर आईं ।
मन मद का सौदा कर आईं ।

तद्भव प्रयोगों की दृष्टि से तीन गीत " ऊँट बैल का साथ हुआ है " , " मानव जहाँ बैल घोड़ा है " , " खेत जोतकर घर आये हैं और उल्लेखनीय है । " मानव जहाँ बैल घोड़ा है अपनी संरचना की सादगी में विशिष्ट है-

मानव जहाँ बैल घोड़ा है
कैसा तन मन का जोड़ा है ?

सपाट बयानी का तीखापन ऐसे प्रयोगों में देखा जा सकता है । " मानव-मानव एक है " के नाम पर साम्यवाद के मिथ्या प्रचारकों पर करारा व्यंग्य कवि ने किया है । अन्तिम पंक्तियों " पक पक कर ऐसा फूटा है/ जैसा सावन का फोड़ा है " में रिस-रिसकर जमी हुई गंदगी और उसके विस्फोट का सटीक अंकन हुआ है ।

तत्सम शब्दों के बीच तद्भवों का बेलाग भाव से प्रयोग निराला की परवर्ती गीत-सृष्टि की एक सामान्य प्रवृत्ति है, यद्यपि पूर्ववर्ती काव्य " सरोज-स्मृति " , " वनबेला " , " दान " , जैसी कविताओं में भी अभिव्यक्ति के ये दोनों रूप मिलते हैं, पर बहुत विस्तार में यह प्रवृत्ति परवर्ती गीतों में दिखाई पड़ती है - उदाहरण स्वरूप उन गीतों को लिया जा सकता है, जिनमें तत्सम और तद्भव के संयोग से विशिष्ट रचनात्मकता संभव हुई है । " आराधना " संकलन में इसके अच्छे उदाहरण हैं । " मानव के तन के तन फहरे " जैसे आवाहन-गीत में भाषा का परिष्कृत रूप है -

मानव के तन केतन फहरे ।
विजय तुम्हारी नभ में लहरे ।
कुल के कल-कल्मष सब हारे
तुम पर तन-मन-धन-जन वारे,
क्षुरों की धी-धीकर धारे,
अंधकार का मानस बहरे ।

गीत की परिणति बोलचाल के इन शब्दों में होती है और वे अस्वाभाविक नहीं लगती -

जो न हुआ वह गुजरे होकर
जो न गया वह लौटे रो कर,
जो न खुला खोली तुम धो कर,
टेक तुम्हारी मन में ठहरे ।

" आराधना " के तत्सम-तद्भव के सम्मिश्रण में रचे कुछ गीत अपनी अर्थ-प्रक्रिया में अस्पष्ट है, उनकी रचनात्मकता का सही बोध नहीं हो पाता । उदाहरणार्थ गीत सं० (२) (४३)। ५०वाँ गीत " तुम से लाग लगी जो मन की " अपनी भाषिक संरचना की दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसमें तादात्म्य की अनुभूति को पहले तो बड़े सहज शब्दों में, परिचित प्रतीकों में मुखरित किया गया है -

तुम से लाग लगी जो मन की
जग की छुई वासना बासी ।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति, मानस की काशी ।

विशेषतः पहली दो पंक्तियों की आत्मीयता और अन्तिम दो पंक्तियों का सुस्पष्ट प्रतीक-विधान बड़ा भास्वर प्रतीत होता है । " वासना " और " काशी " के अनुप्रास में तत्सम-तद्भव का मेल बेजोड़ है । एक में आकर्षण की व्यंजना है, दूसरे में उपराम का भाव है । अन्तिम अंश में संस्कृत का " निर् " उपसर्ग रचनात्मक आवश्यकता का प्रतिफलन है, जिसमें मानसिक मुक्ति का विशदता से अंकन हुआ है -

निःस्पृह, निःस्व, निरामय-निर्मम,
निराकाङ्क्ष, निर्भय, निरुद्गम,
निर्णय, निराकार, निःसम सम,
माया आदि पदों की दासी ।

२७वें गीत " हिम के आतप के तप झुलसी " में भी तत्सम और तद्भव का ऐसा ही रचनात्मक रिश्ता देखा जा सकता है । कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं
भीगे कठिन धरा निष्पावन
बढ़े [illegible] का अभिभावक
[illegible] बीज [illegible] कर उठती ॥

जैसे " निष्पावन "," चतुर्दिक ," " अभिमावन " और " सीमा "
उत्सों की सन्निकटता में ही सच्चा जागरण, पुष्ट शक्ति उदित हो सकती है ।

निराला के मन में तत्सम शब्दावली के प्रति ज़बर्दस्त आकर्षण रहा है, जिसका बड़ा सघन रूप उनके पूर्ववर्ती काव्य में देखा जा सकता है । परवर्ती गीतों की सामान्यतया लोक-प्रचलित ठेठ शब्दावली के बीच उन्होंने संस्कृतनिष्ठ शब्दों से परिपूर्ण अनेक गीतों की भी रचना की है ।" अर्चना " का प्रार्थना-गीत (जिसमें जागरण की कामना है) तत्सम शब्दावली पर आधारित गीत-रचना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । इस गीत की बनावट देखने योग्य है -

तिमिरदारण मिहिर दरसो ।
ज्योति के कर अन्ध कारा -
गार जग को सजग परसो ।

धारा का अँधेरी कारा है, जिसका अँधेरा तभी मिट सकता है, जब तिमिरदारण मिहिर (सूक्ष्म स्तर पर दीप्तमान सत्य) स्पर्श कर दे ।" गात के संघात पर उत्थान देकर प्राण बरसो " जैसे आंतरिक ध्वनि-साम्य की नियोजना से युक्त मौलिक तत्सम-प्रयोग गीत को तीव्र भास्वरता प्रदान करते हैं ।" गीतिका " के जागरण-गीतों की संस्कृत-निष्ठ भाषा के मध्य इसे रखा जा सकता है ।" आराधना " के प्रथम प्रार्थना-गीत " पद्मा के पद को पाकर है ।" में भी संस्कार-निष्ठ शब्दों की अर्थ-गरिमा अनुस्यूत है । " आराधना " के छठें गीत " भरा हूँ ज्वार भरण / पाई तब चरण-शरण " भी प्रिय-सान्निध्य के अनुभव को तत्सम शब्दों में अभिव्यक्ति देता है, जिसमें " भरा हूँ ज्वार भरण " की मौलिकता काव्यात्मक सार्थकता और समृद्धि से भरी हुई है । ऐसे प्रयोग संसार की विविध तथा बाधाएँ, घात-प्रतिघात की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति देते हैं ।

कुछ गीतों में एक शब्द का पुनः पुनः आवृत्ति द्वारा कवि ने उन्हें विशिष्ट संरचना से युक्त किया है ।" अर्चना " में " भीड़ " शब्द की यह आवृत्ति द्रष्टव्य है -

नील जलधि जल
नील गगन-तल
नील कमल-दल
नील नयन-द्वय ।

" नील " शब्द विस्तार और गहराई की व्यंजना करता है, जिसकी अवस्थिति कवि ने प्रकृति के विराट् और कोमल दोनों रूपों में की है कवि " नील " की यह सत्ता बड़ी दूर तक उल्लिखित करता चलता है, जिसमें " सृष्टि ", " मृत्यु शर " , " अनिल -स्वर " , " निलय-लय " सभी समाहित हो जाते हैं । एक प्रकार का अद्वैत भाव " नील " की इस आवृत्ति में है, जिसमें शाब्दिक खिलवाड़ नहीं, अनुभव की तल्लीनता है । " आराधना " के ४५वें गीत में भी " नील " की ऐसी ही आवृत्ति हुई है -

नील नयन नील पलक,
नील वदन, नील झलक ।

यहाँ प्रकृति के अपेक्षाकृत कोमल रूपों में " नील " को स्थान दिया गया है । " अर्चना " के " नील जलधि जल " गीत में " नील " और " जलधि -जल " के बीच जो रिक्त स्थान है, वह जो " नील " की गहराई और विस्तार को सूक्ष्म अभिव्यक्ति देता है, वह योजना " आराधना " के प्रस्तुत गीत में नहीं है ।

" आराधना " के ५९वें गीत में " ज्योति " शब्द की आवृत्ति हुई है, जिसमें जागरण, प्रकाश और जीवन्तता के अनुभव को बड़ी रचनात्मक संवेदनशीलता से , " ज्योति " शब्द की पुनरुक्ति में प्रस्तुत किया गया है । स्वयं निराला के अनेक जागरण-गीतों की संरचना के समकक्ष इस गीत की बनावट देखने योग्य है -

ज्योति प्रात, ज्योति रात
ज्योति गगन, ज्योति गात ।

जिसमें प्रकृति ही नहीं, आत्मीय प्रणय को भी समेट लिया गया है -

ज्योति प्रथम प्रिय-दर्शन
ज्योति कम्प, आकर्षण

किन्तु इस तरह की संवेदनात्मक गहराई आराधना का दूसरों गीत " चल समीर चल कलि दल " नहीं जाता, कुछ तो इसलिए कि अनस्थिरता क्षणिकता का यह भाव कहीं तथ्यात्मक रूप में अभिव्यक्त हुआ है, शब्दों में वह तनाव और ठहराव नहीं है, जिससे क्षणिकता-चंचलता प्रभविष्णु बन सके -

चल सौरभ चल चितवन
चल वन ,उपवन, जीवन
चल यौवन, चल चल मन
चल सुरसरि, चल निर्मल ।

इस तरह के (आवृत्ति-प्रधान) गीतों की संरचना में अभिधात्मकता का यह खतरा है । प्रसाद के " अजातशत्रु " नाटक में " चंचल-चन्द्र सूर्य है चंचल / चपल सभी ग्रह तारा " गीत की शब्दावृत्ति में भी यही कमजोरी है । दूसरी ओर " गीतगुंज " के एक आवृत्तिपरक गीत का वैशिष्ट्य द्रष्टव्य है :

जिधर देखिये श्याम विराजे
श्याम कुंज वन यमुना श्यामा
श्याम गगन, घन वारिद गाजे
श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम है
श्याम सुरभि चल अंचल साजे ।

इस गीतिकी हर पंक्ति में 'श्याम '(तुलनीय 'नील ') शब्द की आवृत्ति कोमल संकेत से बढ़कर प्रणयिनी की एकांत निष्ठा को बड़ी मार्मिक निश्छल और सार्वभौम अभिव्यक्ति देती है । ब्रजभाषा में सरलता से पर्यवसित होनेवाले ऐसे घरेलू-आत्मीय संवेदन की खड़ीबोली पर आधारित काव्यभाषा के अपेक्षाकृत चिन्तन-प्रधान रूप से वैराग भाव से संयुक्त कर देना गीतकार की कुशलता का प्रमाण है । यह देखने योग्य है कि तत्सम संज्ञा, विशेषणों के बीच तद्भव क्रियाओं की नियोजना कवि ने रागात्मक अभिप्राय से की है -

" गाजै," साजै "," माँजे "," लाँजे "," निवाजे "," सँवाजे " जैसे क्रिया-प्रयोग संवेदना के घरेलूपन और अनौपचारिकता को कायम किये रहते हैं।

परवर्ती गीतों का यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि निराला का रचनाशील व्यक्तित्व इनमें विकृत और ह्रासशील नहीं हुआ, जैसा कि एक प्रचलित भ्रम इन परवर्ती गीतों के संबंध में फैला रहा है, वरन कवि का विराट् व्यक्तित्व भाषा के ठेठ प्रयोगों में, लोक-जीवन के अनुभव में अपना उन्मोचन ढूँढता है। एक बात और है - " गीतिका " के संस्कृतनिष्ठ गीतों में निराला ने गीत-सौष्ठव को एक निश्चित संभावना पर पहुँचा दिया था, किन्तु परवर्ती गीतों के प्रणयन के बिना हिन्दी भाषा की अपनी पकड़ के संस्पर्श से निराला वंचित रह जाते। कहना न होगा कि कवि की मानसिक अस्वस्थता के फलस्वरूप अनेक गीतों की अस्पष्ट भावभूमि और अभिव्यक्ति के बावजूद वे हिन्दी के गीतात्मक आत्मविश्वास को प्रतिष्ठित करने में कृतकाम हुए हैं और इस तरह उन्होंने सहृदयता पर आधारित रचनात्मकता का एक और आयाम विकसित किया है।

परिशिष्ट

(इस सूची में पुस्तक के प्रयुक्त संस्करण का उल्लेख है ।)

(क) आधार रचनाएँ

१) अणिमा : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९७१ ई० ।

२) अनामिका : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद , १९६३ ई० ।

३) अपराजिता : रामेश्वर शुक्ल अंचल, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९४६ ई० ।

४) अर्चना : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९६२ ई० ।

५) आँसू : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२५ वि० ।

६) आधुनिक कवि (१) : महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००६ ।

७) आधुनिक कवि (३) : रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१४ ।

८) आधुनिक कवि (८) : नरेन्द्र शर्मा : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६७ ई० ।

९) आधुनिक कवि (११) : रामेश्वर शुक्ल अंचल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६७ ई० ।

१०) आराधना : सूर्यकांत त्रिपाठी निराला , साहित्यकार संसद, प्रयाग, सं० २०१० ।

११) कानन-कुसुम : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२४ वि० ।

१२) कामायनी : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस ,इलाहाबाद, सं० २०२४ वि० ।

१३) कुकुरमुत्ता : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला ", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं० २०२४ वि० ।

१४) गीतगुंज : सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला " ,हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सं० २०१६ वि० ।

१५) गीतिका : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२१ वि० ।

१६) गुंजन : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २००३ वि०

१७) ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० " ९७ वि० ।

१८) चित्राधार : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०१४ वि० ।

१९) झरना : जयशंकर प्रसाद, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं० २०२६ वि० ।

२०) तारापथ : सुमित्रानन्दन पन्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९४८ ई० ।

२१) तुलसीदास : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९७० ई० ।

२२) दीपशिखा : महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२२ वि०

२३) नये पत्ते : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९५२ ई० ।

२४) नीरजा : महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९७१ ई० ।

२५) नीहार : महादेवी वर्मा, साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग, १९७१ ई० ।

२६) परिमल : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, १९६१ ई० ।

२७) पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, इलाहाबाद

२८) प्रेम-पथिक : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२५ वि० ।

२९) बेला : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग, १९६६ ई० ।

३०) मधुकण : भगवती चरण वर्मा, ओझा बन्धु आश्रम, प्रयाग, १९३२ ई० ।

३१) युगवाणी : सुमित्रानन्दन पन्त, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० " ९९ ।

३२) युगान्त : सुमित्रानन्दन पन्त, इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, अल्मोड़ा, १९३६ ई० ।

३३) लहर : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२६ वि० ।

३४) सांध्य-काकली : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९ ई० ।

(ख) आलोचनात्मक ग्रंथ

१) अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या : रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९७२ ई० ।

२) आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा : ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, गया प्रसाद एण्ड संस, गयाकुंज, आगरा, १९५१ ई० ।

३) कवि निराला : नन्ददुलारे वाजपेयी, वाणीवितान प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ई० ।

४) कविता के नये प्रतिमान : नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, १९६८ ई० ।

५) कामायनी का पुनर्मूल्यांकन : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७० ई० ।

६) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २०२६ वि० ।

७) क्रांतिकारी कवि निराला : बच्चन सिंह, प्रकाशक बच्चनसिंह, काशी, सं० २००४ वि० ।

८) खड़ीबोली का आंदोलन : शितिकंठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३ वि० ।

९) चिन्तामणि (१) : रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९५७ ई० ।

१०) छायावाद का काव्य-शिल्प : प्रतिभा कृष्णबल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई० ।

११) जयशंकर प्रसाद : नन्द दुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० २००७ वि० ।

१२) निराला : रामविलास शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी प्रा० लि०, १९६२ ई० ।

१३) निराला : आत्महंता आस्था : दूधनाथ सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई० ।

१४) निराला और नवजागरण : रामरतन भटनागर, साथी प्रकाशन, सागर, १९६५ ई० ।

१५) निराला का साहित्य और साधना : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९६५ ई० ।

१६) निराला की साहित्य-साधना (१) : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७२ ई० ।

१७) पंत और पल्लव : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ १९६६ ई० ।

१८) पोएटिक डिक्शन : ओवेन बारफील्ड, फाबर एण्ड फाबर, १९५२ ई०

१९) पोएट्री एंड एक्सपीरियंस : आर्किबाल्ड मैक्लीश, १९६० ई० ।

२०) प्रबंध- पद्म : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, १९६० ई० ।

२१) प्रबंध-प्रतिमा : सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० ९७ वि० ।

२२) प्रिय-प्रवास : भूमिका : अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, २००० वि० ।

२३) भाषा और संवेदना : रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ ई० ।

२४) लिटरेरी क्रिटिसिज्म : ए शार्ट हिस्ट्री : विम्सेट तथा ब्रुक्स, आक्सफोर्ड पब्लिशिंग, कलकत्ता, १९५७ ई० ।

२५) लैंग्वेज पोएट्स यूज : विनिफ्रेड नोवेत्नी, एथलोन प्रेस, १९६२ ई० ।

२६) साहित्य-दर्शन : जानकीवल्लभ शास्त्री, कला निकेतन, १९५७ ई० ।

२७) सेवेन टाइप्स ऑफ एम्बीग्विटी : विलियम एम्पसन, १९५० ई० ।

२८) स्कंदगुप्त : जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०२४ वि० ।

२९) स्टाइलिस्टिक्स एण्ड पोएट्री : डी० वी० मेम्ब

३०) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००६ वि० ।

पत्र - पत्रिकाएँ

१) आलोचना : (जुलाई-सितंबर, १९७० ई०) (अक्टूबर-दिसंबर, १९७० ई०)

२) एनकाउण्टर : अगस्त, १९७२ ई० ।

३) साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ४ फरवरी, १९६८ ई० ।

४) साहित्य , अक्टूबर, वर्ष १, अंक ३, १९५० ई० ।